# आवरण मानचित्र का विवरण

*Source of the Map: https://en.wikipedia.org/wiki/Kashmir#/media/File:Kashmir_region_2004.jpg*

तिब्बत में डोगरा शासकों की परंपरागत सीमारेखा (1846-1952)*

तिब्बत (चीन अधिकृत) चीन ने 1949 में यहां प्रवेश किया।

1963 में पाक द्वारा चीन को सौंपा गया क्षेत्र

मैकमोहन रेखा-1914 में ग्रेट ब्रिटेन, चीन और तिब्बत के बीच हुये शिमला समझौते के अंतर्गत खींची गई थी।

चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (चीन द्वारा निर्माणाधीन)

गिलगित-बल्तिस्तान (पाक अधिकृत), 1949

पाक अधिकृत कश्मीर, 1949

अक्साइ चिन (चीन अधिकृत) 1962

लद्दाख विभाग

कश्मीर विभाग

जम्मू विभाग

0 50 100 Kilometers

0 50 100 Miles

***डोगरा शासकों की परंपरागत सीमारेखा तिब्बत में**

भारत और जिन्जियांग के बीच निकटतम संबंधों के विषय में पर्याप्त दस्तावेज उपलब्ध हैं। ऑरेल स्टाइन ने इसे सेरिन्डिया कहा। सेर शब्दांश सेरेस से लिया गया है जो चीन का प्राचीन नाम था। इसी रास्ते से बौद्ध धर्म कश्मीर से वहां पहुंचा था। वहां हिन्दू और बौद्ध धर्मों, खरोष्ठी लिपि और संस्कृत भाषा का बोलबाला था।

1890 से काशगर में भारत का अपना वाणिज्य दूतावास रहा। विश्वप्रसिद्ध रेशम मार्ग पर काशगर प्रमुख व्यापार केन्द्र था। 1904 में वाणिज्य दूतावास को पूर्ण राजनयिक मान्यता दी गई। परंतु 1951 में चीन ने छल-कपट से ऐसी स्थितियां बना दीं कि भारत को यह वाणिज्यिक दूतावास बन्द करना पड़ा।

केवल अक्साइ चिन की बात करें तो मांचू वंश के शासन में जिन्जियांग के चीन का हिस्सा बनने से पहले ही हमेशा से,यह कश्मीर का हिस्सा था। यह बात डोगरा महाराजाओं की उपाधि से भी स्पष्ट होती है जिसका उपयोग अंतिम डोगरा शासक हरि सिंह ने विलय के प्रपत्र में भी किया था। उपाधि यों थी: श्रीमान इन्दर महेन्दर राजराजेश्वर महाराजाधिराज, श्री हरि सिंह जी, जम्मू कश्मीर नरेश, तथा तिब्बत आदि देशाधिपति।

**-कर्नल तिक्कू**

**आवरण पृष्ठ में प्रकाशित छायाचित्र: प्रथम पंक्ति (बाएं से दाएं) पं. जवाहरलाल नेहरू, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी**
**द्वितीय पंक्ति (बाएं से दाएं) शेख अब्दुल्ला, पं. प्रेमनाथ डोगरा, महाराजा हरि सिंह**

# HARYANA VISHWAKARMA SKILL UNIVERSITY

(State University enacted under the Government of Haryana Act 25, 2016)

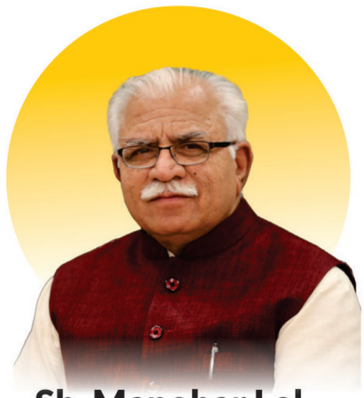

**Sh. Manohar Lal**
Chief Minister, Haryana

## जन स्वास्थ्य क्षेत्र में

# कैरियर

## बनाने का शानदार अवसर

हरियाणा विश्वकर्मा स्किल युनिवर्सिटी की सौगात

POST GRADUATE DIPLOMA IN

## PUBLIC HEALTH

Course Duration : 1 year

INDUSTRY PARTNER

**IQVIA**

**Stipend during OJT Rs. 10,000 per month**

## सीखो और कमाओ, अपनी पहचान बनाओ

**Last Date for Application Submission 9 July 2018**

## KEY HIGHLIGHTS OF THE PROGRAMME

- Application based Learning
- Earn while Learn
- Dual Education System
- Theory & Practice
- Subsidized Fee
- World Class OJT Facility
- Entrepreneurial Skills
- Placement Support
- Apprenticeship / NAPS
- OJT credit
- Vertical and Horizontal Mobility

**HARYANA VISHWAKARMA SKILL UNIVERSITY**
Vishwakarma Bhawan, Plot no-147, Sector-44, Gurugram Haryana
Email : admission.hvsu@gmail.com | Phone : 0124-2746800

For more details visit us at
**www.hvsu.ac.in**

₹ 100/-

**अतिथि संपादक**
श्री जवाहरलाल कौल (पद्म श्री)

**संरक्षक मण्डल**
श्री लक्ष्मीनिवास झुंझुनूवाला
श्री रघुपति सिंघानिया
श्री गोपाल जीवराजका
श्री आलोक बी. श्रीराम
श्री महेश गुप्ता
श्री रवि विग
श्री अनिल खेतान
श्री ललित कुमार मल्होत्रा
श्री सुबोध जैन
श्री सुदर्शन सरीन
श्री प्रदीप मुल्तानी

**सम्पादक मण्डल**
श्री राम बहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री चंदन मित्रा
श्री बलबीर पुंज
श्री कंचन गुप्ता
श्री अतुल जैन
श्री सिद्धार्थ जराबी
श्री सुशील पंडित
श्री अजय सेतिया

**शोध एवं संपादन**
श्री उत्पल कौल
कर्नल तेज के. तिक्कू
श्री उपेन्द्र कृष्ण भट्ट
डा. विकास द्विवेदी

**प्रबंध सम्पादक**
श्री अरविंद सिंह
arvindvnsingh@gmail.com

**सज्जा**
श्री नितिन पंवार
nitin_panwar@yahoo.in

**मुद्रण**
श्री विपिन वर्मा
प्रिंट क्राफ्ट इंडिया
शाहदरा, दिल्ली

# मंथन

**सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम**

**वर्ष -39, अंक-3** **जुलाई-सितम्बर 2018**

## मंथन कश्मीर विशेषांक-दो

**सम्पादक**
**डॉ. महेश चन्द्र शर्मा**

प्रकाशक
**एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान**
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074
ईमेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com

# अनुक्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | आवरण मानचित्र का विवरण | | 01 |
| 2. | सम्पादकीय | | 05 |
| 3. | अतिथि सम्पादकीय | | 06 |
| 4. | अधिमिलन के पीछे की वास्तविकता और तथ्य | देवेश खंडेलवाल | 10 |
| 5. | संविधान सभा में जम्मू और कश्मीर | प्रो. हरि ओम | 17 |
| 6. | अनुच्छेद 370 | वी. शंकर | 22 |
| 7. | 35ए – विघटन की एक धारा | जवाहरलाल कौल | 24 |
| 8. | शेख अब्दुल्लाः व्यक्तित्व और राजनीति | प्रो. काशीनाथ पंडित | 26 |
| 9. | कश्मीर में राष्ट्रवादी प्रतिरोध | उत्पल कौल | 33 |
| 10. | पाक अधिकृत कश्मीर | कर्नल तेज कुमार तिक्कू | 41 |
| 11. | 1947–48 का भारत–पाक युद्धः गिलगित और बल्तिस्तान की स्थिति | कर्नल तेज कुमार तिक्कू | 52 |
| 12. | लद्दाख का भू–सामरिक महत्व | पी. स्तोब्दन | 65 |
| 13. | कश्मीरः एक विकृत इतिहास की कहानी | प्रो. काशीनाथ पंडित | 75 |
| 14. | कश्मीरियों का नृवंशीय जन–संहार | अश्वनी कुमार श्रुंगू | 85 |
| 15. | कश्मीर का इस्लाम पर प्रभाव | डॉ. दिलीप कुमार कौल | 92 |
| 16. | कश्मीरः वैचारिक भटकाव का मुद्दा | रामिश सिद्दिकी | 97 |


# आनुषंगिक आलेख


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | श्रीगुरुजी ने महाराजा को विलय के लिए सहमत किया | एच.वी. शेषाद्रि | 14 |
| 2. | डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी | डॉ. अनिर्बान गांगुली | 32 |
| 3. | अमरनाथ वैष्णवी | उ. कौल | 34 |
| 4. | परमेश्वरी आंदोलन | उ. कौल | 35 |
| 5. | अमर नाथ गंजू | उ. कौल | 36 |
| 6. | शहीद टिक्का लाल टपिलू | उ. कौल | 38 |
| 7. | बलराज मधोक | उ. कौल | 40 |
| 8. | कश्मीर के रक्षकः मकबूल शेरवानी | आर.सी. गंजू | 44 |
| 9. | ब्रिगेडियर मोहम्मद उस्मान | क. तिक्कू | 47 |
| 10. | ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह | क. तिक्कू | 55 |
| 11. | संयुक्त राष्ट्र संघ में जम्मू–कश्मीर | डी. खंडेलवाल | 61 |
| 12. | सात पलायन | क. तिक्कू | 88 |
| 13. | औरंगजेब और शुजात बुखारी की हत्या | एस.के.एन. | 101 |
| 14. | पाठकों की राय | | 102 |

# सम्पादकीय

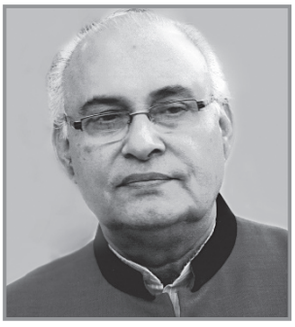

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

'मंथन' के लिए कश्मीर विशेषांक को दो भागों में सम्पादन करने का निश्चय हुआ था, प्रथम भाग (अप्रैल–जून 2018) प्रकाशित हुआ, उसे बहुत अच्छा प्रतिसाद भी मिला। दूसरा भाग (जुलाई–सितंबर 2018) अब आपके हाथों में है। सम्पादन का यह दौर अनुसंधान के एक अद्‌भुत अनुभव का दौर रहा है। जैसे कहा गया है 'हरि अनंत–हरि कथा अनंता', वैसे ही कहना होगा 'कश्मीर अनंत–कश्मीर कथा अनंता।' दो भागों में जितना कुछ समेटने की इच्छा थी, वह नहीं सिमट पाया। राष्ट्रीय संदर्भ में हम कितने गैर–जानकारी के शिकार हैं, यह ध्यान में आता है।

कश्मीर पर प्रभूत साहित्य उपलब्ध है, लेकिन बहुतांश उनमें इकतरफा तथ्यों को दोहराया गया है। वह साहित्य प्रचार–परक ज्यादा तथा अनुसंधान–परक कम है। 'मंथन' की संपादकीय टीम ने यह प्रयत्न किया है कि उन्हीं बातों को बार–बार दोहराने का काम हम न करें।

आ. जवाहरलाल जी कौल हमें अतिथि सम्पादक के नाते प्राप्त हुए। वे तो जम्मू–कश्मीर के चलते–फिरते 'एनसाइक्लोपीडिया' (अमर कोष) हैं। उनके कारण हम कुछ अछूते तथ्यों तक पहुंच सके। उनके द्वारा किया गया मार्गदर्शन एवं लेखन, दो भागों में प्रकाशित इस कश्मीर विशेषांक की अमूल्य निधि है।

आ. श्री उत्पल कौल, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रखर कार्यकर्ता एवं कश्मीर के इतिहास एवं भूगोल के अद्वितीय विद्वान हैं। कर्नल तेज के. तिक्कू भी उतने ही जानकार तथा सामरिक स्थितियों के अनुभवसिद्ध अनुसंधानक हैं। इन दोनों को सम्पादकीय टीम में प्राप्त कर हम निहाल हुए। मैं इन्हें अपनी कृतज्ञता एवं अभिनंदन ज्ञापित करता हूँ।

दो नौजवान शोधकर्ता श्री देवेश खंडेलवाल तथा श्री रामिश सिद्‌दकी की भी सम्पादकीय टीम में उल्लेखनीय भूमिका रही। श्री खंडेलवाल की पुस्तक 'एकात्म भारत का संकल्प' कश्मीर के संदर्भ में अनुसंधान की एक आपवादिक पुस्तक है। मूल स्रोतों से इन्होंने अपने आलेखन को समृद्ध किया है, यह पठनीय पुस्तक है। श्री रामिश सिद्‌दकी विख्यात इस्लामिक विद्वान मौलाना वहीदुद्‌दीन खान के नाती हैं। इनका लेखन एक दृष्टि पथ को उजागर करता है। इन दोनों का स्नेहिल अभिनंदन।

श्री उपेंद्र कृष्ण भट्‌ट जम्मू में रहते हुए भी 'मंथन' की हर बैठक में सामान्यतः उपस्थित रहे। विद्वतजनों से सामग्री जुटाने का इन्होंने सार्थक एवं अथक परिश्रम किया। हिंदी के प्रख्यात पत्रकार श्री अजय सेतिया की सक्रिय भूमिका ने सम्पादन एवं अनुवाद को बखूबी संवारा।

सम्पादन कला में दक्ष श्री सिद्धार्थ जराबी तथा श्री संजीव नायक ने क्रमशः प्रथम एवं द्वितीय भाग को अंतिम रूप दिया। इस क्षमतासंपन्न टीम को जुटाने में मित्रवर श्री संजय गंजू का सहयोग भी रेखांकनीय रहा। अनेक विद्वान लेखक एवं अनुवादकों ने इस विशेषांक को समृद्ध किया है, सबका नाम लेकर उन्हें साधुवाद देना भी संभव नहीं है। 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' की स्थाई टीम तो सदैव इन कार्यों के लिए सन्नद्ध रहती है। अपनी कृतज्ञतानुभूति व्यक्त करता हूं।

संपूर्ण भारत में ही, कश्मीर भी जिसका हिस्सा है, राष्ट्रीयता के संदर्भ में उधार की पाश्चात्य शब्दावलियों से ही हमारा आख्यान मंडित रहता है। परिणामतः हमारी बहुलता का अंगांगीभाव नष्ट होकर समानान्तरता का भाव प्रबल बन जाता है। यह भाव ही पृथकतावाद की जननि है। महजबांतरित एवं अनांतरित समुदायों के एक ही समाज का हिस्सा होने के बावजूद इनका न केवल पृथकतावादी वरन शत्रुतावादी आख्यान होता है। विदेशी आक्रमणों एवं इतिहास की विकृत व्याख्या की यह त्रासदी है। 'मंथन' ने प्रयत्न किया है कि कश्मीर का आख्यान समुचित एवं मौलिक शब्दावली में हो, लेकिन इसमें पर्याप्त सफलता नहीं मिल पाई है। कुछ ज्यादा साधना एवं अनुसंधान की जरूरत है।

शुभम्

mahesh.chandra.sharma@live.com

# संवाद की पगडंडियां तो मिल ही जाएंगी

**जवाहरलाल कौल**
अतिथि संपादक

जम्मू–कश्मीर की मुख्यमंत्री महबूबा* मुफ्ती ने केंद्र सरकार से अनुरोध किया कि कम से कम रमजान के मास में गोलीबारी रोक दी जाए। हिंसा का माहौल किसी प्रकार के प्रशासन की उपयोगिता और कुशलता के लिए घातक होता है। हिंसा रुक सकती थी अगर इस बात पर दोनों पक्ष सहमत होते। आरम्भ में तो कोई पक्ष सहमत नहीं था, न सुरक्षा बल और न ही आतंकवादी गुट। सुरक्षाबलों का तर्क था कि बडी मेहनत से आतंकवादियों के वर्चस्व को तोड दिया है, इस उपलब्धि को गंवाने से क्या लाभ? सुरक्षाबलों का अनुभव है कि आतंकवादी कोई वायदा पूरा कर ही नहीं सकते हैं। लेकिन भारतीय सेना अनुशासित बल रहा है और अब भी है, इसलिए उसे मानना पडा जब सरकार ने रमजान को खून खराबे से मुक्त रखने का फैसला किया। इस मामले में समस्या केवल यही नहीं है कि आतंकवादी गुट अपनी मर्जी के मालिक नहीं और उन्हें वही करना पडता है जो उन्हें सीमा पार से आदेश मिलता है, अपितु यह भी है कि राज्य सरकार का अपने प्रशासनिक अमले पर भी पूरा नियंत्रण नहीं है और न अपने राजनैतिक कार्यकर्ताओं पर। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी ऐसे ही एक प्रस्ताव पर अमल करने का प्रयास किया था लेकिन नतीजा उल्टा ही निकला, आतंकवादियों ने सुरक्षाबलों के विराम का अनुचित उपयोग किया और अपनी सक्रियता बढाई। फिर भी अगर सरकार ने महबूबा के प्रस्ताव को स्वीकार किया है तो बातचीत से युवकों को हिंसा के मार्ग से हटाने का कोई भी प्रयास जोखिम भरा कदम भले ही हो एक साहसिक प्रयास है।

यह सच है कि जम्मू–कश्मीर की आबादी का बहुत बडा प्रतिशत हिंसा के इस वातावरण से मुक्ति चाहता है। इनमें युवकों की संख्या भी बड़ी है। लेकिन इन वर्गों तक पहंच बनाना सबसे बडी समस्या है क्योंकि पाकिस्तान ने कश्मीर को अपनी जीवन रेखा बना लिया है। जिस अविश्वास और घृणा के सिद्धांत पर उस देश का जन्म हुआ है उसमें उसे हर समय एक शत्रु की आवश्यकता है जिसके बिना उस त्रिकोण का संतुलन नही रह सकता है जिसके आधार पर पाकिस्तान टिका हुआ है–सुन्नी राजनैतिक नेता, सेना और आतंकवादी गुट। शांतिवार्ता उनके लिए अवांछित स्थिति है क्योंकि टकराव और हिंसा के बिना जनता प्रायः तर्कसंगत चिंतन की दिशा में बढने लगती है जिसमें आतंकवाद नहीं पनप सकता है। दक्षिण कश्मीर के एक युवक ने बताया दो सौ आतंकवादी कोई समस्या नहीं हैं, समस्या वे हजारों लोग हैं जो बिना सोचे समझे किसी आतंकवादी की मौत पर मातम मनाने सडकों पर निकल आते हैं। समस्या उनके बीच विश्वास पैदा करना है और उनको सोचने और पूछने–जानने की स्थिति में लाना है। अर्थात कश्मीर के देहाती क्षेत्रों में संवाद स्थापित करके विमर्श बदलना है। हम मानते हैं कि कश्मीर में आज भी पच्चास प्रतिशत लोग इस हिंसा की राजनीति से असहमत हैं। हमारा यह विश्वास उन लोगों से मिलने और मिलते रहने से हुआ है जिन्होंने कभी पत्थर नही फेंका, बंदूक नही उठाया, किसी का घर नही जलाया। और उन लोगों से भी जो कभी ये सब काम कर चुके थे लेकिन अब तौबा कर चुके हैं। बहुत से लोगों का यही अनुभव है। सरसरी तौर पर देखने से हम कश्मीर घाटी की वास्तविक स्थिति का सही–सही अंदाज नहीं लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण कश्मीर को आतंकवाद का गढ़ माना जाता है और वास्तव में वह है भी। वहीं जमाते इस्लामी का भी सबसे अधिक दबदबा है और वहीं जनता में साम्यवादी विधायक तारिगामी का भी भी रुतबा है। उसी इलाके में ऐसे भी गांव हैं जहां पत्थबाजी भी जमकर हुई है। केंद्र सरकार की कुछ लोकप्रिय विकास योजनाओं में भी अच्छी भागीदारी है और वोट डालने के मौके पर श्रीनगर और अनंतनाग

**सम्पादकीय लिखे जाने के बाद भाजपा द्वारा समर्थन वापस लेने के कारण वे अब मुख्यमंत्री नहीं रहीं*

के उदाहरण को दरकिनार करके सत्तर प्रतिशत वोट भी पडते हैं। यानी जीवन विविध प्रकार की प्रवृत्तियों से भरा और एकदम सामान्य है। त्राल क्षेत्र में जहां से बुर्हान वानी भी निकले और मूसा जैसे घोर पाक परस्त आतंकवादी नेता भी, लेकिन इस क्षेत्र में हिंसा की बहुत कम घटनाए हुई हैं। लगता है कि कस्बे के लोग हिंसा की अनुमति नही देते हैं और आतंकवादी चाहे किसी दर्जे का हो, लोगों के इरादे को अनसुना करने का साहस नही करता। त्राल के लोग खासकर पिछले दो–तीन दशक में अर्जित संपन्नता पाकिस्तान के लिए गंवाने को तैयार नहीं। शांति चाहने वाले कश्मीर में हर क्षेत्र में बिखरे हैं, कहीं अधिक और कही कम लेकिन इस मारामारी और शोरगुल में भी उन्हें पहचाना जा सकता है। सवाल है कि उन तक पहुंचा कैसे जाए? गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने हाल में ही अपनी कश्मीर यात्रा के दौरान कहा कि केंद्र सरकार खुले दिमाग के लोगो से बातचीत करना चाहती है। जिनके लिए दिमाग खुला हो आवश्यक नहीं वे हमसे सहमत भी हों। सहमति तो संवाद से ही बनती है। वैसे लोगों की बड़ी संख्या वहां हैं लेकिन वे दो कदम आप की ओर उठाने का साहस नहीं कर पाते तो फिर पहल तो आप को ही करनी होगी।

एक मार्ग है कट्टरवादियों को दबाना या समाप्त करना। लेकिन कट्टरवादी वहीं नही जो हथियार उठाकर मारते हैं, वे भी हैं जो उनका बाहर रह कर ढिंढोरा पीटते हैं और राजनीति के नाम पर देश द्रोह को बढ़ावा देते हैं। इतने बड़े समूह को दबाना आसान और वाजिब काम तो नही हो सकता है। दूसरा मार्ग है भयभीत और दमित को ताकत देना, उसका सम्मान बढाना, उसे प्रोत्साहित करना और उसे समाज की नजरों में उठाना। हमारी आज की सरकार तो मुख्य रूप से विकासवादी सरकार ही है। विकास ही उसका मूल मंत्र है। इसके लिए उसने बहुत सारी छोटी–बड़ी योजनाएं भी जारी की हैं। कश्मीर से जो जानकारी मिल रही है, उसके अनुसार आम लोगों, किसानों, ग्रामीणों के लिए बनी बहुत सी योजनाओं को तो वहां लागू ही नही किया गया है और जिन पर अमल हो रहा है, वे घोर रिश्वत–खोरी और दूसरे प्रकार के घोटालों के कारण सरकार की बदनामी का ही कारण बन रही हैं। योजनाएं तभी जनमत की सरकार की उपलब्धियों के बारे में सार्थक राय बनाने में सफल होंगी जब उन्हें लागू करने वाले राजनेता और सरकारी अफसर उनका फल आम जनता तक पहुंचने दें। राज्य सरकार के प्रमुख नेताओं को समझ लेना चाहिए कि गांवों में सरकार और सत्तारूढ़ दल की चिरस्थायी साख बनेगी तो जनता से पैसा उलीचने वाले कार्यकर्ताओं से नही अपितु ईमानदारी से योजनाओं को अमल में लाने से ही बनेगी। क्या ऐसा कोई वर्ग तैयार किया जा सकता है जो ग्रामीण विकास के उद्देश्य से ही अपने काम से प्रतिबद्ध हो?

पहले कदम के रूप में क्यों न उन हजारों युवकों से संवाद स्थापित किया जाए जो आज हमारे देश के दर्जनों विश्वविद्यालयों और शिक्षा के अन्य संस्थानों में पढ रहे हैं। ये युवक कई मायनों में राज्य में ही रहने वाले अधिकाशं युवकों से भिन्न हैं क्योंकि एक तो इनके भीतर वर्तमान माहौल से बाहर निकलने की इच्छा जाग गई है और दूसरा इनका दिमाग धीरे–धीरे खुल रहा है और वे दूसरी दिशाओं के विचारों और तर्कों पर विचार करने के लिए तैयार हो रहे हैं। इस का अर्थ यह नहीं है कि हर छात्र जो जम्मू–कश्मीर से बाहर शिक्षा के लिए आता है, अचानक कट्टरता को त्याग कर सर्वधर्म समभाव को अपना लेता है। नहीं, यह सोचना व्यवहारिक नहीं होगा। इनमें से भी बहत से छात्र होगे जिनकी कट्टरता जुनून की हद तक पहंच चुकी होगी। या जो देश के अन्य क्षेत्रों मे सक्रिय अन्य अतिवादियों के संपर्क में आकर पहले से भी अधिक कटटर हो जाएं। लेकिन इन अपवादों से इस बात को नही नकारा जा सकता है कि अधिकांश छात्र खुलेपन में मतांधता से दूर ही रहना चाहते हों। इनमें से बहुत से युवक वापस अपने घरों को बहुसंस्कृति का ही संदेश ले जाएंगे। शायद इनमें से ही एक वर्ग ऐसा विकसित हो जो नए विमर्श का मंच बन सके।

भारत का विभाजन करके एक अलग देश बनाने के विचार से ही जम्मू–कश्मीर की त्रासदी का भी जन्म हुआ था। इसका मौसम, इसकी प्राकृतिक सुंदरता, पर्वत श्रृंखलाओं के बीच बसा होने पर भी देश के विभिन्न भागों से जुड़े रहने के लिए हजारों पहाड़ी दर्रों के अतिरिक्त पूर्वी और पश्चिमी दुनिया को जोड़ने वाले अतिप्राचीन राज मार्ग, ज्ञान, दर्शन और साधना का वातावरण और उस वातावरण को संभव बनाने वाली सर्वधर्म समभाव की परम्परा, शायद इन्हीं गुणों के कारण दूर–दूर के कबीले और आयुधजीवी समूह कभी लूटमार के लिए, कभी धर्मांतरण के उद्देश्य से और कभी व्यापारिक मार्गों पर अधिकार करने के लिए आक्रमण करते रहे हैं। बदले में वे इस शांत प्रदेश को हिंसा, प्रतिशोध, मतांधता और अन्य आसुरी भावनाएं और धारणाएं भेंट में देते रहे हैं। वे भी कश्मीर को धरती का स्वर्ग कहते थे लेकिन धरती के इस भाग के भौतिक सौंदर्य से अभिभूत होने पर भी इसके आंतरिक सौंदर्य, बौद्धिक ज्ञान और आत्मिक गहनता से उन्हें डर लगता था। इस ज्ञान परंपरा को दबाना और समाप्त करना उनके शासन का निश्चित कार्यक्रम बन जाता था। ज्ञान और सदभाव से दुश्मनी का यह रिश्ता चौदहवीं शताब्दी से लेकर आधुनिक युग तक जारी रहा है। भले ही बीसवीं शताब्दी तक आते–आते वे रंग रूप में, रहन–सहन में सभ्य और संभ्रांत दिखते हों, स्वभाव और कर्म में कबीलाई प्रवृत्ति के ही थे। 1947 में अंतिम कबीलाई आक्रमण के पश्चात भी जम्मू कश्मीर की

समस्या वही है। अलगाव की जिन शक्तियों ने हम मजहब बंगालियों को अलग होने पर मजबूर किया, पाकिस्तान के प्रस्ताव का समर्थन करने वाले सिंधियों को राजनीति की मुख्य धारा से लगभग बाहर ही कर दिया है, अब उसी प्रकार कश्मीरियों को मोहपाश में जकड़ने का प्रयास कर रही हैं। यह मोहपाश वैसा ही है जो गिलगित के मूल निवासियों का वजूद ही समाप्त करने पर तुला है। इकबाल ने मुसलमानों के लिए एक सूत्र दिया था। इसे पूरे भारत पर तो लागू नहीं किया गया लेकिन पाकिस्तान के अतिरिक्त योजनाबद्ध तरीके से कश्मीर पर थोपने की कोशिश की गई। सूत्र था धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र इस्लाम के लिए कफन के समान है। भारत के संदर्भ में यह इस बात में प्रासंगिक था कि मुसलमानों के लिए अलग देश इसी सूत्र की कोख से पैदा हुआ। भारत हिंदू बहुल देश था। अगर भारत ब्रिटेन की गुलामी से आजाद हुआ तो यहां लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था होगी यानी हिंदुओं का बहुमत होगा, मुसलमान अल्पमत में होंगे। मुसलमान संप्रदाय के सामने यह प्रश्न खडा किया गया–जिस कौम का भारत पर कई शताब्दियों तक शासन चलता था वही कौम क्या अपने शासितों के आधीन रहेगी? यह घारणा प्रचारित की गई कि अंग्रेजों ने मुसलमान शासकों से भारत छीना तो अंग्रेजों के जाने का मतलब तो यही होना चाहिए कि पूर्व शासकों को पूरा न सही, अपना हिस्सा तो मिलना ही चाहिए।

यह तर्क संगत भले न हो, सैद्धांतिक स्तर पर महत्त्वपूर्ण है। छः सौ साल भारत में रहने के बाद भी मुसलमानों को यह बताया जा रहा था कि तुम हिंदुओं से अलग हो क्योंकि तुम भारत के मूल निवासी नहीं, उसके विजेता हो। इसी का दूसरा दूरगामी नतीजा यह भी निकला कि इस्लाम के नाम पर जो शासन चला वहां लोकतंत्र तो टिका नही और मुस्लिम बहुल होने के बावजूद किसी दूसरे धर्म या अपने मजहब के ही किसी गैर सुन्नी मतावलंबी को कर्म या वचन की स्वतंत्रता नही मिल पाई। भारत के कस्बे कादियान में जन्मे अहमदिया पंथ के नेताओं को गलतफहमी थी कि मुसलमानों के देश में रह कर उनके पंथ को फलने–फूलने का मौका मिलेगा। लेकिन वहां जाकर बहुत देर से उन्हें एहसास हआ कि वह ऐसा देश है जहां असहमति का कोई स्थान नहीं। लाहौर मे बनी अखिल भारतीय जम्मू–कश्मीर समिति के इस सूत्र को कश्मीरी मुसलमानों ने आरम्भ में अस्वीकार कर दिया और इकबाल और बशीरुद्दीन महमूद वहां से निराश ही लौटे। लेकिन बार–बार देशी और विदेशी शक्तियों के दबाव के कारण आज कश्मीरी मुस्लिम समाज का एक वर्ग उसे अपना मूल मंत्र मानने लगा है। यह संयोग नही है कि उसी छोटे वर्ग की नकेल में आतंकवाद की डोर का एक सिरा बंधा है तो दूसरा सिरा पाकिस्तान में सक्रिय सलाफी इस्लामी सरगनाओं के हाथों में है जिन्हें पाकिस्तानी हुकुमरानों का ही नहीं और देशों का भी समर्थन मिला हुआ है। इस कुचक्र के पीछे वही घारणा काम कर रही है जो शताब्दियों से चर्चित 'गजवातुल हिंद' के सपने को जीवित रखे हुए है।

पाकिस्तानी कई कारणों से जम्मू कश्मीर को अपने पास रखना चाहते थे। इसे पाने के लिए एक–दो बार खुली जंग का भी सहारा लिया गया। इन दोनों समर नीतियों की असफलता के पश्चात ही इस छद्मयुद्ध यानी आतंकवाद का सहारा लिया गया। इस स्थिति तक आने में हमने कोई सामरिक भूल नहीं की थी लेकिन लगता है इस तीसरे चरण में कहीं चूक गए। पहली, आतंकवादी घटनाओं के समय राज्य में नियमित रूप से पुलिस भी थी, कानून व्यवस्था भी और एक स्थिर सरकार भी। सबको सहारा देने के लिए सेना भी पास ही थी। आतंकवादियों को पकडा भी गया, उन पर अभियोग भी चला और अंत में मकबूल बट्ट को फांसी का दण्ड भी दिया गया। हालांकि यह बदली हुई समर नीति की शुरुआत ही थी और अब तक पाकिस्तान न तो कश्मीर घाटी में अपना आतंकी तंत्र खडा कर पाया था और न जम्मू–कश्मीर में अलगाववादियों की पहुंच अधिक थी। पहली आतंकवादी जमात सही मायने में अलगावादी थी, वह पाकिस्तान के लिए काम करने वाली एजेंसी नहीं बनी थी और उस पर पाकिस्तान के आकाओं का नियंत्रण भी नहीं था। लेकिन यह अनुमान लगाना आसान था कि इसका अगला रूप क्या होगा। मकबूल बट्ट जम्मू कश्मीर मुक्ति मोर्चे का सदस्य था। अमानुल्ला खान के साथ वह जम्मू–कश्मीर को भारत और पाकिस्तान दोनों से अलग स्वतंत्र देश बनाना चाहता था। कुछ समय यह संगठन चला लेकिन जब इसकी लोकप्रियता बढ़ने लगी तो पाकिस्तान ने इस संगठन पर अंकुश लगाया और मकबूल बट्ट गिरफ्तार कर फिर से भारत की सीमा में घकेल दिया गया। मकबूल बट्ट को भारतीय सुरक्षा बलों के चंगुल में फंसाने में पाकिस्तानी शासकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। स्वतंत्र कश्मीर पाकिस्तान के काम का विकल्प नहीं हो सकता था । इसलिए जेकेएलएफ उनके लिए स्थाई उपयोग का संगठन नहीं था। लेकिन मकबूल बट्ट ने पाकिस्तान को आतंकवाद का एक रास्ता दिखा दिया जिससे भारतीय सुरक्षा बलों और जम्मू–कश्मीर के राजनैतिक दलों को परेशान किया जा सकता था। जिससे जम्मू–कश्मीर के प्रशासन और राजनीति में सशक्त दखल बनाई जा सकती थी। 1966 से 1984 तक जम्मू–कश्मीर में आतंकवाद के लिए उपयुक्त ढांचा खडा करने का काल था। इसी काल में कश्मीर के वर्तमान संकट का विकास हुआ और दुर्भाग्य से इसी काल में भारत सरकार दुश्मन के इरादे समझने में चूक गई और कोई कारगर समर नीति तय नहीं हो पाई ।

जम्मू–कश्मीर में अलगाववाद को हिंसक प्रतिरोध का रूप देने और उसमें मजहबी जुनून पैदा करने के इस काल में जमाते इस्लामी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अक्सर बताया जाता है कि दुनिया में इस्लामी कट्टरता का दौर सलाफी इस्लाम के कारण आरम्भ हुआ जिसमें कुफ्र के विरुद्ध जेहाद ही सबसे बड़ा फर्ज है और कुफ्र के वर्ग में वे सब मत मतांतर आते हैं जो शरीयत के अनुसार नहीं चलते, यानी वे सभी मत और विचार जो सुन्नी सम्प्रदाय से भिन्न हों। लेकिन भारत में अपने ही प्रकार का सलाफी इस्लाम पहले से ही विकसित हो चुका था। उसे सउदी अरब से इस्लाम के किसी अन्य संस्करण की आवश्यकता नहीं थी। सलाफीवाद पिछली सदी में इस्लाम की ऐसी व्याख्या है जिसमें शरीयत के पारम्परिक अर्थ से भिन्न किसी भी मत मतांतर की मान्यताएं कुफ्र हैं। उदाहरण के लिए विश्वभर में मुसलमानों ने पिछली कई शताब्दियों में कुछ स्थानीय

रीतियों और परम्पराओं को अपना लिया है। सूफी और दूसरे प्रकार के संतो का एक सिलसिला विकसित हुआ और लोग उनकी दरगाहों, मकबरों पर सजदा देने आते रहे हैं। ऐसे पीरों फकीरों के जन्म दिनों पर बड़े–बड़े मेले लगते रहे हैं। ये सलाफीवाद के अनुसार गैर इस्लामी कार्य माने जाते हैं। लेकिन सलाफियों के जिस वर्ग के कारण विश्व में हलचल मच गई हैं वह जेहादी वर्ग हैं जो अपनी धारणाओं को लागू करने के लिए हत्या करना भी सही मानता हैं। लेकिन सलाफीवाद अपने आप में कोई स्वतंत्र वाद नहीं है। इसका मूल इससे पहले स्थापित वहाबीवाद में हैं। वहाबीवाद को 1750 के आस–पास आरम्भ किया गया। इसके अनुसार इस्लाम में कोई नवीकरण नही होना चाहिए। इसे उस समय के आलिमों ने स्वीकार नहीं किया लेकिन अब्दुल वहाब ने उस समय के सउदी परिवार से समझौता किया कि अगर वह इस मत का समर्थन करेंगे तो वहाबी सउदियों को सत्ता दिलवा देंगे। यह समझौता काफी समय तक टिका रहा और 1932 में अरब में सउदी अरब की सउदी राजशाही स्थापित हो गई। सउदी बादशाहों ने विश्व के अनेक कट्टरवादी संगठनों को वित्तीय सहायता देना आरम्भ किया। 1970 में यह सहायता दस अरब डॉलर तक पहुंच चुकी थी।

लेकिन 1970 से पहले ही भारत में वहाबी मत का भारतीय संस्करण चालू हो चुका था। देश के स्वतंत्रता आंदोलन के आरम्भिक दौर में ही मौलाना मौदूदी ने जमाएते इस्लामी का गठन किया था। मौदूदी इस्लाम के बड़े आलिमों में माने जाते थे और साथी अरब में भी उनकी मान्यता थी। उन्होंने कुरआन और शरीअत की जो व्याख्या की वह वहाबी मत से हूबहू मिलती है। कश्मीर में आरंभिक आतंकवाद में जमाते इस्लामी की विचारधारा की ही छाप दिखाई देती है जिसका खामियाजा कश्मीर की दरगाहों और अस्थानों को भी उठाना पड़ा। भारत के विभाजन के पश्चात मौदूदी पाकिस्तान चले गए। भारत में जमाएते इस्लामी की भूमिका गैर राजनैतिक संगठन के रूप में रही। लेकिन जम्मू–कश्मीर में इसे राजनैतिक भूमिका समेत एक अलग संगठन के रूप में चलने दिया गया। सभी राजनैतिक दलों ने जमात का इस्तेमाल अपने तात्कालिक हितों के लिए किया लेकिन जब जमाएते इस्लामी आकार में बड़ी हो गई तो उन्हें भी इससे डर लगने लगा। शेखअब्दुल्ला ने अपनी कश्मीरियत को मजहबी पुट देने के लिए लगातार जमाती तर्कों का सहारा लिया लेकिन जब वास्तविक जमाती तत्त्व उनके लिए चुनौती बन गए तो वे कबीलाई शाह की भांति लोकतंत्र के मौलिक सिद्धांतों को भी भूल गए। जमाती समर्थक गुट 1970 से ही किसी न किसी रूप में चुनावों में अपनी ताकत आजमाने की कोशिश कर रहे थे और हार कर भी वे थोड़ी–थोड़ी मात्रा में अपनी शक्ति बढा रहे थे। 1978 विधान सभा चुनावों में जमात ने अन्य मुस्लिम गुटों को एक ही झंडे के नीचे लाकर शेख को चुनौती दी। शेख अब्दुल्ला को महसूस हुआ कि उनकी नेशनल कांग्रेस लड़खड़ा सकती है तो उन्होंने आचारसंहिता और लोकतंत्र के सभी नियमों को ताक पर रख सत्ता के बल पर इतने बडे पैमाने पर धांधली करवाई कि जमात केवल चार सीटें ही जीत पाई जबकि जानकारों के अनुसार वह कम से 13 सीटें जीत जाती। इस तानाशाही का जवाब जमात ने आतंकवादी गुटों को खुलकर समर्थन देने से किया। कश्मीर घाटी में व्यापक पैमाने पर आतंकवाद अगले ही साल आरम्भ हुआ जबकि जमात ने हिजबुल मुजाहिद्दीन को अपनी हथियार बंद इकाई के रूप में स्वीकार कर लिया।

भारत सरकार 1980 के बाद ही जमाते इस्लामी के बढ़ते प्रभाव को देख रही थी और इसका प्रभाव उसी अनुपात में बढ़ रहा था जिस अनुपात में शेख अब्दुल्ला के पारिवारिक वर्चस्ववाद की पकड दृढ़ हो रही थी। केंद्र में शासन करने वाले परिवार के लिए शायद कश्मीर के शासक परिवार को रोकना संभव नहीं था लेकिन यह भारत और कश्मीरियों के लिए एक विनाशकारी दौर को आमंत्रण था। आज भी कश्मीर में कथित रूप से धर्मनिरपेक्ष सरकार के नीचे जमाएते इस्लामी सक्रिय है। कश्मीर के गांवों में खासकर दक्षिण कश्मीर में उन सभी निचले संगठनों पर परोक्ष रूप से जमाएते इस्लामी का ही दबदबा है, जिनके कंधों पर जम्मू कश्मीर का शासन चलता है। इस बात को सार्वजनिक तौर पर न राज्य की और न ही केंद्र की सरकारें स्वीकार करनें को तैयार नहीं होंगी और शायद यह राजनैतिक कारणों से तर्क संगत भी है। लेकिन अब समय आ गया है कि हम कुछ बातों को स्वीकार करने का साहस दिखाएं। जम्मू–कश्मीर का आतंकवाद पाकिस्तान के वर्तमाण शासकों के लिए जीवन–मरण का प्रश्न है और वे इसे समाप्त करने का जोखिम नही ले सकते। हम बातचीत से पाक नेताओं को अस्थाई युद्ध विराम के लिए तैयार भले ही कर पाएं स्थाई शांति वार्ता के लिए नहीं। पाकिस्तान भले ही कश्मीरियों का हमदर्द बनता हो अमन चैन का माहौल लाना उसके हित में नहीं है, इसलिए उनके लिए आतंकवाद बंद नहीं होना चाहिए, जारी रहना चाहिए। भारत सरकार ने राज्य सरकार के अनुरोध पर रमजान के महीने के लिए सुरक्षा कार्रवाइयों पर रोक लगाना स्वीकार किया। अमन की उम्मीद आम जनता में जग सकती है और उम्मीद से ही अमन की चाह भी बढ सकती है। यह बात मुख्यमंत्री महबूबा को समझने या समझाने की आवश्यकता है कि अपने प्रशासकीय अमले पर नियंत्रण के बिना न तो वे जमाते इस्लामी को दबा सकती है और अपने ही राजनैतिक कार्यकर्ताओं को नियंत्रित कर सकती है जो जमात के ही रास्ते से पीडीपी में शामिल हुए है। केवल तमाशाई बनने से समझौता सरकार की न तो साख बचेगी, न ही अमन की उम्मीद जीवित रहेगी। महबूबा का वह जनसमर्थन अब काफी हद तक समाप्त हो गया है जो उनके पिता ने खडा किया था। वह जनसमर्थन वास्तव में जमाते इस्लामी के तत्त्वों की राजनैतिक समीर नीति के कारण बना था। अब जमाते इस्लामी ही महबूबा के विरुद्ध हो गई तो जनाधार कहां टिकता। महबूबा को अपने से पूर्ववर्ती राजनेताओं के अनुभवों से सीखना चाहिए। कट्टरपंथी तत्त्वों का सहारा लेकर कभी शेख अब्दुल्ला भी अपनी लाकेप्रियता खो गए थे, उनके बेटे फारूख को भी अपना देश छोड कर भागना पडा था और कट्टरपंथियो से दोस्ती गुलशह के भी किसी काम नही आई, वे राजनीतिक शून्य में चले गए। ■

*संपर्क - 9711361937*
*kauljawaharlal@gmail.com*

देवेश खंडेलवाल

# अधिमिलन के पीछे की वास्तविकता और तथ्य

जब द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ तो भारत में स्व–शासन आंदोलन तेजी से प्रगति कर रहा था। 12 मई, 1946 को स्टेट ट्रीटीज एवं पैरामाउंट का ज्ञापन कैबिनेट मिशन द्वारा चैंबर ऑफ प्रिंसेस के चांसलर के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इसके बाद, 3 जून, 1947 को माउंटबैटन योजना की घोषणा कर दी गई। इस योजना की एक सलाह यह थी कि 562 रियासतें अपना भविष्य स्वयं तय करने के लिए स्वतंत्र हैं यानी वह भारत अथवा पाकिस्तान में से किसी एक को स्वीकार कर सकती हैं। अंततः 18 जुलाई, 1947 को यूनाइटेड किंगडम की संसद ने विभाजन के साथ भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पारित कर दिया। अधिनियम की धारा 1 (आई) के अनुसार, 'अगस्त के पंद्रहवें दिन, उन्नीस सौ सैंतालिस से भारत में दो स्वतंत्र डोमिनियंस (अधिराज्य) की स्थापना की जाएंगी, जिन्हें क्रमशः भारत और पाकिस्तान के रूप में जाना जाएगा'।

परिणामस्वरूप, अधिनियम ने भारतीय रियासतों के ऊपर ब्रिटिश क्राउन का आधिपत्य समाप्त कर दिया। 25 जुलाई, 1947 को भारत के गवर्नर–जनरल एवं वायसराय, लुईस माउंटबैटन ने क्राउन प्रतिनिधि की अपनी क्षमता के रूप में राजाओं को अंतिम बार आमंत्रित किया। उन्होंने सलाह दी कि वे अपना मन बना ले और व्यक्तिगत तौर पर भारत अथवा पाकिस्तान में से एक को स्वीकार करें। उन्होंने यह भी बताया, "आप अपनी नजदीकी डोमिनियन सरकार और सबसे महत्वपूर्ण जिस जनता के लोक–कल्याण के लिए जिम्मेदार हैं, दोनों को नजरंदाज नहीं कर सकते"।[1] इसलिए एक स्वतंत्र राष्ट्र बनने का प्रश्न यहां समाप्त हो गया था। अन्य तीसरे राष्ट्र के निर्माण का कोई विकल्प ही नहीं था। भारत के उप–प्रधानमंत्री एवं राज्य मंत्री, वल्लभभाई पटेल 'सरदार' ने दृढ़ता से कहा कि 15 अगस्त, 1947 से पहले यह निर्णय ले लिया जाना चाहिए।

जम्मू–कश्मीर के महाराजा, हरि सिंह की स्वतंत्र होने की कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी जबकि वास्तव में वे सम्पूर्ण भारत की प्रगति में दिलचस्पी रखते थे।[2] एक गलत इस्लामिक पहचान के प्रश्न पर कुछ सांप्रदायिक एवं अराजक तत्वों के कारण राज्य के अधिमिलन में विलंब हुआ। वे राज्य में ब्रिटिश डिवाइड एंड रूल की नीति को लागू करना चाहते थे क्योंकि वहां मुसलमान बहुसंख्यक थे और शासक एक हिंदू था। इसका कोई साक्ष्य नहीं है कि महाराजा अपनी मुसलमान जनसंख्या के विरुद्ध थे। भारत में शामिल हुई अन्य कुछ रियासतों में भी इसी प्रकार की बेमेल स्थिति थी। डॉ. भीमराव अम्बेडकर 'बाबासाहेब' ने इस स्थिति को अपनी पुस्तक 'पाकिस्तान ऑर द पार्टीशन ऑफ इंडिया' में समझाया है, "कश्मीर राज्य में, शासक एक हिंदू है लेकिन अधिकांश जनसंख्या मुसलमान है, कश्मीर में मुसलमान एक प्रतिनिधि सरकार के लिए लड़ रहे है क्योंकि कश्मीर में प्रतिनिधि सरकार का अभिप्राय हिंदू शासक से मुसलमान जनता को सत्ता का हस्तांतरण है। अन्य राज्यों में जहाँ शासक एक मुसलमान है लेकिन वहां अधिकांश जनता हिंदू हैं। ऐसे राज्यों में प्रतिनिधि सरकार का मतलब है कि मुसलमान शासक से हिंदू जनता को सत्ता का हस्तांतरण और यही कारण है कि मुसलमान एक मामले में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना का समर्थन करते हैं तथा दूसरे में इसका विरोध करते हैं"।[3]

हालांकि, सभी रियासतों का अधिमिलन भारत के साथ बिना किसी जटिलता के हो गया था। जम्मू–कश्मीर का प्रश्न कभी पेचीदा नहीं होता लेकिन इसे जानबूझकर बनाया गया। जब मई 1946 में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन दिल्ली में था तो नेशनल कॉन्फ्रेंस के नेता, शेख मोहम्मद अब्दुल्ला

जम्मू–कश्मीर के महाराजा, हरि सिंह की स्वतंत्र होने की कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी जबकि वास्तव में वे सम्पूर्ण भारत की प्रगति में दिलचस्पी रखते थे। एक गलत इस्लामिक पहचान के प्रश्न पर कुछ सांप्रदायिक एवं अराजक तत्वों के कारण राज्य के अधिमिलन में विलंब हुआ

9867089326,22071127

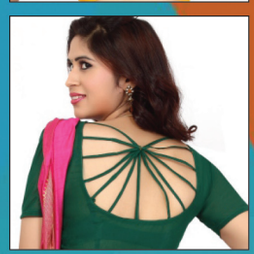

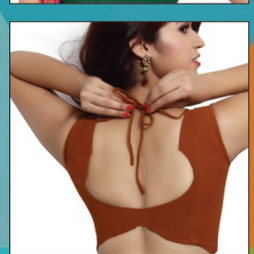

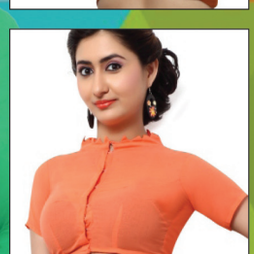

# KOTHARI

## FABRICS

INDIA'S PREMIUM BLOUSE FABRICS

RANG JO DIL CHAHE

KOTHARI FABRICS

TWO x TWO RUBIA

- Skin Friendly
- Wrinkle resistence
- Cotton Rich
- Washing Fastness
- Controlled Shrinkage

KOTHARI FABRICS RANG JO DIL CHAHE

100% COTTON RUBIA
TWO X TWO RUBIA
& DRESS MATERIAL

AANTARIK FILMS PVT. LTD.
STRESS FREE ENTERTAINMENT

"TO GET RICH NEVER RISK YOUR HEALTH"
EURO Quality is our Mission
World's Finest Olive Oil
Product of Spain

## Kothari Group of Companies

KOTHARI INFRASTRUCTURE
सच हो सपना, आशियाना हो अपना

Ken Hari
Single Destination
Globe Satisfaction

Late Smt. Kavideri Bhanwarial Kothari Charitable Trust
सेवा, शिक्षा, चिकीत्सा

# गाय का कल्याण किसान के बिना नहीं
# किसान का कल्याण गाय के साथ ही

ए 2 मिल्क रिसर्च कॉर्पोरेशन
A2 Milk Research Corporation

Ref. No:- A/02/12/01 — Certificate of Analysis — Date:- 11/08/2016

| | | | |
|---|---|---|---|
| Customer Name | KALYANI PAHARIH COW DEVELOPMENT & RESEARCH CENTRE | | |
| Address | VILLAGE - KHANALAG, POST- MANJOO, TAL - ARKI, DIST- SOLAN , H.P. 173208 Mob- 9418027861, Email- rohitashchander@gmail.com | | |
| Lab Code No | 01 | Date of sample collection | 02/08/2016 |
| Sample Type | Milk | Sample Collected By | Self |
| No of Sample | 02 | Collection Centre Code No. | 01 |

Result of Test

As per the PCR based A1 and A2 test performed on the DNA isolated from the samples are given below :-

| Sample No. | Cow tag No./ Name | A1 / A1 | A1 / A2 | A2 / A2 |
|---|---|---|---|---|
| 01. | Yamuna | – | – | YES |
| 02 | Kali -1 | – | – | YES |

Authorized Signature
Prem Lal [illegible]

Email: a2milkindiacorp@gmail.com — Cell. +91-9575 150000

## उद्देश्य

- किसान की आय बढ़ाना
- ए2 दूध के प्रति जागरुकता
- देसी गाय का संरक्षण
- देसी गाय के उत्पादों को विकसित करना


संपर्क :+91 94180 27861, +91 70189 20892
ग्राम खनलग, पो. ओ. मानजू, तह. अर्की, ज़िला सोलन, हिमाचल प्रदेश
kalyani pahari cow development & research centre
रामकमल चैरिटेबल एण्ड रिलिजियस ट्रस्ट का उपक्रम


कल्याणी
पहाड़ी गाय विकास एवं अनुसंधान केंद्र

## देश की प्रथम, पहाड़ी गाय को समर्पित गोशाला

ने राज्य सरकार के विरुद्ध 'क्विट कश्मीर' अभियान शुरू कर दिया। अब्दुल्ला का व्यक्तित्व ऐसा था जिन्हें मोहम्मद अली जिन्ना तक पसंद नहीं करते थे। एक बार स्वयं उन्होंने अब्दुल्ला के बारे में कहा, "ओह, वो लंबा आदमी जो कुरान पढ़ता है और लोगों का शोषण करता है"।[4] अब्दुल्ला की नीतियों अथवा व्यवहार से हर जगह नाराजगी, असंतोष और नाखुशी फैल गयी थी। परिणामस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और उनका मुकद्दमा तीन सप्ताह तक चला। 10 सितंबर, 1946 को न्यायालय ने उन्हें तीन साल की सजा सुनाई जिसमें प्रत्येक दिन को तीन बार गिना जाना था।[5]

अब्दुल्ला की गिरफ्तारी ने जवाहरलाल नेहरू को बेहद उत्तेजित कर दिया। जब अब्दुल्ला कारावास में थे तो उन्होंने जम्मू–कश्मीर में प्रवेश करने कोशिश की और 20 जून, 1946 को अपनी प्रविष्टि पर प्रतिबंध के आदेश की अवहेलना के कारण राज्य की सीमा पर नजरबन्द कर लिए गए। महाराजा ने 11 जुलाई, 1946 को अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए नेहरू को पत्र लिखा, "आपको श्रीनगर आने से रोकना मेरी सरकार ने अपना कर्तव्य महसूस किया क्योंकि इसकी वजह समाचार–पत्रों, सार्वजनिक स्थानों और मेरे साथ पत्र–व्यवहार में आपने जो कहा उसके विवादास्पद स्वरूप को देखते हुए हम आश्वस्त हैं कि उस समयबिंदु पर आपका यहाँ आने का परिणाम लोक शांति के लिए निश्चित खतरा होता"।[6] नेहरू द्वारा अब्दुल्ला को समर्थन दिए जाने से राज्य में अराजकता की स्थिति उत्पन्न होने लगी थी। यह स्पष्ट करते हुए ऑल स्टेट राज्य कश्मीरी पंडित कांफ्रेंस, श्रीनगर ने भी सरदार को 4 जून, 1946 को एक टेलीग्राम भेजा, "पंडित जवाहरलाल नेहरू का कश्मीर मामलों के विषय में वक्तव्य पूरी तरह से असत्यापित एवं विवादास्पद है जिसका कश्मीर के हिंदुओं ने सर्वत्र निंदा एवं विरोध किया हैं। शेख अब्दुल्ला के फासीवाद और सांप्रदायिक मंसूबों को प्रोत्साहित करके कश्मीर के लोगों को वे अधिकतम क्षति पहुंचा रहे हैं।"[7]

'क्विट कश्मीर' एकदम विफल रहा। अब्दुल्ला की गिरफ्तारी और लोकप्रियता के बारे में 12 सितंबर, 1946 को राज्य सरकार की तरफ से सरदार को एक आधिकारिक पत्र मिला, "गिरफ्तार किए गए लोगों की कुल संख्या 924 थी। वर्तमान में 106 लोगों को गिरफ्तार किया गया है, 55 विभिन्न अपराधों के लिए कारावास में हैं। मात्र 6 मामलों में छह महीनों से अधिक की सजा मिली है। मुकद्दमों की संख्या 47 है। अन्य सभी को रिहा कर दिया गया है। चूँकि हमारी कुल जनसंख्या 40 लाख से ज्यादा है, हम आपको यह फैसला करने के लिए छोड़ते हैं कि क्या यह आंदोलन उचित रूप से लोकप्रिय हो सकता है।"[8] महाराजा ने अनेक बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को समझाने की कोशिश की कि अब्दुल्ला भारत का कोई मित्र नहीं हैं और अगर वे रिहा होते है तो स्थिति को बदतर बना देंगे।[9] बावजूद इसके नेहरू का अब्दुल्ला के प्रति सम्मोहन अविचल बना रहा। कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं में से कोई भी नेहरू के विचारों में सहभागी नहीं बने। राज्य का दौरा करने वाले जे. बी. कृपलानी 'आचार्य' ने कहा कि 'क्विट कश्मीर' निंदनीय एवं उपद्रव है।[10]

भारत के प्रधानमंत्री बनने के बाद, नेहरू ने फिर से अब्दुल्ला को रिहा कराने के लिए महाराजा पर दबाव बनाना शुरू कर दिया। उन्होंने 27 सितंबर, 1947 को सरदार को एक पत्र लिखा, "फिलहाल अभी भी शेख अब्दुल्ला और उनके सहयोगी कारावास में हैं। मुझे यह भविष्य के क्रमागत विकास में बहुत अहितकर लग रहा है"।[11] आखिरकार, अब्दुल्ला को 29 सितंबर, 1947 को रिहा कर दिया गया। उन्होंने अपनी पूर्व गतिविधियों के लिए अफसोस व्यक्त करते हुए महाराजा को पत्र लिखा और आश्वासन दिया कि वे तथा उनका दल महाराजा अथवा राजवंश के प्रति देशद्रोह की किसी भावना को कभी आश्रय नहीं देंगे।

जल्द ही, 2 अक्टूबर, 1947 को हजूरी बाग में अब्दुल्ला ने भाषण दिया कि अगर राज्य के लोग पाकिस्तान के साथ जाने का फैसला करते है तो वे अपना नाम हस्ताक्षरित करने वाले पहले व्यक्ति होंगे।[12] यह व्यवहार बिलकुल वैसा ही है जैसे महाराजा ने भविष्यवाणी की थी। वे मात्र एक ही नहीं बल्कि अनेक धोखेबाजों से घिरे हुए थे। राज्य के प्रधानमंत्री, रामचंद्र काक ने लियाकत अली खान[13] को आश्वासन तक दे दिया कि राज्य का अधिमिलन पाकिस्तान के साथ ही होगा।[14] 17 जून, 1947 को नेहरू ने माउंटबैटन को एक नोट लिखा, "श्रीमान काक ने महाराजा को यह भी समझाने की कोशिश की है जैसे ही वे भारतीय संघ में शामिल हो जाते हैं, वहां राज्य में सांप्रदायिक दंगे होंगे और संभवतः पाकिस्तान के नजदीकी क्षेत्र से शत्रु कश्मीर में प्रवेश कर उपद्रव मचा सकते हैं"।[15]

राज्य मंत्रालय के सचिव, वी. पी. मेनन ने अपनी पुस्तक में काक के इरादों का स्पष्ट वर्णन किया है, "राज्य मंत्रालय की स्थापना के बाद, भौगोलिक दृष्टि से भारत से समीप रियासतों के अधिमिलन के लिए शासकों एवं उनके प्रतिनिधियों के साथ हम प्रारंभिक वार्ता कर रहे थे। जम्मू एवं कश्मीर के प्रधानमंत्री, पंडित रामचंद्र काक उस समय दिल्ली में थे। पटियाला के महाराजा

*भारत विभाजन के समय सामूहिक प्रवास*

# श्रीगुरुजी ने महाराजा को विलय के लिए सहमत किया

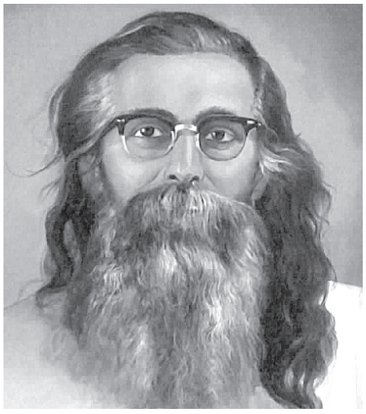

श्रीगुरुजी (माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर) जी की कश्मीर के भारत में विलय को लेकर ऐतिहासिक भूमिका रही है, संभवतः यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। सरदार पटेल के आग्रह पर श्री गुरुजी कश्मीर के महाराजा हरि सिंह के पास उनको मनाने के लिए गए कि वह कश्मीर का भारत में विलय कर दें।

आजादी मिलने के पश्चात देश का विभाजन होते ही 1947 के अक्तूबर माह के तीसरे सप्ताह में पाकिस्तान की सेना ने कश्मीर पर आधिपत्य जमाने के उद्देश्य से आक्रमण किया और आगे बढ़ने लगी। भारतीय सेनाओं में मौजूद उच्च ब्रिटिश अधिकारियों की पाक सेना के साथ मिलीभगत थी। पाक सेना ने कश्मीर के लोगों पर भीषण आत्याचार शुरू कर दिए और कश्मीर के भू–भाग पर कब्जा करने लगी। दुर्भाग्य से ऐसे आसन्न संकट के समय भी कश्मीर को भारत में विलीन करने के बारे में महाराजा हरि सिंह मानसिक रूप से तैयार नहीं थे। कई प्रकार की शंका–कुशंकाओं के शिकार कश्मीर के महाराजा की मनः स्थिति द्वंद्वग्रस्त थी। ऐसे संवेदनशील अवसर पर सरदार पटेल ने अत्यंत दूरदर्शिता से काम लिया। सरदार पटेल को लगा कि महाराजा हरि सिंह से मिलकर उनके मन को भारत के अनुकूल बनाने के लिए एकमात्र श्री गुरुजी ही समर्थ व्यक्ति हैं। इसलिए उन्होंने श्रीगुरुजी से आग्रह किया कि वे राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए महाराजा से मिलें और कश्मीर के भारत में विलय के लिए तैयार करें।

कश्मीर के महाराजा हरि सिंह और महारानी तारा ने श्री गुरुजी को कश्मीरी शाल भेंटकर उनका स्वागत किया। श्री गुरुजी ने 18 अक्तूबर 1947 को महाराजा से मिलकर उनके मन को सब प्रकार की शंकाओं से मुक्त करके भारत में अपने राज्य का विलय करने के लिए तैयार किया। तब जाकर भारतीय सेना को कश्मीर भेजा गया। भारतीय सेनाओं ने पाक सेनाओं के आक्रमण का करारा जवाब दिया और स्थिति यह आ गई कि भारतीय सेना की

जवाबी आक्रामक कार्रवाई के समक्ष उसके पांव उखड़ गए और पाकिस्तानी सेना पीठ दिखाकर भागने लगी। भारतीय सेना उनके कब्जे से कश्मीर को मुक्त करते हुए पूरे आत्मविश्वास से आगे बढ़ने लगीं। परंतु अपनी सेना द्वारा कश्मीर को पूर्ण रूप से मुक्त कराने से पहले ही पंडित नेहरू ने युद्ध विराम की घोषणा कर दी और कश्मीर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा पाक के कब्जे में चला गया। तत्पश्चात जब भारत सरकार पाक आक्रमण के मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने ले गई तो श्री गुरुजी ने संकेत दिया कि ''यह बिलकुल आत्मघाती निर्णय हुआ है। वह हमें न्याय दिलाने के बदले गलत निर्णय ही करेगा।'' ■

**–एच.वी. शेषाद्रि**

के सुझाव पर, हमने उन्हें इस प्रकार के एक सम्मेलन में आमंत्रित किया लेकिन वे इसमें शामिल हो पाने में असमर्थ रहे। तत्पश्चात् उनकी मुलाकात मुझसे गवर्नर–जनरल के घर हुई। मैंने उनसे पूछा कि भारत अथवा पाकिस्तान से अधिमिलन के संबंध में महाराजा का क्या रवैया है, लेकिन उन्होंने मुझे बेहद कपटपूर्ण उत्तर दिया। काक ने सरदार से भी मुलाकात की। मैं न उस व्यक्ति को और न ही उनके खेल की गहराई समझता हूँ। बाद में, लॉर्ड माउंटबैटन ने काक और जिन्ना के बीच एक मुलाकात की व्यवस्था की।"[16] अंत में, 10 अगस्त, 1947 को महाराजा ने काक को पदच्युत कर राज्य का प्रधानमंत्री, जनक सिंह को नियुक्त कर दिया।

अब्दुल्ला की गिरफ्तारी के समय से सरदार एवं कांग्रेस के अन्य नेताओं का महाराजा के साथ कोई वैयक्तिक संपर्क नहीं था। सरदार ने स्वयं कहा यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि कांग्रेस के नेताओं में से किसी ने महाराजा से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किए। व्यक्तिगत संपर्क से उन गलतफहमियों का अधिकतम निराकरण हो गया होता जो कि संभवतः व्यापक रूप से उदासीन स्रोतों के माध्यम से एकत्रित गलत सूचनाओं पर आधारित थीं।[17]

जब वे एक–दूसरे के संपर्क में आए तो स्थिति में सुधार आना शुरू हुआ। महाराजा का सरदार के प्रति बहुत आदर था क्योंकि कांग्रेस के नेताओं में से सिर्फ उन्हीं के शब्दों पर वे विश्वास कर सकते थे। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने कदाचित ही लम्बे समय तक किसी पर भरपूर विश्वास किया हो लेकिन सरदार के लिए उनकी निष्ठा सशक्त एवं स्थायी रही।[18] 3 जुलाई, 1947 को सरदार ने भारत के साथ अधिमिलन स्वीकार करने के लिए महाराजा को पत्र लिखा, "मैं पूरी तरह से उन कठिन एवं

नाजुक स्थितियों की समझता हूँ जिनसे आपका राज्य गुजर रहा है लेकिन राज्य के एक ईमानदार मित्र एवं शुभचिंतक के नाते आपको यह आश्वासन देना चाहता हूँ कि कश्मीर का हित, किसी भी देरी के बिना, भारतीय संघ एवं उसकी संविधान सभा में शामिल होने में निहित है"।[19] हालांकि, महाराजा ने तुरंत अपने विचारों को व्यक्त नहीं किया बल्कि बाद में उन्होंने अपनी अभिलाषा जाहिर की। अधिमिलन के बाद, 31 जनवरी, 1948 को उन्होंने सरदार को भेजे पत्र में लिखा, "आप जानते हैं कि मैं इस विचार के साथ निश्चित रूप से भारतीय संघ को स्वीकार करता क्योंकि संघ हमें निराश नहीं करेगा"।[20] इसका मतलब है महाराजा ने भारत में अधिमिलन का पहले ही अपना मन बना लिया था। वे और सरदार दोनों सही समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

जम्मू–कश्मीर राज्य के प्रधानमंत्री, मेहरचंद महाजन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि महाराजा पाकिस्तान में शामिल होने के लिए कभी तैयार नहीं थे। वे लिखते है, "कायद–ए–आजम श्रीमान जिन्ना के निजी पत्रों के साथ उनके ब्रिटिश सैन्य सचिव तीन बार महाराजा से मिलने श्रीनगर आए। महाराजा को बताया गया कि श्रीमान जिन्ना का स्वास्थ्य ठीक नहीं है और उनके चिकित्सकों ने सलाह दी है कि वे गर्मियां कश्मीर में बिताए। वहां रुकने पर वे अपनी स्वयं की व्यवस्था के लिए भी तैयार थे। इस कदम के पीछे असली मकसद राज्य में पाकिस्तान समर्थक तत्वों की सहायता से महाराजा को पाकिस्तान के साथ अधिमिलन स्वीकार करने के लिए सहमत अथवा विवश करवाना था। अगर यह सब कुछ असफल जाता तो महाराजा को गद्दी से हटा कर राज्य से दूर कर दिया जाता..... उन्होंने (महाराजा) श्रीनगर में गर्मियां बिताने के लिए जिन्ना को आमंत्रित करना विनम्रता से अस्वीकार कर दिया।[21]

19 जून, 1947 को माउंटबैटन ने जम्मू–कश्मीर का दौरा किया और चार दिनों तक वहां रहे। उन्होंने पाकिस्तान में अधिमिलन के लिए महाराजा को समझाने के प्रयास किए। विभिन्न कार ड्राइव्स के दौरान उनकी कुछ मुलाकातें हुई। इस मौके पर माउंटबैटन ने आग्रह किया अगर जम्मू–कश्मीर पाकिस्तान के साथ जाता है तो भारत सरकार द्वारा इसे अप्रिय कृत्य नहीं माना जाएगा। हालांकि, महाराजा ने उन्हें एक व्यक्तिगत मुलाकात का सुझाव दिया जिसका समय यात्रा के आखिरी दिन तय किया गया था। माउंटबैटन यह सोचकर सहमत हो गए इससे महाराजा को सोचने का अधिक मौका मिल जायेगा लेकिन जब समय आया तो उन्होंने एक संदेश भेजा कि वे बीमार है और भेंट करने में असमर्थ हैं।[22] इस प्रकार उन्होंने पाकिस्तान के साथ जाने के सुझाव से बचाव किया।

महाराजा का मानना था कि पाकिस्तान के साथ अधिमिलन उनके राज्य और भारत दोनों के हित में नहीं होगा।[23] निष्पक्ष रूप से महाराजा के सन्दर्भ में यह कहना ही होगा कि जैसी वहां स्थिति थी तो उनके लिए एक निर्णय पर आना आसान नहीं था। भारत के साथ अधिमिलन से गिलगित और पाकिस्तान के समीप वाले इलाकों में प्रतिकूल प्रतिक्रियाएं उत्पन्न हो सकती थी। इसके अलावा, उस समय तक राज्य का सड़क और संचार पाकिस्तान के साथ था। वन संसाधन, विशेष रूप से इमारती लकड़ी जिसका राज्य के राजस्व में महत्वपूर्ण योगदान था, उसका अपवाहन पाकिस्तान की ओर बहने वाली नदियों के माध्यम से होता था।[24]

इसलिए उन्होंने सोचा भारत और पाकिस्तान के साथ कुछ समय तक स्टैंडस्टिल एग्रीमेंट[25] करना उपयुक्त रहेगा। 12 अगस्त, 1947 को राज्य सरकार ने स्टैंडस्टिल एग्रीमेंट की पेशकश की और जाहिर तौर पर पाकिस्तान ने अपने गुप्त उद्देश्यों के साथ उसे मान लिया। भारत ने एग्रीमेंट को स्वीकार करने से इनकार नहीं किया बल्कि उसकी शर्तों पर बातचीत करने के लिए उन्हें एक प्रतिनिधि दिल्ली भेजने की अभिलाषा व्यक्त की, "इस सन्दर्भ में यदि आप (जनक सिंह, राज्य के प्रधानमंत्री) अथवा अधिकृत अन्य कोई मंत्री कश्मीर सरकार और भारतीय डोमिनियन के बीच स्टैंडस्टिल एग्रीमेंट पर बातचीत करने दिल्ली आते है तो भारत सरकार के लिए हर्ष का विषय होगा। वर्तमान समझौतों और प्रशासनिक व्यवस्था बनाए रखने में शीघ्र कार्यवाही जरूरी है"।[26]

इस बीच, राज्य की राजनैतिक और संवैधानिक समस्याओं पर सरदार नियमित रूप से महाराजा के संपर्क में थे। उन्होंने भारत के साथ राज्य के भूमिगत एकीकरण को आश्वस्त किया। 2 अक्तूबर, 1947 को उन्होंने महाराजा को पत्र लिखा, "मैं टेलीग्राफ, टेलीफोन, वायरलेस और सड़कों के माध्यम से भारतीय डोमिनियन के साथ राज्य को जोड़ने के लिए जितना संभव होगा उतनी तेजी से प्रयास कर रहा हूँ। हम पूरी तरह से स्थिरता और तात्कालिकता की आवश्यकता महसूस करते हैं और मैं आपको आश्वासन दे सकता हूं कि हम अपनी पूरी कोशिश करेंगे"।[27] उन्होंने राज्य की परिवहन और खाद्य आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए के. सी. नियोगी, रफी अहमद किदवई, बलदेव सिंह और अन्य साथी मंत्रियों से अनुरोध किया।

स्टैंडस्टिल एग्रीमेंट का उल्लंघन पाकिस्तान ने किया था। एग्रीमेंट के क्रियान्वयन में आने के बाद भी राज्य और पाकिस्तान के बीच संबंध सौहार्द से बहुत दूर थे। जम्मू–कश्मीर सरकार ने इसकी शिकायत की लेकिन राज्य के जबरन अभिमिलन के प्रयास में पाकिस्तान सरकार ने वहां खाद्य, पेट्रोल और अन्य आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति बंद कर दी। उन्होंने कश्मीर और पाकिस्तान के बीच यात्रियों के मुक्त पारगमन को भी सीमित कर दिया।

पाकिस्तान की यह अधीरता थी इसलिए उसने जम्मू–कश्मीर पर हमला कर दिया। यह युद्ध वास्तव में विभाजन के तुरंत बाद शुरू हुआ। 29 अगस्त, 1947 को हजारा के राजा, याकूब खान ने महाराजा को एक टेलीग्राम भेजा जिसमे हजारा के मुसलमानों के व्याकुल होने की बात कही गयी। उसमे आगे लिखा, "हम राज्य में प्रवेश कर हथियारों के साथ लड़ने की पूरी तैयारी कर चुके हैं"।[28] इस पत्र के तुरंत बाद 3 सितंबर, 1947 को हमला शुरू हो गया। हमलावरों ने जो भी उनके रास्ते में आया उसे लूट लिया, हत्याएं और आगजनी की। संभवतः 21 अक्तूबर, 1947 को वे श्रीनगर के समीप पहुँच गए थे। महाजन जो कि जनक सिंह के स्थान पर राज्य के प्रधानमंत्री

बनाए गए थे उन्होंने 23 अक्टूबर, 1947 को सरदार को प्रेस नोट का एक मसौदा भेजा, "पूरी सीमा धुआं और लपटों में हैं। यह वृत्तांत जले हुए घरों, लूट, अपहरण की गई महिलाओं और सामूहिक नरसंहार का है। सीमा से 4 मील अंतर्गत हिंदुओं और सिक्खों के 75 प्रतिशत से अधिक घरों को जला दिया गया है। पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को मार दिया गया हैं"।[29]

पाकिस्तान का यह हमला पूर्व निर्धारित था। मुस्लिम लीग नेशनल गार्ड्स के नाईब–सालार–ए–आला जिन्होंने इस हमले का नेतृत्व किया, 7 दिसंबर, 1947 को डॉन को दिए एक साक्षात्कार में कहा कि वे कबालियों का बंदोबस्त कर रहे थे और उन्हें उम्मीद थी कि छह महीनों के अंतर्गत 200,000 लोगों की स्थायी सेना तैयार कर देंगे। उनका मानना था कि कुछ ही दिनों में ये कबायली पूरे राज्य पर कब्जा कर लेंगे। अगस्त 1947 से सशस्त्र हलावारों की राज्य में घुसपैठ झेलम नदी के रास्ते शुरू हो गयी थी।[30]

महाराजा ने 24 अक्तूबर, 1947 को भारत सरकार से सहायता के लिए संपर्क किया। उस समय, भारत के साथ राज्य का सैन्य और राजनैतिक समझौता नहीं था। माउंटबैटन की अध्यक्षता में नई दिल्ली में रक्षा समिति की एक बैठक हुई जिसमें महाराजा की मांग पर हथियार एवं गोला–बारूद की आपूर्ति का विचार किया गया। सेना के सुदृढ़ीकरण की समस्या पर भी विचार किया गया और माउंटबैटन ने आगाह किया कि जम्मू–कश्मीर जब तक अधिमिलन स्वीकार नहीं करता है तब तक वहां सेना भेजना जोखिम भरा हो सकता है। इस घटना के बाद, वी. पी. मेनन को महाराजा के पास स्थिति की व्याख्या और प्रत्यक्ष विवरण प्राप्त करने के लिए श्रीनगर भेजा गया। अगले दिन, मेनन ने विक्षुब्ध स्थिति की सूचना दी और महसूस किया कि भारत ने अगर शीघ्र सहायता नहीं की तो सब समाप्त हो जाएगा।

रक्षा समिति ने सैनिकों को तैयार किए जाने तथा वहां भेजने के फैसले के साथ तय किया कि यदि अधिमिलन की पेशकश होती है तो उसे स्वीकार किया जाएगा। उसी दिन, मेनन फिर से श्रीनगर वापस गए। इस बार वे अधिमिलन पत्र पर हस्ताक्षर लेकर दिल्ली लौंटे। जम्मू–कश्मीर का अधिमिलन भारत के गवर्नर–जनरल, माउंटबैटन द्वारा उसी तरह स्वीकार हुआ जैसा अन्य भारतीय रियासतों के साथ किया गया था। आखिरकार कानूनी शर्तों के अनुसार 26 अक्टूबर, 1947 को जम्मू–कश्मीर भारत का अभिन्न हिस्सा बन गया। ■

*संपर्क -9999050947*
*deveshkhandelwal4@gmail.com*

**संदर्भ संकेत**

1. फ्रैंक मोरेस, जवाहरलाल नेहरूः ए बायोग्राफी, एशिया पब्लिशिंगः बॉम्बे, 1959, पृष्ठ 364
2. दुर्गा दास, सरदार पटेल कॉरेस्पोंडेंस, 1945–50, खंड 1, नवजीवनः अहमदाबाद, 1971, पृष्ठ 14
3. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, पाकिस्तान ऑर द पार्टीशन ऑफ इंडिया, ठक्कर एंड कंपनीः बॉम्बे, 1946, पृष्ठ 226–227
4. दुर्गा दास, इंडिया फ्रॉम कर्जन टु नेहरू एंड आफ्टर, कॉलिंसः लन्दन, 1969, पृष्ठ 270
5. शेख मोहम्मद अब्दुल्ला, फ्लेम्स ऑफ चिनार, वाइकिंगः नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 81
6. दुर्गा दास, सरदार पटेल कॉरेस्पोंडेंस, 1945–50, खंड 1, नवजीवनः अहमदाबाद, 1971, पृष्ठ 7
7. वही, पृष्ठ 1
8. वही, पृष्ठ 18
9. डॉ. एच. एल. सक्सेना, द ट्रेजडी ऑफ कश्मीर, नेशनलिस्ट पब्लिशरः नई दिल्ली, 1975, पृष्ठ 191–192
10. बी. कृष्ण, सरदार वल्लभभाई पटेलः इंडियाज आयरन मैन, हार्पर कॉलिंसः नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 375
11. दुर्गा दास, सरदार पटेल कॉरेस्पोंडेंस, 1945–50, खंड 1, नवजीवनः अहमदाबाद, 1971, पृष्ठ 46
12. शेख मोहम्मद अब्दुल्ला, फ्लेम्स ऑफ चिनार, वाइकिंगः नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 86
13. 1946 में भारत की अंतरिम सरकार में वित्त मंत्री रहे और पाकिस्तान के पहले प्रधानमंत्री बने।
14. शेख मोहम्मद अब्दुल्ला, फ्लेम्स ऑफ चिनार, वाइकिंगः नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 87
15. निकोलस मंसेर्घ (सम्पादित), द ट्रान्सफर ऑफ पॉवर 1942–7, खंड 11, हर माजेस्टी स्टेशनरी ऑफिसः लन्दन, 1982, पृष्ठ 446
16. वी. पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इंटीग्रेशन ऑफ द इंडियन स्टेट्स, लॉन्गमैन्सः लन्दन, 1955, पृष्ठ 271
17. दुर्गा दास, सरदार पटेल कॉरेस्पोंडेंस, 1945–50, खंड 1, नवजीवनः अहमदाबाद, 1971, पृष्ठ 33
18. वी. शंकर, माय रेमनिसिंस ऑफ सरदार पटेल, खंड 1, मैकमिलनः दिल्ली, 1974, पृष्ठ 129
19. दुर्गा दास, सरदार पटेल कॉरेस्पोंडेंस, 1945–50, खंड 1, नवजीवनः अहमदाबाद, 1971, पृष्ठ 33
20. वही, पृष्ठ 161–162
21. मेहरचंद महाजन, एक्सेशन ऑफ कश्मीर टु इंडिया, द सुलखनी देवी महाजन ट्रस्ट, 1969, पृष्ठ 6–7
22. एलन कैम्पबेल–जॉनसन, मिशन विद माउंटबेटन, जाइकोः बॉम्बे, 1951, पृष्ठ 140
23. वी. शंकर, माय रेमनिसिंस ऑफ सरदार पटेल, खंड 1, मैकमिलनः दिल्ली, 1974, पृष्ठ 126
24. वी. पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इंटीग्रेशन ऑफ द इंडियन स्टेट्स, लॉन्गमैन्सः लन्दन, 1955, पृष्ठ 271–272
25. यह प्रावधान भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में समाहित था। इसके अनुसार ब्रिटिश पैरामाउंटसी के समाप्त होने के बाद रियासतें अस्थाई समय की मांग कर सकती थीं जिसमें वह तय कर सके उन्हें कहां अधिमिलन करना है।
26. एम. एस. डोरा एवं आर. ग्रोवर, डाक्यूमेंट्स ऑन कश्मीर प्रॉब्लम, खंड 1, डिस्कवरी पब्लिशिंगः नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ 8–9
27. दुर्गा दास, सरदार पटेल कॉरेस्पोंडेंस, 1945–50, खंड 1, नवजीवनः अहमदाबाद, 1971, पृष्ठ 43
28. व्हाइट पेपर ऑन जम्मू एंड कश्मीर, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1948, पृष्ठ 2
29. वी. शंकर, (सम्पादित) सेलेक्टेड कॉरेस्पोंडेंस ऑफ सरदार पटेल 1945–50, खंड 1, नवजीवनः अहमदाबाद, 1977, पृष्ठ 239
30. व्हाइट पेपर ऑन जम्मू एंड कश्मीर, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1948

प्रो. हरि ओम

# संविधान सभा में जम्मू और कश्मीर

आम तौर पर माना जाता है कि जम्मू और कश्मीर सिर्फ 17 अक्टूबर 1949 को भारतीय संविधान सभा में चर्चा के लिए आया था। इसका जिक्र इसलिए आता है क्योंकि उस दिन अनुच्छेद 306–ए (अनुच्छेद 370) को अपनाया गया था और जम्मू–कश्मीर राज्य को भारत के साथ एक विशेष संबंध बनाने की इजाजत दी गई थी। लेकिन यही मानना पूरा सच नहीं है।

संविधान सभा की कार्यवाही की छानबीन से पता चलता है कि जम्मू–कश्मीर से संबंधित मुद्दों पर दो बार चर्चा हुई–पहले 27 मई 1949 को, और फिर 17 अक्टूबर 1949 को। यह सच है कि 27 मई को सिर्फ ध्यान केंद्रित किया गया था, जबकि 17 अक्टूबर को खुल कर चर्चा हुई जिसमें अनुच्छेद 370 को जोड़कर जम्मू–कश्मीर को खुद का संविधान बनाने और राष्ट्रीय ध्वज के अलावा अपना ध्वज रखने का अधिकार दिया गया।

इस तथ्य और तर्क के बावजूद , जल्दबाजी में इस अनुच्छेद को जोड़ दिया गया क्योंकि संविधान सभा के एक सदस्य, मौलाना हसरत मोहानी ने चेतावनी दी थी कि धर्म के आधार पर कश्मीर को विशेष अधिकार देना ठीक नहीं होगा और बाद में स्वतन्त्रता की मांग खडी हो सकती है।[1]

27 मई की चर्चा की आम तौर पर लोगों को कम जानकारी है, लेकिन उस पर विचार करना दिलचस्प होगा, जो कि प्रासंगिक भी है। जम्मू और लद्दाख के लोगों की 70 वर्ष पुरानी शिकायतों के पीछे के कारणों को समझना जरूरी है कि 'देश की नीति में उनके किए कोई स्थान नहीं है' और 'यह नई दिल्ली के कारण सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक–आर्थिक पतन का शिकार हो कर और अविकसित रहा है।' संविधान सभा में घंटों की बहस के बावजूद इस क्षेत्र की अनदेखी की गई।

अक्टूबर 1947 में, जब जम्मू और कश्मीर ने भारत में विलय को स्वीकार किया, तो यह आशा थी कि केंद्र में कांग्रेस सरकार राज्य के लोगों के स्वाभाविक अधिकार को स्वीकार करेगी कि वे अपनी पसंद के प्रतिनिधियों को भारतीय संविधान सभा में भेंज सकें। स्थानीय लोगों को यह उम्मींद कांग्रेस कार्य समिति के प्रस्ताव (17–18 जून 1934) और अप्रैल 1936 के संकल्प से पैदा हुई थी, जो कांग्रेस ने अपने लखनऊ अधिवेशन में अपनाए थे।

1934 के संकल्प ने ब्रिटिश सरकार को स्पष्ट रूप से कहा था कि जितना संभव हो सके 'संविधान को वयस्क मताधिकार या इसके समकक्ष मताधिकार पर निर्वाचित सदस्यों की संविधान सभा की ओर से तैयार किया जाना चाहिए।' लखनऊ में अपनाए गए कांग्रेस के प्रस्ताव में 1935 के भारतीय परिषद अधिनियम को 'बंधुआ कानून' मानते हुए खारिज कर दिया गया था और घोषित किया था कि 'कोई बाहरी संविधान और कोई भी ऐसा संविधान जो कि लोगों की संप्रभुता को कम करता है, उसे लागू नहीं किया जा सकता।'

जम्मू और कश्मीर के लोगों का मानना था कि इस मामले में उन्हें अपनी बात कहने का पूरा अधिकार होगा। 1946 में इस विश्वास को और मजबूत किया था जब कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन से मांग की थी कि भारतीय संविधान सभा को चुनने के लिए सभी पुरुष और महिला वयस्कों को वोट का अधिकार दिया जाए। मुस्लिम लीग ने सांप्रदायिक आधार पर अलग रजिस्टर के आधार पर चुनाव की मांग की थी, उसे भी कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया था। (हालांकि उसकी इस मांग को स्वीकार नहीं किया गया था।)

विडंबना यह है कि जम्मू और कश्मीर के लोग अपनी पसंद के प्रतिनिधियों को संविधान

जम्मू-कश्मीर से संबंधित मुद्दों पर दो बार चर्चा हुई-पहले 27 मई 1949 को, और फिर 17 अक्टूबर 1949 को। यह सच है कि 27 मई को सिर्फ ध्यान केंद्रित किया गया था, जबकि 17 अक्टूबर को खुल कर चर्चा हुई जिसमें अनुच्छेद 370 को जोड़कर जम्मू-कश्मीर को खुद का संविधान बनाने और राष्ट्रीय ध्वज के अलावा अपना ध्वज रखने का अधिकार दिया गया

*सरदार पटेल व पं. नेहरू*

**कांग्रेस पार्टी ने संविधान के निर्माण में जम्मू कश्मीर के चुने हुए प्रतिनिधियों को शामिल नहीं किया और न ही 1946 में कैबिनेट मिशन योजना के अंतर्गत राजशाही रियासतों वाले राज्यों के लिए बनाए हुए अपने ही नियमों का पालन किया**

सभा में नहीं भेज सके ,क्योंकि संविधान सभा में बहुमत वाली कांग्रेस पार्टी ने संविधान के निर्माण में जम्मू कश्मीर के चुने हुए प्रतिनिधियों को शामिल नहीं किया और न ही 1946 में कैबिनेट मिशन योजना के अंतर्गत राजशाही रियासतों वाले राज्यों के लिए बनाए हुए अपने ही नियमों का पालन किया। इसके विपरीत, एक ऐसा फार्मूला अपनाया गया जो कांग्रेस के अपने 1946 के फार्मूले के विपरीत था। कांग्रेस सिर्फ शेख अब्दुल्ला और उसकी बनाई धर्म आधारित नेशनल कांफ्रेंस को खुश करना चाहती थी।

कोई भी इसकी व्याख्या और कैसे कर सकता है, कि कश्मीर मामलों के मंत्री गोपालस्वामी आयंगर ने अपने भाषण और 27 मई 1949 को कश्मीर के संविधान सभा में प्रतिनिधित्व के संबंध में रखे प्रस्ताव में कहा–

संविधान सभा के नियमों के अनुच्छेद 4 में कुछ भी शामिल होने के बावजूद कश्मीर राज्य को आवंटित सभी सीटें नामांकन से भरी जा सकती हैं। संविधान सभा की सीटों को भरने के लिए कश्मीर के शासक प्रधानमंत्री की सलाह से प्रतिनिधियों को नामित कर सकते हैं। ( उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 4 के अनुसार दो प्रतिनिधियों की नियुक्ति रियासत के शासक की ओर से होनी थी और दो निर्वाचित प्रतिनिधि आने थे।)

आयंगर ने अपने भाषण में आगे कहा–

हमें इस पद्धति का चयन करना होगा जिससे हम इस संविधान सभा में जम्मू कश्मीर के प्रतिनिधि शामिल कर सकें। आज हम इस सदन में चार लोगों को लाने की स्थिति में हैं, जिन्हें कश्मीर की जनसंख्या का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। जिस बिंदु पर मैं आग्रह करता हूं कि यह है कि, मौजूदा नियमों के तहत किसी भी मामले में दो प्रतिनिधियों को एक शासक की ओर से नामित किया जा सकता है, हम सुझाव दे रहे हैं कि सभी चार व्यक्तियों को जम्मू–कश्मीर के शासक द्वारा प्रधानमंत्री की सलाह पर नामित किया जाना चाहिए।

प्रधानमंत्री राज्य में सबसे बड़े राजनीतिक दल का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अलावा, हमें यह याद रखना चाहिए कि प्रधानमंत्री और उनकी सरकार (एनसी सरकार) जम्मू और कश्मीर प्रजासभा (विधान सभा) पर आधारित नहीं, बल्कि इस तथ्य पर आधारित है कि वह सबसे बड़े राजनीतिक दल का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए, यही उचित है कि इस पार्टी के प्रमुख, जो प्रधानमंत्री भी हैं, शासक को सलाह दें कि संविधान सभा में कश्मीर के उचित प्रतिनिधि कौन होंगे।

(उल्लेखनीय है कि राज्य की विधानसभा को प्रजासभा कहते थे, जिसमें नेशनल कांफ्रेंस का बहुमत नहीं था, इसके बावजूद जवाहर लाल नेहरू ने राजा कर्णसिंह पर दबाव दाल कर शेख अब्दुला को प्रधानमंत्री नियुक्त करवा दिया था।)

इस मुद्दे पर संविधान सभा में बहुत बहस हो गई, क्योंकि सदस्यों ने इस सुझाव और फार्मूले पर कड़े एतराज जाताए, जिस कारण घंटों तक आपत्तियां उठाई जाती रहीं। पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्री (पश्चिम बंगाल), एच. वी. कामथ (सीपी और बेरार) और के. टी. शाह (बिहार) जैसे संविधान सभा सदस्यों ने पांच मुद्दों पर औपचारिक प्रस्ताव का जोरदार विरोध किया।

एक, यह एक फार्मूला 'संविधान सभा के नियम संख्या 4 में निहित नियमों' के अनुरूप नहीं है। नियम 4 के अनुसार, रियासतों को आवंटित सीटों में से आधी संबंधित राज्यों की विधायिका के निर्वाचित सदस्य में से और बाकी आधी को शासक की ओर से खुद ही नामित किया जाना है।

दो, यह फार्मूला जम्मू–कश्मीर और अन्य रियासतों के बीच एक अन्यायपूर्ण और आक्रमणकारी भेद है।

तीन, यह फार्मूला एक व्यक्ति, शेख अब्दुल्ला को सशक्त बनाने के लिए डिजाइन किया गया है। वह तय करेंगे कि कौन संविधान सभा में प्रतिनिधित्व करेगा और कौन नहीं करेगा और यह राज्य और नई दिल्ली के बीच भविष्य के राजनीतिक–संवैधानिक संबंधों को ध्यान में रख कर बनाया गया है।

चार, प्रस्ताव, निस्संदेह, लोगों और उनकी निर्वाचित विधानसभा को अप्रभावी बना देने के लिए डिजाइन किया गया है।

पांच, यह प्रस्ताव कश्मीर में भारतीय

हितों को नुकसान पहुंचाने वाला है और देश विरोधी ताकतों को बल देने वाला है। उन्होंने इन पांच मुद्दों पर अपनी तरफ से इस प्रस्ताव को चुनौती दी कि राज्य के लोग पूरी तरह से इस प्रस्ताव के पीछे हैं।

के.टी. शाह प्रस्ताव की आलोचना में सबसे गंभीर थे, और उन्होंने संविधान सभा से इस प्रस्ताव को पूरी तरह से अस्वीकार करने की अपील की। इसके अलावा, उन्होंने संविधान सभा में आग्रहपूर्वक प्रस्ताव रखा कि राज्य की निर्वाचित प्रजासभा के प्रतिनिधि संविधानसभा के सदस्य बनाए जाने चाहिए। अपने सुझाव को उचित ठहराते हुए शाह ने कहा–

यदि स्थिति अन्य राज्यों की तरह सामान्य शांतिपूर्ण होती, तो मैं निश्चित ही बाकी राज्यों के उदाहरण का पालन करता, और आवश्यक था कि प्रतिनिधियों का कम से कम एक हिस्सा उनके प्रतिनिधियों द्वारा चुने गए लोगों के प्रतिनिधि होना चाहिए। लेकिन जैसा कि आज जम्मू–कश्मीर की स्थिति है, लोगों के सभी प्रतिनिधियों को निर्वाचित किया जाना चाहिए।' यदि नेशनल कांफ्रेंस, पूरे या कम से कम लोगों की एक बड़ी संख्या का कश्मीर का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है तो उन्हें डर किस बात का है, कोई कारण नहीं है कि वे चुनाव के रास्ते से अपनी इच्छा के अनुसार प्रतिनिधियों को नहीं भेज सकते हैं। इसलिए उन्हें मेरे इस सुझाव को बिना झिझक स्वीकार कर लेना चाहिए।

इस आलोचना से पता चलता है कि शाह के दो प्राथमिक तर्क थे। पहला, शेख अब्दुल्ला और उनकी राजनीतिक पार्टी जन सामान्य का प्रतिनिधित्व नहीं करती। दूसरा, कि यदि आयंगर का सुझाव स्वीकार किया जाए, तो देश के महत्वपूर्ण हितों को नुकसान पहुंचा सकता है।

उन्होंने इन शब्दों में पहले बिंदु पर विस्तार से बताया–

मैं यह बताने के लिए बाध्य हूँ कि पिछले साढ़े तीन वर्ष की जम्मू और कश्मीर की घटनाओं की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। आपको फरवरी 1946 में शुरू हुए 'कश्मीर छोडो' आंदोलन को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए, जिसे एक जिम्मेदार पार्टी और उसके नेता ने शुरू किया था, जिसके

*गोपाल स्वामी आयंगर*

परिणामस्वरूप उन कठिन परिस्थितियों का निर्माण किया जो अभी तक चल रही हैं। मुझे यह पसंद नहीं है कि यह सदन किसी एक व्यक्ति की इच्छाओं के प्रति आत्म समर्पण किया हुआ दिखाई दे, जो यह कहता है कि जब तक महाराज को हटाया नहीं जाता या सारी शक्तियाँ उसे नहीं दी जाती, तब तक कुछ नहीं हो सकता।

शेख ने प्रधानमंत्री नेहरू को बताया था कि जब तक महाराजा हरि सिंह को उनकी स्थिति से हटाया नहीं जाता, तब तक वह प्रशासन को प्रभावी ढंग से चलाने की स्थिति में नहीं होंगे। ''हालांकि यह साबित होना अभी बाकी है कि वह जनता का प्रतिनिधित्व करता भी है या नहीं। मुझे पता है कि उसे काफी लोगों का समर्थन हासिल है। लेकिन यदि आप बिना किसी संदेह के इसे साबित कर सकते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि आपको सीमित मताधिकार के तहत भी एक चुनाव के लिए आमंत्रण क्यों नहीं भेजा जाना चाहिए। यदि आप वयस्क मताधिकार के अंतर्गत चुनाव करवाते हैं, तो यह बेहतर होगा लेकिन 1946 के सीमित मताधिकार के तहत भी, यदि आप चुनाव करते हैं, तो आपको जनता के सच्चे प्रतिनिधि मिलेंगे।''

दूसरे मुद्दे के लिए, शाह ने कहा–

आपको यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जो घटनाक्रम हुआ है, उसमें पाकिस्तान के अलावा अमेरिका और ब्रिटेन और अन्य बाहरी देशों की भी दिलचस्पी है। इसलिए वे शान्ति बहाल करने के हमारे किसी एकतरफा निर्णय को आसानी से स्वीकार नहीं करेंगे। यदि आप शान्ति बहाल करते हैं और अपने पड़ोसी के साथ शांति में रहना चाहते हैं, तो आपको अनावश्यक रूप से उन्हें यह कहने का अवसर नहीं देना चाहिए कि आप ऐसा कोई कदम उठा रहे हैं जिससे जम्मू और लद्दाख के लोगों के हित खतरे में पड़ जाएंगे। इससे अलबत्ता वे खतरे में पड़ जाएंगे। इसलिए ,जो आप कर रहे है, वह देश के अच्छे नाम को बदनाम करने वाला है, और अगर हमारा हमेशा लोगों के लिए खड़ा होने का दावा है, तो मुझे लगता है कि इस मामले में चुने हुए प्रतिनिधियों की मांग करना कोई बहुत ज्यादा नहीं है। प्रतिनिधि निश्चित ही चुने जाने चाहिए और लोगों का सच्चा प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

यहाँ यह जानना बहुत महत्वपूर्ण है कि प्रोफेसर शाह की दलीलों और भविष्य में खड़े होने वाले संकटों की चेतावनी के बाद आयंगर और प्रधानमंत्री नेहरू को अपने औपचारिक प्रस्ताव के बचाव में कड़ी मेहनत करनी पड़ी। उनका औपचारिक प्रस्ताव असल में प्रजा सभा के चुने हुए प्रतिनिधियों का महत्व कम करने के उद्देश्य से पेश किया गया था। वे दोनों अपने प्रस्ताव पर यह स्वीकार करने के बावजूद अड़े रहे कि जो प्रस्ताव उन्होंने सुझाया था, वह 'आदर्श नहीं' है। नेहरु प्रजा सभा को जनता का प्रतिनिधि मानने को तैयार नहीं थे।

प्रधानमंत्री नेहरू ने प्रस्ताव की रक्षा में कहा था–

मैं शाह को सुन कर हैरान हूँ कि वह कश्मीर की तथाकथित प्रजा सभा को संविधान सभा में प्रतिनिधियों को भेजने के अधिकार का तर्क दे रहे हैं। उन्हें पता होना चाहिए कि प्रजा सभा से ज्यादा फर्जी और कुछ नहीं है। उन्हें यह जानना चाहिए कि 1946–1947 में होने वाले चुनाव पूरी तरह फर्जी थे और सभी सभ्य लोगों ने इन चुनावों का बहिष्कार किया था। जो लोग प्रजा सभा के चुनावों में जीते हैं, ये वो लोग हैं जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन का विरोध किया था, जिन्होंने उस समय तक कश्मीर की आजादी के विचार को हर संभव ठुकराया था .... मैं मानता हूं कि यह किसी के लिए महत्वपूर्ण नहीं है इस सदन के सदस्य नामांकन से आते हैं या अन्य प्रक्रिया से नियुक्त होते हैं। हालांकि यह सच है कि कश्मीर के प्रतिनिधि चुनने के लिए जो सुझाव दिया

गया है प्रक्रिया आदर्श नहीं है, फिर भी मुझे लगता है कि यह बेहतर प्रक्रिया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जैसे आप लोकप्रिय पार्टी के प्रतिनिधि के साथ लोकप्रिय सरकार बनाते हैं। शासक को सलाह देते हैं कि कुछ नाम जाना चाहिए। लोकतंत्र के दृष्टिकोण से भी, यह एक गलत प्रक्रिया नहीं है। यह सौ प्रतिशत सही है।

हालांकि, सबसे आश्चर्यजनक संविधान सभा के अन्य सदस्यों का रवैया था। सभी (या लगभग सभी) या तो आयंगर और जवाहरलाल नेहरू के प्रस्ताव के पक्ष में थे या इस अति महत्वपूर्ण विषय पर बहस के लिए तैयार नहीं थे। नतीजतन, आयंगर फार्मूला अपनाया गया। इस फैसले से तत्काल शेख अब्दुल्ला और उनके उम्मीदवारों, मिर्जा अफजल बेग, मौलाना मसूदी और मोतीराम बेगरा को संविधान सभा का सदस्य बना लिया गया।

यह इस तरह से लोकतंत्र की पहली बलि दे दी गई। कोई भी सहमत हो या न हो, लेकिन यह एक तथ्य है कि उसके बाद से कुछ अपवादों को छोड़ कर सभी चुनावों में घाटी के शासक वर्ग ने धांधली से चुनाव जीता और चुनाव आयोग ने धांधली का कोई संज्ञान नहीं लिया।

अगर कोई चुनावों में हेराफेरी की हद जानना चाहता है, तो उसे 1951 के जम्मू और कश्मीर विधानसभा बनाम संविधान सभा के चुनावों के आंकड़े देख लेने चाहिए। आंकड़े बताते हैं कि नेशनल कांफ्रेंस के 75 उम्मीदवारों में से 73 बिना विरोध चुने गए। यह सिर्फ इसलिए हो सका क्योंकि राज्य प्रशासन ने सभी गैर–नेशनल कांफ्रेंस उम्मीदवारों के नामांकन पत्रों को रद्द घोषित कर दिया था। अन्य चुनावों के विवरण भी यही बात बताते हैं।

27 मई 1949 को कश्मीर मामलों के मंत्रालय के प्रभारी गोपालस्वामी आयंगर ने प्रस्ताव पेश करते हुए कहा था –

अनुच्छेद 4 (संविधान सभा नियमों की अनुसूची में) में इसके अलावा कुछ नहीं है कि कश्मीर राज्य की सभी विधानसभा सीटें उनके प्रधान मंत्री की सलाह पर कश्मीर के शासक द्वारा भरी जा सकती हैं।

इस प्रस्ताव के खिलाफ उठाई गई कई आपत्तियों में से, जो सब से ज्यादा

**नतीजतन, आयंगर फार्मूला अपनाया गया। इस फैसले से तत्काल शेख अब्दुल्ला और उनके उम्मीदवारों, मिर्जा अफजल बेग, मौलाना मसूदी और मोतीराम बेगरा को संविधान सभा का सदस्य बना लिया गया**

विवादास्पद थी, वह यह थी कि राज्य के नामकरण से 'जम्मू' को हटा दिया गया था। इस मुद्दे पर जिन लोगों ने विरोध किया उनमें पंडित लक्ष्मी कान्त मैत्र और प्रोफेसर के.टी. शाह प्रमुख थे, जो राज्य और उसके लोगों से भली–भांति परिचित थे, क्योंकि वह 1931 से राज्य में चली राजनीतिक उथल–पुथल के प्रत्यक्षदर्शी थे।

प्रोफेसर के.टी. शाह 15 वर्षों तक इस रियासत के मामलों से जुड़े रहे थे और अक्टूबर 1947 से पहले कुछ साल के लिए जम्मू–कश्मीर के योजना सलाहकार रहे थे। उन्हें यह भी मालूम था कि आने वाले दिनों में जम्मू और कश्मीर में घटनाएं कैसी करवट ले सकती हैं। क्योंकि नेशनल कांफ्रेंस (एनसी) के अध्यक्ष शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के साथ उन की 15 दिन तक लम्बी बातचीत हुई थी। अपनी 'नया कश्मीर' योजना पर प्रोफेसर शाह से बात करने के लिए शेख अब्दुल्ला बाकायदा श्रीनगर से मुंबई गए थे और 15 दिन उनके साथ रहे थे।

## पंडित नेहरू और शेख अब्दुल्ला

नेशनल कांफ्रेंस ने सितंबर 1944 में 'नया कश्मीर' कार्यक्रम अपनाया। उन्होंने मांग की कि 16 मार्च, 1846 को महाराजा गुलाब सिंह और भारत की तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के बीच हुई अमृतसर की संधि, जो विक्रय की प्रकृति में थीं, उससे कश्मीर के लोगों का अपमान हुआ है, इसलिए उस संधि को खत्म किया जाए। (राज्य स्वायत्तता समिति की रिपोर्ट, जम्मू, अप्रैल 1999, पृ.11)

जबकि पंडित मैत्रा ने बार–बार पूछा–

'... क्या 'कश्मीर' शब्द में जम्मू और कश्मीर दोनों शामिल हैं ...'

प्रोफेसर शाह ने प्रस्ताव में संशोधन किया और संविधान सभा को एक अपील की, यह सुनिश्चित किया जाए कि जहां जहां 'कश्मीर' शब्द का उल्लेख होता है उसके आगे ''जम्मू और....''जोड़ा जाए।

संशोधन पेश करते हुए प्रोफेसर शाह ने कहा–

... इस मामले में कुछ महत्व है, जो इसे अधिक आवश्यक बनाता है कि आप (आयंगर) को दूसरे भाग (जम्मू) को नहीं छोड़ना चाहिए, और सच यह है कि वह (जम्मू) इस प्राचीन राज्य के शीर्षक के पहले भाग में है। इसे कश्मीर राज्य बुलाकर आप गलती कर रहे हैं ... क्या मैं पूछ सकता हूं ... अगर हमने पहले उदाहरण में गलती की है, अगर हम राज्य के एक संप्रदाय (सुन्नी मुसलमान) को महत्व दे रहे हैं, राज्य के उस हिस्से से जुड़े व्यक्तियों (शेख और उनके सहयोगियों) को महत्व दे रहे हैं तो हमें किसी भी कारण से दूसरे पक्ष को भूलना नहीं चाहिए और राज्य का कोई कम महत्वपूर्ण हिस्सा नहीं होना चाहिए। जबकि इस औपचारिक दस्तावेज में उस गलती को कायम रखना जारी है और कश्मीर से ही बात की जा रही है, जबकि हमारा कहने का अर्थ जम्मू और कश्मीर से है? इस तथ्य से प्रस्तावक ने भी इनकार नहीं किया है कि राज्य का सही नाम जम्मू–कश्मीर है ...

प्रोफेसर शाह ने संविधान सभा को यह भी बताया कि कश्मीर और जम्मू के बीच के संबंध बहुत सौहार्दपूर्ण नहीं थे।

इस बारे में उन्होंने कहा–

जो लोग राज्य के वर्तमान प्रधानमंत्री (शेख अब्दुल्ला) के कथित कश्मीर छोडो आंदोलन (1946) के बारे में जानते हैं, उनको पता होगा कि उन घटनाओं के अनुक्रम में जो हुआ है, और अगर आप सिर्फ कश्मीर का जिक्र करते हैं तो इसका गलत मतलब समझा जा सकता है। और हमारे सार्वजनिक रिकॉर्ड उस हद तक बिगड़ जाएंगे ... असल में 1931 में सांप्रदायिकता बढ़ने से पहले तक एक ही शासक के अधीन ...जम्मू और कश्मीर राज्य सभी व्यावहारिक प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए वास्तव में दो प्रांतों में विभाजित था।

वह अपनी बात कहते हुए यहीं नही रुके , अलबत्ता उन्होंने कहा–

नामकरण की बात केवल मौखिक संशोधन की बात नहीं है, इसके पीछे घटनाओं के

*संविधान सभा में संविधान के प्रारूप पर बहस ( 21 फरवरी से 26 अक्टूबर 1948)*

क्रम में इसका महत्व है, केवल इस सदन या इस देश तक ही सीमित नहीं है। इस देश के बाहर भी इसका मतलब है ... इसलिए, हमें हर शब्द में सावधान रहना चाहिए जो हम उपयोग करते हैं, ताकि हमारी अभिव्यक्ति, हमारे नामकरण, हमारा पूरा शब्द और स्थिति सही तथ्यों के अनुरूप हो...

पंडित मैत्रा के जवाब में, आयंगर ने कहा 'कश्मीर का मतलब जम्मू–कश्मीर है।' हालांकि इसके बावजूद उन्होंने अपने प्रस्ताव को भी उचित कहा–

उन्होंने कहा ...' मसौदा संविधान में, अनुसूची में भी कश्मीर के रूप में वर्णित किया गया है।' उन्होंने सदस्यों से आग्रह किया कि इस मुद्दे को विवाद का विषय न बनाएं क्योंकि यदि आप इसे बदलते हैं, तो हमें अन्य चीजें भी बदलनी पड़ेगी जो पहले से ही हमारे कानूनों और नियमों में हैं ...'

दूसरे शब्दों में, अय्यंगार ने कश्मीर से पहले 'जम्मू और' शब्दों को जोड़ने की अपनी अनिच्छा व्यक्त की, लेकिन वही जानते थे कि वह ऐसा क्यों कर रहे थे, पर वह पंडित मैत्रा और प्रोफेसर शाह को संतुष्ट नहीं कर सके और उन दोनों ने अपना विरोध जारी रखा। उन दोनों ने आयंगार के लंबे वक्तव्य के जवाब में गंभीर सवाल उठाए। तब जवाहर लाल नेहरु को लगा कि आयंगार पंडित मैत्रा और प्रोफेसर शाह को समझाने की स्थिति में नहीं हैं। तब जवाहरलाल नेहरू खुद मंच पर आए और उन्होंने आयंगार का बचाव करते हुए कहा–

मैं कई तरह से कश्मीर से जुडा रहा हूँ, और एक मायने में, मैं विशेष रूप से भारत के किसी भी हिस्से की तुलना में कश्मीर का ज्यादा हूँ, मैं कश्मीर में स्वतंत्रता की लड़ाई से जुड़ा हुआ हूं ... और इसलिए, अगर मैं इस घर (संविधान सभा) में कुछ कहना चाहता हूं, तो मैं प्रोफेसर शाह की अपेक्षा अधिक अधिकार से कह सकता हूं ...

इसके बाद, उन्होंने प्रोफेसर शाह की बहस का सामना करने के लिए शेख अब्दुल्ला, उनकी नेशनल कांफ्रेंस और कश्मीर छोडो आन्दोलन पर लंबा भाषण किया। लेकिन उसी के साथ ही उन्होंने 'लोगों के दिमाग में उत्पन्न भ्रम हटाए जाने' के लिए 'प्रस्ताव के शब्दों में एक छोटे बदलाव' का सुझाव दिया। उन्होंने जो वास्तव में सुझाव दिया उसके अनुसार राज्य को तो कश्मीर ही कहा गया, लेकिन उसके बाद, कोष्ठकों में डाल दिया गया जो कश्मीर और जम्मू राज्य के रूप में जाना जाता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय कि 1846–1949 के दौरान कोई भी समय ऐसा नहीं था जब राज्य 'कश्मीर और जम्मू राज्य' के रूप में जाना जाता रहा हो। यह हमेशा 'जम्मू और कश्मीर' राज्य के रूप में जाना जाता था और जम्मू इसकी स्थायी राजधानी थी। यह भी स्पष्ट किया जाना जरूरी है कि महाराजा रणबीर सिंह (1857–1885) के समय सचिवालय को जम्मू से कश्मीर ले जाने और वापस जम्मू ले जाना शुरू किया गया था।

घाटी में महाराजा के खिलाफ आन्दोलन की रणनीति ब्रिटिश शासकों की बनाई हुई थी, जिसके राजनीतिक कारण थे। वे रूस की गतिविधियों पर निगरानी रखने के लिए गिलगित में अपनी चौकी स्थापित करना चाहते थे।

लेकिन जहां तक संविधान सभा में प्रधानमंत्री नेहरू के कश्मीर के आगे कोष्ठक में कश्मीर और जम्मू राज्य लिखने संबंधी प्रस्ताव का सवाल था, तो वह किसी के गले नहीं उतरा। इसलिए उन्होंने प्रोफेसर शाह के संशोधन प्रस्ताव के खिलाफ वातावरण बनाने की कोशिश छोड़ दी। प्रोफेसर शाह अपने संशोधन पर अड़े रहे और आखिरकार आयंगार ने अपने प्रस्ताव में संशोधन करते हुए कहा – 'कश्मीर (जिसे जम्मू और कश्मीर राज्य के रूप में जाना जाता है) के रूप में पढ़ा जाए। संविधान सभा ने संशोधित प्रस्ताव को अपनाया। इस प्रकार, जम्मू, जिसने 101 वर्षों के लिए कश्मीर पर शासन किया था, को राज्य के नामकरण में स्थान मिला, हालांकि कोष्ठक के भीतर आधिकारिक नाम में 'जम्मू' शब्द प्रोफेसर शाह के प्रयासों और उन्हें पंडित मैत्रा के समर्थन के कारण जोड़ा जा सका। अगर वे भी संविधान सभा के अन्य सदस्यों की तरह मौन बने रहते तो राज्य के नाम में जम्मू का उल्लेख नहीं होता।[2] इन तथ्यों को परिप्रेक्ष्य में रखना चाहिए और स्थापित करना चाहिए कि नेहरू और उनकी कांग्रेस के लिए राज्य की राजनीतिक स्थिति में जम्मू और लद्दाख के लोग कोई मायने नहीं रखते। ■

*omhari00009@gmail.com*

**संदर्भ संकेत**

1. संविधान सभा बहस, पुस्तक संख्या 5, खंड संख्या 10–12, 6 अक्टूबर 1949 से 24 जनवरी 1950, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्प्रकाशित, द्वितीय संस्करण, 1989, पृ. 428
2. संविधान सभा बहस, पुस्तक संख्या 3, खंड आठवीं, 16 मई, 1949 से 16 जून, 1949, लोकसभा सचिवालय द्वारा पुनर्मुद्रित, नई दिल्ली, दूसरा पुनर्मुद्रण, 1989, पृ. 357–373

# अनुच्छेद 370

वी. शंकर

संविधान सभा की आम शांति जम्मू और कश्मीर राज्य की अजीब स्थिति से निपटने के प्रस्तावों से बहुत ज्यादा खतरे में थी और यह स्थिति किसी अन्य व्यक्ति की बनाई हुई नहीं थी बल्कि शेख अब्दुल्ला ही इस स्थिति के लिए जिम्मेदार थे। वे भारत सरकार पर भरोसा नहीं करते थे और भले ही उन्होंने भारतीय संघ के साथ संवैधानिक संबंध स्वीकार कर लिया था पर जम्मू और कश्मीर की सरकार को अपनी पसंद का रखना चाहते थे। जम्मू और कश्मीर के भारत में विलय से संबंधित विस्तृत दस्तावेज के तहत अंतिम अधिकार खासकर तीन क्षेत्रों रक्षा, विदेश और संचार में स्वयं का रखना चाहते थे। अपना संविधान बनाने के लिए वे राज्य की संविधान सभा के लिए भी पूरी आजादी थे। गोपालस्वामी आयंगर ने इस पूरी स्थिति की विस्तृत चर्चा पंडित नेहरू से की थी और कुछ मसौदा प्रावधान भी तैयार किया था जिसे शेख अब्दुल्ला ने स्वीकार कर लिया था और जिसे अब इस संविधान सभा की कांग्रेस पार्टी के समक्ष रखा जाना था।

पार्टी में विशेष राय रखने वालों का मजबूत समूह था जो भारतीय संघ के भावी सदस्यों के रूप में जम्मू और कश्मीर तथा दूसरे राज्यों में किसी भी तरह के भेद-भाव को संदेह की दृष्टि से देखता था तथा जम्मू और कश्मीर के लिए विशेष प्रावधान मुहैया कराने के लिए एक सीमा से आगे जाने को तैयार नहीं था

पार्टी में विशेष राय रखने वालों का मजबूत समूह था जो भारतीय संघ के भावी सदस्यों के रूप में जम्मू और कश्मीर तथा दूसरे राज्यों में किसी भी तरह के भेद–भाव को संदेह की दृष्टि से देखता था तथा जम्मू और कश्मीर के लिए विशेष प्रावधान मुहैया कराने के लिए एक सीमा से आगे जाने को तैयार नहीं था। खुद सरदार पटेल भी इस स्थिति से पूरी तरह सहमत थे पर समस्याओं को अपने अंदाज में सुलझाने वाले पंडित नेहरू और गोपालस्वामी आयंगर के मार्ग में बाधा नहीं बनने की अपनी आम नीति के कारण उन्होंने अपना नजरिया पृष्ठभूमि में रखा था। सच तो यह है कि उन्होंने प्रस्तावों का मसौदा तैयार करने में कोई भूमिका नहीं निभाई। इसका नतीजा यह हुआ कि प्रस्तावों को उन्होंने तभी सुना जब गोपालस्वामी आयंगर ने इनकी घोषणा कांग्रेस पार्टी के लिए की। इस घोषणा के बाद हर ओर से भारी विरोध शुरू हो गया और गोपालस्वामी आयंगर ने खुद को अप्रभावी समर्थक मौलाना अबुल कलाम आजाद के साथ अकेला बचावकर्ता पाया। संक्षेप में इस स्थिति का वर्णन करने के लिए यह कहा जा सकता है कि गोपालस्वामी आयंगर और उनके प्रस्ताव दोनों के पार्टी ने टुकड़े–टुकड़े कर दिए।

बाद में, शाम के समय सरदार के पास गोपालस्वामी आयंगर का फोन आया और तब उन्होंने पार्टी के समक्ष रखे गए प्रस्ताव की मूल बातों को समझाया और उन दृश्यों का वर्णन किया जिसे उन्होंने तकलीफ के साथ देखा था। उन्होंने महसूस किया कि स्थिति की रक्षा के लिए सिर्फ सरदार हस्तक्षेप कर सकते हैं और उनसे अपील की कि उनके बचाव में आगे आएं। सरदार ने उनकी बातें सुनी और चुप हो गए .... उन्होंने कहा कि वे इस बारे में सोचेंगे .... अगली सुबह निश्चित समय पर मुलाकात हुई और इसमें मौलाना आजाद भी मौजूद थे। पता चला कि गोपालस्वामी आयंगर का मसौदा शेख अब्दुल्ला को स्वीकार्य नहीं था और मौलाना वहां अपना नजरिया समझाने के लिए आए थे। शेख अब्दुल्ला खुद चर्चा से बाहर रहे ... गोपालस्वामी के फार्मूले के विरोध में राय जोर शोर से रखी गई और इसके खिलाफ उग्र रूप भी दिखाया गया। संविधान बनाने के लिए संविधान सभा की संप्रभुता का मुद्दा भी उठा और इसके लिए कश्मीर राज्य के संविधान सभा की शर्तों से न बंधे होने की बात भी कही गई। इस स्थिति में मौलाना आजाद को भी बोलने नहीं दिया गया। यह जिम्मा सरदार पर छोड़ दिया गया कि वे चर्चा को व्यावहारिक योजना पर लाएं और यह दलील दें कि अंतरराष्ट्रीय जटिलताओं के कारण .... उन्होंने महसूस किया कि भारत सरकार की

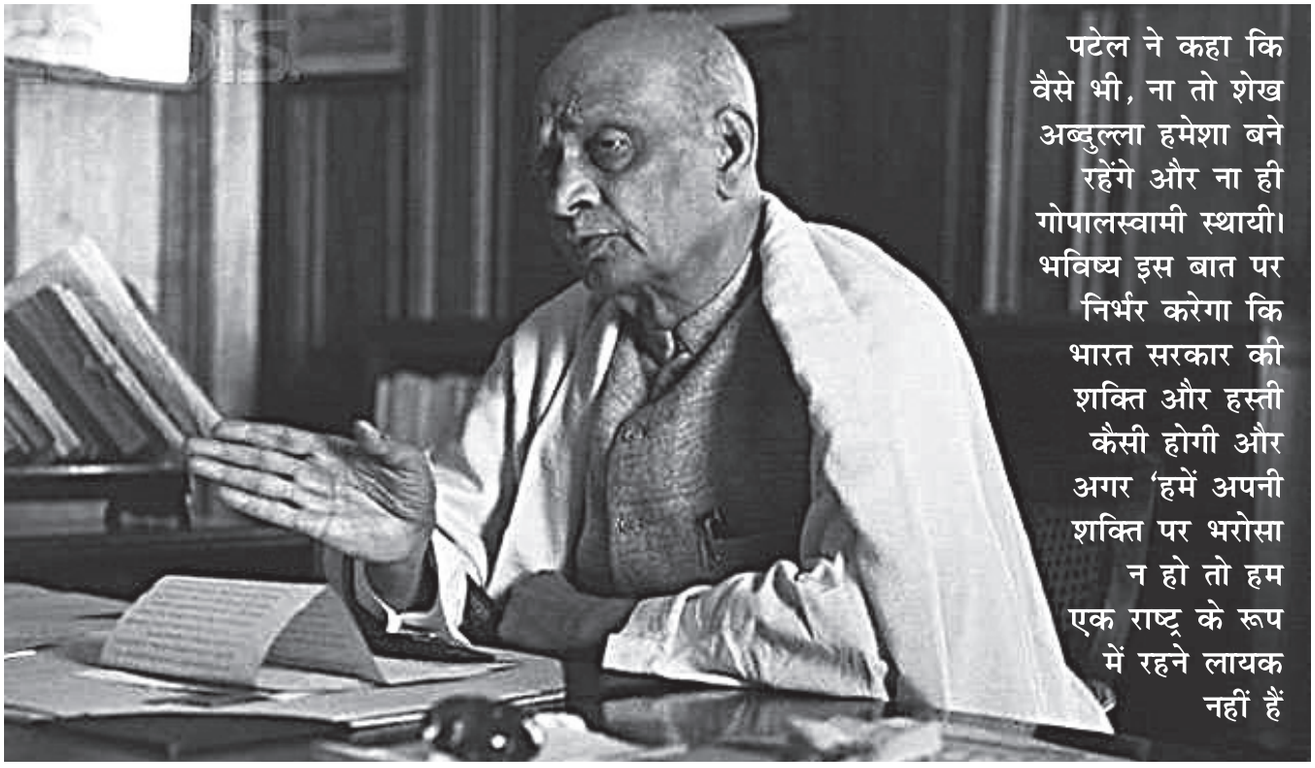


संविधान सभा को राज्य सरकार की सलाह से मौजूदा अधिमिलन की विषयवस्तु को पारिभाषित करना चाहिए परंतु आगे कोई भी अधिमिलन जम्मू और कश्मीर सरकार की इच्छा और सहमति पर निर्भर करना चाहिए। फिलहाल ऐसी ही व्यवस्था लागू रहनी चाहिए।

आखिरकार, यही नजरिया मंजूर किया गया और आवश्यक संशोधनों के साथ गोपालस्वामी आयंगर का मसौदा स्वीकार कर लिया गया। अंतिम समय में मौलाना आजाद ने शेख अब्दुल्ला के नजरिए का समर्थन करने की अपील की जिसे सरसरी तौर पर मना कर दिया गया और भारी बहस के बाद तथा शेख अब्दुल्ला की अनुपस्थिति में संविधान सभा ने इस धारा को स्वीकार कर लिया जो बाद में धारा 370 के रूप में दर्ज हुई। गोपालस्वामी आयंगर के ड्राफ्ट फॉर्मूला के प्रति सरदार की मौन स्वीकृति से मैं थोड़ा चौंक गया और गंभीरता से महसूस किया कि इस फार्मूला को आधार के रूप में स्वीकार करके सरकार ने भारतीय संघ और अन्य राज्यों की स्थिति से समझौता किया है। सच कहूं तो भोजनावकाश पर जब हम सरदार के घर पहुंचे तो मैं उनके रुख से नाराज था। मैं शांत और गुस्से में था तथा सीधे अपने ऑफिस में चला गया। मणिबेन मुझे खाने के लिए बुलाने आईं। मैंने जाने से मना कर दिया और उनसे उस दुख व तकलीफ की चर्चा की जिसे मैंने महसूस किया था। साथ ही मैंने यह भी कहा कि पहली बार मुझे महसूस हुआ है कि सरदार ने मुझे दगा दिया है। उन्होंने गुस्से की मेरी भावना सरदार को बता दी। उन्होंने उन्हें वापस भेजा और यह कहलवाया कि कम से कम बात करने के लिए मुझे उनके साथ भोजन की मेज पर बैठना चाहिए। जैसे ही मैं बैठा, सरदार ने कहा, "तो आप मुझसे नाराज हैं क्योंकि मैंने गोपालस्वामी का फार्मूला स्वीकार कर लिया है।' मैंने उनसे पूछा कि अगर वे ऐसा समझ रहे थे तो उन्होंने मुझे अपने मन की बात बताने के लिए पहले संकेत क्यों नहीं किया। उन्होंने कहा, 'मैं स्थिति को लेकर बेहद चिन्तित था। गोपालस्वामी ने पंडितजी की सलाह पर काम किया था। अगर जवाहर लाल यहां होते तो मैं उनसे इसपर बात करता। लेकिन गोपालस्वामी के साथ मैं ऐसा कुछ कैसे करता जब वे सिर्फ उनके आदेश पर काम कर रहे थे? अगर मैं करता, तो लोग कहते कि जब वे नहीं थे तो मैं उनके भरोसेमंद से बदला ले रहा था। गोपालस्वामी ने मुझसे सहायता की अपील की थी। मैं उनके प्रमुख की अनुपस्थिति में कैसे उन्हें नीचा देखने के लिए छोड़ सकता था?"

इसके बाद मैंने पूछा कि क्यों उन्होंने देश और दूसरे राज्यों को नीचा दिखाया जिसकी संविधान सभाओं को उनकी सलाह और नीति के अनुपालन में रद्द कर दिया गया। उन्होंने इस निन्दा की वैधता को स्वीकार किया पर राज्य की नाजुक अंतरराष्ट्रीय स्थिति और भारत के साथ संबंध के मुद्दे पर चर्चा की। हमारा मानना था कि आखिरकार हार मानने के बजाय मौजूदा स्थिति से निपटना होगा और यह फार्मूला के तहत किया गया है। उन्होंने कहा कि वैसे भी, ना तो शेख अब्दुल्ला हमेशा बने रहेंगे और ना ही गोपालस्वामी स्थायी । भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि भारत सरकार की शक्ति और हस्ती कैसी होगी और अगर 'हमें अपनी शक्ति पर भरोसा न हो तो हम एक राष्ट्र के रूप में रहने लायक नहीं हैं।' ■

*(वी. शंकर, माई रेमिनिसेंस ऑफ सरदार पटेल, भाग 2, दि मैकमिलनः दिल्ली, 1974, मुद्रित पृष्ठ 61–63)*

जवाहरलाल कौल

# 35ए - विघटन की एक धारा

इस धारा से संबंधित सबसे खास बात यह है कि यह भारतीय संविधान की कई धाराओं को संशोधित करती है भारत की संसद की जानकारी में लाए बिना। मौजूदा धाराओं के स्पष्टीकरण के लिए जारी राष्ट्रपति का आदेश संविधान के संवैधानिक संशोधन में नहीं बदला जा सकता है। इसके लिए संसद की प्रकिया पूरी करना जरूरी है

## असीम संप्रभुता का सपना

हम, नागरिकों, वेस्ट पाकिस्तान रीफ्यूजीज ऐक्शन कमेटी और चारू वली खन्ना में कुछ भी समान नहीं है इस तथ्य के सिवा कि सबके सब एक कानून जिसे धारा 35ए कहा जाता है, के पीड़ित हैं। धारा 35ए एक कठोर कानून है। एक ऐसा कानून जिसकी वैधता संदिग्ध है। शीर्ष अदालत ने संभवतः मामलों की व्यवहार्यता पर विचार करने की सहमति नहीं दी होती अगर माननीय अदालत का ध्यान किसी और द्वारा नहीं, माननीय जम्मू और कश्मीर हाईकोर्ट द्वारा कानून की गलत और चिन्ताजनक व्याख्या पर नहीं गया होता। जम्मू और कश्मीर हाईकोर्ट ने एक फैसला दिया जो और कुछ नहीं, सीधे भारत के संविधान और संसद को चुनौती है। इसमें दावा किया गया है कि जम्मू और कश्मीर एक संप्रभु राज्य है और संसद द्वारा बनाए गए कानून राज्य में लागू नहीं किए जा सकते हैं। "जम्मू और कश्मीर के महाराजा के शासन में राज्य की संप्रभुता अधिग्रहण के दस्तावेज पर दस्तखत के बाद भी इसके अपने संविधान के मद्देनजर, कानूनन और संवैधानिक तौर पर यथावत है और उसमें कोई छेड़छाड़ नहीं हुई है।" फैसले के मुताबिक भारतीय संसद राज्य की अनुमति पर कानून बना सकती है और संसद द्वारा 2002 में पास सरफेसी अधिनियम (प्रतिभूतीकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूति हित को प्रभावी करने का अधिनियम 2002) राज्य में लागू नहीं किया जा सकता है।

इस संबंध में सुप्रीम कोर्ट का एक महत्वपूर्ण फैसला राज्य के हाईकोर्ट के फैसले के खिलाफ भारतीय स्टेट बैंक की अपील पर आया। सुप्रीम कोर्ट ने हाईकोर्ट के निर्णय को खारिज कर दिया और कहा कि हाईकोर्ट कानून की व्याख्या में पूरी तरह गलत है क्योंकि जम्मू और कश्मीर को भारतीय कानून से अलग कोई संप्रभुता नहीं है। इसके नागरिक पहले और सबसे पहले भारत के नागरिक हैं। "इसलिए यह कहना पूरी तरह गलत है कि संप्रभु होने के नाते यहां रहने वाले अपने आप में एक अलग और खास वर्ग होंगे। हम हाईकोर्ट को यह याद दिलाना चाहेंगे कि जम्मू और कश्मीर के अधिवासी पहले और सबसे पहले भारत के नागरिक हैं।" यह फैसला जम्मू और कश्मीर के लोगों के साथ–साथ भारत के लोगों को भी एक स्पष्ट संदेश देता है कि नागरिकता केवल एक है और वह भारत की नागरिकता है कोई अन्य नहीं।

## करार जो कभी हुआ ही नहीं

जम्मू और कश्मीर के उपरोक्त फैसले से काफी पहले, शेख मोहम्मद अब्दुल्ला और प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू दिल्ली में मिले थे। शेख भारतीय संसद के नियंत्रण से ज्यादा स्वायत्तता और आजादी के लिए दबाव डाल रहे थे। नेहरू ने कुछ समय तक तो मना किया पर श्री अब्दुल्ला के लिए संतोषप्रद करार पर दस्तखत करने के लिए आखिरकार तैयार हो गए। एक करार का मसौदा तैयार हुआ पर ऐसा लगता है कि दोनों लोग जम्मू और कश्मीर राज्य की आजादी की मात्रा पर सहमत नहीं हो पाए। "इस संबंध में जम्मू और कश्मीर विधानसभा का स्टैंड हमेशा एक सा रहा और इस बात के मद्देनजर कि सभी मामलों में संप्रभुता विलय के दस्तावेज में जो विनिर्दिष्ट है, से बेहतर है इसलिए भारत सरकार ने इस बात पर सहमति दी कि सभी राज्यों में विधायिका के अधिकार कुछ मामलों में हैं जो जम्मू और कश्मीर के मामले में राज्य में ही निहित है।"

यह दिल्ली करार का शुरुआती हिस्सा है। दो राजनीतिज्ञों के बीच सिर्फ मौखिक करार से शेख अब्दुल्ला संतुष्ट होने वाले नहीं थे। इसे उपयुक्त अधिकारी द्वारा संपुष्ट किया जाना था और ऐसे स्वरूप में पेश किया जाना था

जिसे कानूनी तौर पर लागू किया जा सके और शीर्ष अदालत द्वारा स्वीकार किया जा सके। वैसे तो जम्मू और कश्मीर की संप्रभुता इस करार का महत्वपूर्ण भाग है पर कुछ कानूनी विशेषज्ञों ने नेहरू को इस प्रावधान के खतरनाक नतीजों को लेकर चेतावनी जरूर दी होगी। जम्मू और कश्मीर की पृथक संप्रभुता पर विचार करते हुए नेहरू इतने परेशान हुए कि 1954 का राष्ट्रपति का आदेश तैयार करते समय उन्होंने इस प्रावधान को खत्म कर दिया। सच तो यह है कि शेख भी संतुष्ट नहीं थे।

सच तो यह है कि इस करार से दो मित्रों के बीच इतने मतभेद हुए कि शेख ने जब भारत पर आरोप लगाने शुरू किए कि कश्मीरियों पर दबाव बनाने के लिए भारत बंदूक और सोने का उपयोग कर रहा तो नेहरू ने शेख को जेल में बंद करने की योजना बनाई थी। 1953 में अब्दुल्ला को बर्खास्त करके गिरफ्तार कर लिया गया था। तथाकथित करार की ना कभी पुष्टि हुई, न इस पर चर्चा हुई। हालांकि, अगले साल नेहरू ने राष्ट्रपति के आदेश का मसौदा तैयार किया जिस पर भारत के राष्ट्रपति के दस्तखत होने थे। बेशक जम्मू और कश्मीर की संप्रभुता के प्रावधानों को खत्म करते हुए। एक दस्तावेज के रूप में दिल्ली करार की कोई कानूनी वैधता नहीं है। सच तो यह है कि दोनों पक्षों में जो कुछ भी सहमति हुई हो उससे वे मुकर गए थे। नेहरू ने उस प्रावधान को खत्म कर दिया जिसे शेख रखना चाहते थे। इसके बाद शेख ने अपना भारत विरोधी प्रचार शुरू किया जिसके लिए उन्हें जेल जाना पड़ा। वैसे तो यह धारा 35 के लिए पृष्ठभूमि की सामग्री मुहैया कराता है पर यह इसे न्यायोचित नहीं ठहराता है ना तो कानूनन और ना नैतिक रूप से।

## एक धारा जो संविधान के बिना लागू है

भारत के राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया जिसे संविधान (एप्लीकेशन टु जम्मू एंड कश्मीर) ऑर्डर 1954 कहा जाता है। यह रिवाज है कि संविधान की कतिपय धाराओं और पहले से बने कानूनों को स्पष्ट करने के लिए राष्ट्रपति आदेश जारी करते हैं। इस तरह के आदेश मुख्य रूप से सिर्फ

**किसी भी धारा में संशोधन, योग, बदलाव या हटाए जाने की प्रक्रिया धारा 368 निर्धारित करती है। संविधान में संशोधन की शुरुआत इस उद्देश्य के लिए संसद के किसी भी सदन में विधेयक पेश करके ही की जा सकती है**

स्पष्टीकरण के लिए होते हैं। राष्ट्रपति का 54 का आदेश भी एक आदेश है जो संसद द्वारा उपयुक्त प्रक्रिया के तहत पास धारा 370 के कतिपय नियमों और शर्तों तथा प्रावधानों को स्पष्ट करने के लिए है। भारतीय नागरिकों के बुनियादी अधिकारों को नियंत्रित करने के अलावा यह एक ऐसा कानून है जिस संसद ने कभी पास नहीं किया। वैसे तो इसका नाम धारा 35ए है पर इसे धारा 35 के तुरंत बाद नहीं लिखा गया है बल्कि इसे पुस्तक से बाहर रखा गया है।

अगर इसका मकसद जनता से छिपाना था तो सरकार एक हद तक कामयाब रही है। तीन साल पहले तक बहुत सारे अधिवक्ताओं और विधि छात्रों को पता ही नहीं था कि ऐसी कोई धारा है जिसे 35ए कहा जाता है। इस धारा से संबंधित सबसे खास बात यह है कि यह भारतीय संविधान की कई धाराओं को संशोधित करती है भारत की संसद की जानकारी में लाए बिना। मौजूदा धाराओं के स्पष्टीकरण के लिए जारी राष्ट्रपति का आदेश संविधान के संवैधानिक संशोधन में नहीं बदला जा सकता है। इसके लिए संसद की प्रकिया पूरी करना जरूरी है।

किसी भी धारा में संशोधन, योग, बदलाव या हटाए जाने की प्रक्रिया धारा 368 निर्धारित करती है। संविधान में संशोधन की शुरुआत इस उद्देश्य के लिए संसद के किसी भी सदन में विधेयक पेश करके ही की जा सकती है। इसे दोनों सदनों के कम से कम दो तिहाई सदस्यों द्वारा पास किया जाना चाहिए। राष्ट्रपति का आदेश 54 किसी भी सदन में विधेयक के रूप में पेश नहीं किया गया था ना ही संसद को सूचना दी गई थी कि आवश्यक प्रक्रिया के बगैर संविधान में एक धारा जोड़ी जा रही है। यह दिलचस्प है कि संविधान में संसद के संशोधन करने के अधिकारों में कोई सीमा नहीं है। इसमें कहा गया है, "संशोधन करने के संसद के संवैधानिक अधिकारों की कोई सीमा नहीं होती" पर राष्ट्रपति का आदेश एक अलग रूपांतर देता है। इसने धारा 368 में एक प्रावधान किया है जो कहता है कि, "यह प्रावधान भी किया जाता है कि जम्मू और कश्मीर के संबंध में किसी संशोधन का प्रभाव नहीं होगा बशर्ते इसे धारा 370 की उपधारा (1) के तहत राष्ट्रपति के आदेश से लागू नहीं किया गया हो।

भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार नहीं है कि वाजिब प्रक्रिया पूर्ण किए बगैर वे संविधान संशोधन कर सकें। इसके बावजूद पूरी तरह नई एक धारा पेश की गई है जो कहती है कि, धारा 35 के बाद निम्नलिखित नई धारा जोड़ी जाएगी जो इस प्रकार है,

35ए. स्थायी अधिवासियों और उनके अधिकारों के संबंध में कानून है। इस संविधान में जो कहा गया है उन सबके बावजूद जम्मू और कश्मीर राज्य में इस समय लागू कोई भी मौजूदा कानून और इसके बाद राज्य की विधायिका द्वारा बनाया जाने कोई भी कानून :–

(क) उन व्यक्तियों के वर्ग को पारिभाषित नहीं करेगा जो जम्मू और कश्मीर राज्य के स्थायी निवासी हैं या होंगे या

(ख) ऐसे स्थायी निवासियों को कोई विशेष अधिकार या विशेषधिकार दिया जाना, दूसरे लोगों पर सम्मान के रूप में कोई प्रतिबंध लगाना

1. राज्य सरकार के तहत नियुक्ति (नौकरी)
2. राज्य में अचल संपत्ति हासिल करना
3. राज्य में बसना

4 वजीफे का अधिकार और राज्य की सहायता के ऐसे दूसरे रूप मुहैया कराई जा सकने वाली अन्य सुविधाएं इस आधार पर बेअसर होंगी कि यह भारत के अन्य नागरिकों को दी जाएंगी से तालमेल में नहीं है और इस भाग के प्रावधान के तहत भारत के नागरिक को दिए जाने वाले अधिकार को कम करता है।" ■

*संपर्क - 9711361937*
*kauljawaharlal@gmail.com*

प्रो. काशीनाथ पंडित

# शेख अब्दुल्ला: व्यक्तित्व और राजनीति

शेख अब्दुल्ला पढ़ने के लिये अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय गये तो उन्हें श्रीनगर के मीरवाइज खानदान से आर्थिक सहायता मिली। इसी विश्वविद्यालय से एम.एससी की उपाधि प्राप्त करने के बाद वे कश्मीर लौटे तो उन्हें अध्यापक की नौकरी दी गयी। परंतु कुछ ही समय बाद उन्हें लगा कि वे नौकरी करने के लिये नहीं राजनीति के लिये बने हैं तो उन्होंने इसी दिशा में कार्य करना शुरू किया। अपनी लाहौर यात्राओं के दौरान वे मुस्लिम कान्फ्रेंस के चौधरी गुलाम अब्बास और इब्राहीम खान जैसे नेताओं के संपर्क में आये। मीरपुर और पुंछ में भी इन नेताओं का प्रभाव था। मुस्लिम कान्फ्रेंस जम्मू में भी सक्रिय थी और इसे उस क्षेत्र से भी समर्थन मिलता था जिसे आज पाक अधिकृत कश्मीर कहा जाता है। शेख अब्दुल्ला मुस्लिम कान्फ्रेंस में शामिल हो गये।

1924 के आसपास लाहौर छात्र संगठन ने फैसला किया कि मुस्लिम कान्फ्रेंस की दो इकाइयां होनी चाहिए–एक कश्मीर घाटी में और दूसरी जम्मू में। संगठन की उन बैठकों में ही कश्मीर में मुस्लिम कान्फ्रेंस के प्रभारी हेतु शेख अब्दुल्ला का नाम उभरा। उनमें इस कार्य के लिये अपेक्षित पर्याप्त योग्यताएं थीं।

तो 1924–25 में कश्मीर घाटी में मुस्लिम कांन्फ्रेंस के नेता के रूप में शेख अब्दुल्ला ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत की। श्रीनगर में मीरवाइज के घर से उनका निकट संपर्क बना रहा क्योंकि वह राजनितिक गतिविधियों का गढ़ था। मुस्लिम कान्फ्रेंस जो एक तरह से शेख अब्दुल्ला का ही संगठन था, की गतिविधियां भी वहीं से संचालित होती थीं। यहां तक कि श्रीनगर में उस स्टडी सेन्टर को चलाने के लिये भी मीरवाइज मंजिल अर्थात मीरवाइज के घर की पूरी हिमायत और सहायता उपलब्ध थी। इस स्टडी सेन्टर में अक्सर राज्य के राजनीतिक मामलों को लेकर बहस हुआ करती थी।

शेख अब्दुल्ला की समझ में आ गया था कि लोक–सम्पर्क ही लोक–आंदोलन का मूलाधार होता है। इसलिये उन्होंने उस राजनीतिक विचारधारा के प्रसार के लिये भारी लोकसंपर्क अभियान चलाया जो एक जिम्मेदार सरकार के साथ–साथ राज्य में मुसलमानों के अधिकारों की मांग भी करती थी। शेख अब्दुल्ला जनता की नब्ज पकड़ने की कला में दक्ष थे। उन्होंने जम्मू और कश्मीर, दोनों ही क्षेत्रों के बड़े किसान वर्ग पर ध्यान केन्द्रित किया और सामंती व्यवस्था के अंत और खेतिहरों के अधिकारों के लिये आवाज उठाई। उन्होंने शासन व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का आरंभ नहीं किया अपितु जम्मू–कश्मीर में केवल लोकप्रिय और जिम्मेदार सरकार की मांग पर ध्यान केन्द्रित किया।

समय गुजरता गया और कश्मीर में शेख की लोकप्रियता बढ़ती चली गयी। स्थानीय अखबारों में उनके भाषणों और गतिविधियों को प्रमुखता दी जाने लगी। उन्हें पंजाब के प्रवासी कश्मीरियों से सहायता मिली और श्रीनगर में ब्रिटिश रेजिडेंसी का ध्यान भी उनकी राजनीतिक गतिविधियों की ओर गया।

1924 के आसपास लाहौर छात्र संगठन ने फैसला किया कि मुस्लिम कान्फ्रेंस की दो इकाइयां होनी चाहिए–एक कश्मीर घाटी में और दूसरी जम्मू में। संगठन की उन बैठकों में ही कश्मीर में मुस्लिम कान्फ्रेंस के प्रभारी हेतु शेख अब्दुल्ला का नाम उभरा। इस प्रकार कश्मीर घाटी में मुस्लिम कान्फ्रेंस के नेता के रूप में शेख अब्दुल्ला ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत की

## महत्वपूर्ण बदलाव

सभी जानते हैं कि मुहम्मद अली जिन्ना की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग भारतीय मुसलमानों के लिये एक अलग देश बनाने के लिये संघर्ष कर रही थी। जम्मू व कश्मीर मुस्लिम कान्फ्रेंस (मीरपुर गुट) ने आल इण्डिया मुस्लिम लीग से संपर्क बना लिया था और वह जम्मू–व–कश्मीर में लीग के ही एजेंडा को चला रही थी। यही वह समय था जब मुस्लिम कान्फ्रेंस के मीरपुर गुट के चौधरी अब्बास, इब्राहीम खान, कयूम खान और अन्य लोग कश्मीर पर नजर

रखे हुये थे और महाराजा की शान को अस्थिर करने में लगे हुये थे। मुस्लिम लीग का एक कट्टर कार्यकर्ता अब्दुल कदीर खान जो श्रीनगर में अंग्रेज रेजीडेंट का रसोइया बनकर रह रहा था, परन्तु वास्तव में ब्रिटिश गुप्तचर एजेंसी का वेतनभोगी था, अचानक ही सड़कों पर आकर उत्तेजक भाषण देने लग गया और श्रीनगर में पत्थर मस्जिद के मैदान पर उसने एक विशाल जनसमूह को संबोधित किया। अपने भाषण में उसने महाराजा और हिन्दुओं के विरुद्ध पर्याप्त जहर उगला और महाराजा के खिलाफ बगावत करने के लिये मुसलमानों को भड़काया। उसने कहा कि मुसलमान काफिरों के गुलाम बनकर नहीं जी सकते और उन्हें इस शिकंजे से निकलने के लिये कुछ करना चाहिये। कदीर के इस भाषण से मुस्लिम लीग के हथकंडों की याद आती है। कदीर को गिरफ्तार करके श्रीनगर की सेन्ट्रल जेल में कैद कर लिया गया और उसके खिलाफ राजद्रोह का मुकदमा दायर कर दिया गया।

31 अगस्त, 1931 को कदीर खान के राजद्रोह के मुकदमे की सुनवाई के लिये अदालत बैठी। जेल के मुख्य द्वार पर भारी संख्या में नगर के मुस्लिम कार्यकर्ता जमा हो गये। इस भीड़ ने राज्य प्रशासन और मुसलमानों पर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध नारे लगाये। कदीर खान की बिना शर्त रिहाई की मांग की गयी। एक व्यक्ति मंच पर चढ़ गया और उसने अजान देना शुरू किया। अजान पूरी हो ही रही थी कि द्वार पर तैनात सुरक्षाकर्मियों ने अपने अधिकारी के आदेश से गोली चला दी। बाईस आदमी गोलीबारी के शिकार हो गये। भीड़ ने श्रीनगर की सड़कों पर इन लाशों का जुलूस निकाला और माहौल बेहद तनावपूर्ण हो गया। उत्तेजित भीड़ ने कश्मीर के प्रमुख व्यापार केन्द्र जैना कदल में कुछ पंजाबी हिन्दुओं की दुकानें लूट लीं। सांप्रदायिक तनाव बढ़ गया और इस फसाद में तीन कश्मीरी पंडितों को जानें गंवानी पड़ीं। स्थिति को संभालने के लिये डोगरा सरकार ने सेना की गश्त करवा दी। राज्य के सुरक्षा बलों की सहायता के लिये ब्रिटिश रेजीमेन्ट के पांच सौ सैनिक भी बुला लिये गये। ब्रिटिश अधिकारियों के दबाव में महाराजा ने घटना की जांच के आदेश दे दिये और ग्लान्सी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट सरकार को दे दी। उपनिवेशवादी सरकार ने महाराजा को समझाया कि वे मुस्लिम समुदाय की शिकायतें दूर करें, उन्हें सरकार में प्रतिनिधित्व दें और उनकी शिक्षा सुविधाओं को बेहतर बनाएं। सरकार ने वादा किया कि इन क्षेत्रों में यथासंभव सुधार किये जाएंगे।

## अपने–अपने रास्ते

जम्मू–व–कश्मीर की एक विशिष्ट जनसांख्यिकीय संरचना थी। राज्य में कुछ इलाके हिन्दू बहुल थे तो कुछ मुस्लिम बहुल। ये दोनों समुदाय एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र में फैले थे और ऐसे इलाकों में रहते थे जिन तक पहुंचना टेढ़ी खीर था। इन बातों के साथ ही कश्मीर की सिविल सोसायटी के लंबे इतिहास को ध्यान में रखते हुये शेख का यह विश्वास मजबूत होता जा रहा था कि मुस्लिम कान्फ्रेंस की मीरपुर इकाई से कुछ नहीं होने वाला। ऊपर से मुस्लिम लीग जिस हेकड़ी से कश्मीर को हाथ में लेने की सोच रही थी वह शेख को आग में हाथ डालने के बराबर लग रहा था। शेख में प्रबल अहंकार था।

इन सभी बातों के आधार पर 1939 में उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय किया। वे मुस्लिम कान्फ्रेंस से अलग हो गये और ऑल जम्मू एण्ड कश्मीर नेश्नल कान्फ्रेंस के नाम से एक नये राजनीतिक दल के गठन की घोषणा की। मुस्लिम कान्फ्रेंस में उनके सहयोगी उपाध्यक्ष बख्शी गुलाम मोहम्मद, महासचिव मलाना मसी और दूसरी पंक्ति के गुलाम मोहम्मद सादिक, मीर कासिम और अन्य सदस्यों को उन्होंने मुस्लिम कान्फ्रेंस से अलग होने और धर्मनिरपेक्ष पद्धति का निर्वाह करने के लिये राजी कर लिया था। ये सब उनके साथ हो लिये और नेशनल कान्फ्रेंस में उनके निकटतम सहयोगी बन गये।

जम्मू में स्थित संगठन मुस्लिम कान्फ्रेंस से शेख का अलग होना कश्मीर के इतिहास में मील का पत्थर है। यह जिन्ना के द्विराष्ट्रवादी सिद्धांत का स्पष्ट नकार था और वह भी विरोधी हिन्दुओं की तरफ से नहीं अपितु मुस्लिम बहुल राज्य जम्मू व कश्मीर के कुछ सुलझे हुये मुसलमानों ने किया था। यह जिन्ना के लिये पहला बहुत बड़ा धक्का था।

## कश्मीर में वामपंथ

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक तक सोवियत संघ ने अपनी मार्क्सवादी–लेनिनवादी विचारधारा को सुदृढ़ और व्यापक बना लिया था। मध्य एशिया को वृहद् सोवियत संघ में शामिल कर लिया गया था और पूर्वी देशों के निवासियों को लेनिन का सम्बोधन एक ऐसी ऐतिहासिक घोषणा थी जिसने पूर्वी देशों के मुसलमानों के प्रति वामपंथ के संभावित व्यवहार को लेकर बुने गये संदेहों के मकड़जाल को ध्वस्त कर दिया। स्थितियों के पुनरावलोकन से पता चलता है कि जितना मार्क्सवाद में बताया गया है, पूर्व के देशों के मुसलमानों को उससे अधिक कुछ दिया ही नहीं जा सकता था। भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग, उसमें से भी इस वर्ग का वह हिस्सा जो भारत को औपनिवेशिक शासन से मुक्त कराना चाहता था, मार्क्स और लेनिन जैसे प्रगतिशील विचारकों के प्रभाव को स्वीकार कर चुका था।

गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष के चरम बिन्दु पर थी और समाजवाद के ध्वजवाहक कांग्रेस के संघर्ष की पूरी जानकारी रखते थे। कांग्रेस नेतृत्व, विशेषकर नेहरू की समाजवाद के साथ वैचारिक निकटता जगजाहिर थी। कांग्रेस ने भारतीय मुसलमान बुद्धिजीवियों के

**उपनिवेशवादी सरकार ने महाराजा को समझाया कि वे मुस्लिम समुदाय की शिकायतें दूर करें, उन्हें सरकार में प्रतिनिधित्व दें और उनकी शिक्षा सुविधाओं को बेहतर बनाएं। सरकार ने वादा किया कि इन क्षेत्रों में यथासंभव सुधार किये जाएंगे**

लिये एक विशेष प्रकोष्ठ का गठन किया जिसका उद्देश्य मुसलमान बुद्धिजीवियों में समाजवादी आदर्शों का प्रचार करना था। इसके अंतर्गत इस विचार पर बल दिया गया कि इस्लाम में सामाजिक अर्थतंत्र की परिकल्पना मार्क्सवाद–लेनिनवाद के आदर्शों के अत्यंत निकट है। इस शाखा का कार्यालय नेहरू ने इलाहाबाद में अपने ही घर आनंद भवन में खोला। राजस्थान के एक खुले विचारों के मुस्लिम बुद्धिजीवी अशरफ अली इस प्रकोष्ठ के प्रभारी बनाए गये। अशरफ अली को कश्मीर मामलों का विशेष ध्यान रखने को कहा गया। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कश्मीरी छात्रों से संपर्क किया, उन्हें समाजवादी दर्शन में ढाला। यहां तक कि नेहरू के निजी पुस्तकालय, जिसके वे पुस्तकालयाध्यक्ष थे, की सुविधाएं भी उन छात्रों को दी ताकि वे अध्ययन कर सकें। इस प्रकोष्ठ को कश्मीर में समाजवादी विचारधारा के आधारस्तंभ के रूप में देखा जाना चाहिये। सुश्री महमूदा अहमद, गुलाम मोहम्मद सादिक, एन.एन. रैणा, राजपुरी, डी.पी.धर, द्वारिकानाथ काचरू (नेहरू के निजी सचिव भी रहे), और मोती लाल मिसरी इसी पाठशाला के छात्र रहे।

शेख अब्दुल्ला तत्काल समझ गये कि कश्मीर के स्वाधीनता आंदोलन में इस विचारधारा का महत्व क्या और सार्थकता क्या हो सकती है। गरीबी से जकड़ा हुआ कश्मीर तब तक अपनी दयनीय स्थिति से नहीं निकल सकता था जब तक किसानों का उद्धार न किया जाता और श्रमिक वर्ग को अवसर न मिल पाता। उन्होंने वामपंथियों को हाथों हाथ लिया और नेशनल कान्फ्रेंस से उनके साथ मेलजोल को प्रोत्साहित किया। एक समय तो दोनों इतने निकट आ गये कि निरंजन नाथ रैणा जैसे घोर मार्क्सवादी को जिला श्रीनगर की नेशनल कान्फ्रेंस कमेटी का संयुक्त सचिव बनाया गया। ये वही निरंजन नाथ रैणा हैं जिन्हें नेशनल कान्फ्रेंस को वामपंथी विचारधारा में दीक्षित करने वाले विचारक के रूप में जोसेफ कोर्बेल ने रेखांकित किया है। इस शक्तिशाली वामपंथी गुट के प्रभाव में नेशनल कान्फ्रेंस ने 'नया कश्मीर' घोषणापत्र जारी किया गया जिसमें उसकी आर्थिक, सामाजिक और कृषि नीति की वृहद् रूपरेखा को स्पष्ट किया गया था। लंदन निवासी फेबियन सुधारवादी समाजवादी बी.पी.एल बेदी और उनकी धर्मपत्नी फ्रेडा बेदी (आइरिश नागरिक) का उल्लेख 'नया कश्मीर' के रचयिताओं के रूप में किया गया। यहां यह बता देना आवश्यक है कि श्री निरंजन नाथ रैणा ने एक बार स्वयं इस लेखक को बताया था कि नया कश्मीर घोषणापत्र उनका मौलिक विचार था और उसके वैचारिक सार तत्त्व को उन्होंने उज्बेकिस्तान के सोवियत गणराज्य के संविधान से ग्रहण किया था। कई वर्षों बाद, जब मैं कश्मीर विश्वविद्यालय के मध्य एशिया अध्ययन केन्द्र में कार्यरत था और मध्य एशिया की यात्रा की तैयारी कर रहा था, तो श्री रैणा ने मुझे एक पुस्तक 'डॉन ओवर समरकन्द' पढ़ने को कहा। यह पुस्तक अत्यंत महत्वपूर्ण है और विस्तार से स्पष्ट करती है कि सोवियत संघ की सरकार ने मध्य एशिया के आधुनिकीकरण और शोषित लोगों को उनका अधिकार दिलाने के लिये क्या कुछ किया।

**शेख अब्दुल्ला लाहौर जा रहे थे और लाहौर स्टेशन पर ही उनकी मुलाकात नेहरू से हो गयी। नेहरू के आग्रह पर शेख भी उनके साथ हो लिये और उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत पहुंचे। यह उनकी ऐतिहासिक मुलाकात थी जिसकी परिणति उनकी प्रगाढ़ मित्रता में हुई**

*पं. नेहरू के साथ शेख अब्दुल्ला*

## लगाम शेख के हाथ में

1942 में सीमांत गांधी गफ्फार खान द्वारा आयोजित खुदाई खिदमतगारों की एक रैली में भाग लेने के लिये नेहरू उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रांत जा रहे थे। शेख अब्दुल्ला लाहौर जा रहे थे और लाहौर स्टेशन पर ही उनकी मुलाकात नेहरू से हो गयी। नेहरू के आग्रह पर शेख भी उनके साथ हो लिये और उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रांत पहुंचे। यह उनकी ऐतिहासिक मुलाकात थी जिसकी परिणति उनकी प्रगाढ़ मित्रता में हुई। नृशंस और लड़ाके पठानों को अहिंसा और धर्मनिरपेक्षता के लिये प्रतिबद्ध देखकर, शेख की व्यक्तिगत विचारधारा बलवती होती चली गई। अपनी राजनीति की दिशा में उनका विश्वास दृढ़ होता चला गया। कुल

मिलाकर कांग्रेस और विशेषकर नेहरू के साथ शेख की प्रगाढ़ता का परिणाम यह हुआ कि शेख ने स्वीकार कर लिया कि नेशनल कान्फ्रेंस और कांग्रेस की विचारधाराओं में साम्य है। और नेहरू थे कि कश्मीर के बारे में शेख जो कुछ भी कहते वह पत्थर की लकीर हो जाता। नेहरू ने शेख पर जो घोर अंधविश्वास किया उसके चलते उन्होंने कितनी गलतियां कीं यह इतिहासकार ही बता सकते हैं और अंततः उन्हें भी यही कहना पड़ेगा कि नेहरू की हठधर्मिता शेख के मनमौजी स्वभाव के ठीक विपरीत थी।

## ऐतिहासिक क्षण

भारत के विभाजन से महीनों पहले, कराची, नई दिल्ली और श्रीनगर में गुप्त वार्ताएं हो रही थीं कि 15 अगस्त को भारत की स्वतंत्रता की घोषणा के बाद कश्मीर की स्थिति क्या होगी? स्वतंत्रता से महीनों पहले कराची ने कश्मीर में सैनिक घुसपैठ के बारे में सोच रखा था। नई दिल्ली शेख को अपने सांचे में ढालने की तैयारी कर रही थी। श्रीनगर में महाराजा असमंजस में थे कि क्या करें, तो शेख अब्दुल्ला जिन्ना के साथ एक ऐसे फार्मूले को लेकर गुप्त बातचीत में लगे हुये थे जिसके अनुसार यदि शेख और उनकी पार्टी पाकिस्तान में शामिल होने का निर्णय करते तो कश्मीर को एक निश्चित मात्रा में स्वायत्तता प्राप्त होती। शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर के पाकिस्तान में स्वायत्तता आधारित विलय की संभावनाओं को परखने के लिये अपने दूतों को लाहौर और कराची तक दौड़ाया। इससे स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस के साथ वैचारिक समानता की जो घोषणा शेख ने जोर–शोर से की थी वह या तो ढोंग थी या असली चेहरे को ढकने वाला एक मुखौटा। यदि राज्य को स्वायत्त घोषित कर इसकी बागड़ोर शेख के हाथों में दे दी जाती तो उन्हें द्विराष्ट्रवादियों से हाथ मिलाने में भी संकोच न होता। परन्तु जिन्ना भी अपने ढंग का एक ही था। उसने यह कहकर हाथ फेर लिया कि 'कश्मीर तो मेरी जेब में है।'

कराची, लाहौर और पेशावर कश्मीर में कबाइली घुसपैठ की योजना बनाने में व्यस्त थे। श्रीनगर या दिल्ली में तो किसी को

**नेहरू पर शेख को जेल से छुड़वाने का जुनून सवार था। उन्होंने इसके लिये महाराजा पर दबाव डाला। इसके लिये गांधी जी की मूक सहमति थी। महाराजा ने सरदार पटेल और यहां तक कि गांधी जी से भी अनेक प्रार्थनाएं कीं कि उन पर दबाव न डाला जाए**

कश्मीर में घुसपैठ की तैयारियों की भनक तक नहीं थी परन्तु ब्रिटिश सैनिक और प्रशासनिक अधिकारी, जिनमें उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रांत के गवर्नर कनिंघम भी थे, इससे पूर्णतः अनभिज्ञ भी नहीं थे।

नेहरू पर शेख को जेल से छुड़वाने का जुनून सवार था। उन्होंने इसके लिये महाराजा पर दबाव डाला। इसके लिये गांधी जी की मूक सहमति थी। महाराजा ने सरदार पटेल और यहां तक कि गांधी जी से भी अनेक प्रार्थनाएं कीं कि उनपर दबाव न डाला जाए क्योंकि वे सभी संबद्ध पक्षों से कश्मीर के भविष्य को लेकर एक सौहार्दपूर्ण सहमति बनाने की दिशा में काफी आगे बढ़ चुके हैं। उन्होंने माउंटबैटन को भी इस तथ्य से अवगत करा दिया था। माउंटबैटन ने नेहरू को सुझा दिया था कि वे कश्मीर के अपने प्रस्तावित दौरे पर न जाएं और महाराजा को समझौता करने की स्वतंत्रता दें। नेहरू और गांधी दोनों को ही शंका थी कि कहीं महाराजा पाकिस्तान को कुछ रियायतें न दे दें और इसीलिये उन्होंने कश्मीर में संकट पैदा कर दिया। महाराजा की अनेक प्रार्थनाओं और गवर्नर जनरल की सलाह को ताक पर रखकर गांधी जून 1947 में कश्मीर चले गये। महाराजा के पास अपने बचाव में कहने के लिये बहुत कुछ था परंतु गांधी सुनने को तैयार ही नहीं थे। उन्होंने तो महारानी के हाथ से दूध का गिलास तक न लिया। उनका तर्क था कि वे किसी भी स्थिति में उस महाराजा के घर का दूध नहीं पियेंगे जो अपनी प्रजा पर अत्याचार करता हो। यदि गांधी को इस बात का जरा सा भी अहसास होता कि राज्य में महाराजा हरि सिंह ने कितने छोटे–बडे सुधार किये थे और वे अन्य नवाबों और राजाओं के मुकाबले कितने प्रतिबद्ध राष्ट्रवादी थे तो वे महाराजा को इस तरह से आड़े हाथों न लेते। नेहरू को तो अंग्रेज शासकों ने अनेक जेलयात्राएं करायीं थीं जिसके पुरस्कार स्वरूप उन्होंने माउंटबैटन को गवर्नर जनरल बना दिया। महाराजा ने तो उन्हें कुआला कस्बे में एक दो घंटे के लिये ही हिरासत में रखा था परंतु इस घटना से नेहरू के दिल में बदले की भावना इस सीमा तक घर कर गई कि उन्होंने न केवल किये गये वादे तोड़े अपितु महाराजा को गद्दी से हटाकर राज्य से निष्कासित भी करवा दिया। अकेलेपन और निराशा में महाराजा की मृत्यु हुई जबकि अपने जिगरी दोस्त को नेहरू ने कश्मीर का सुल्तान बना दिया। इस तरह से कश्मीर एक निरंकुश शासन से दूसरे निरंकुश शासन के अंतर्गत आ गया जिसके माथे पर धर्मनिरपेक्ष जनतंत्र का ठप्पा लगा हुआ था।

## अंतिम क्षण

8 अक्तूबर 1947 को शेख का अंतिम दूत भी जिन्ना के यहां से खाली हाथ श्रीनगर लौटा। 22 अक्तूबर से 26 अक्तूबर तक कश्मीर कबाइली हमला झेल रहा था तो इस बीच शेख अब्दुल्ला कहां थे किसी को नहीं पता। सुनने में आता है कि इस बीच वे अपने परिवार को सुरक्षित रखने के लिये उसे इन्दौर भेजने की व्यवस्था करने में लगे हुये थे। 26 अक्तूबर को जब वे हजूरीबाग में एक विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुये यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे कि भारत से सहायता मांगना ही अब एकमात्र विकल्प रह गया है तो पाकिस्तानी झंडे लिये हुये, 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाती हुई लगभग दो हजार लोगों की भीड़ उनके सामने से गुजरी। यह पाकिस्तान समर्थक भीड़ मुस्लिम कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं की थी जिसका नेतृत्व श्रीनगर के बटमालू क्षेत्र का एक कट्टर पाकिस्तान समर्थक मोहुउद्दीन कर्रा कर रहा था। इस रैली के तुरंत बाद शेख हवाई जहाज से दिल्ली चले गये।

## तीन मूर्ति का वरदान

नेहरू को सैनिक सहायता देने के लिये राजी करने के अंतिम प्रयत्न के रूप में, जम्मू–व–कश्मीर के प्रधान–मंत्री मेहरचंद महाजन ने नेहरू से कहा कि महाराजा की ओर से उन्हें निर्देश है कि यदि भारत सरकार महाराजा के इस आपात संदेश को ठुकरा देती है तो वे हवाई जहाज से सीधे कराची जाएंगे और जिन्ना से मिलकर कश्मीर के मासूम लोगों के संहार को रोकने का कोई रास्ता निकालेंगे। यह सुनते ही जैसी की उनकी आदत थी, नेहरू गुस्से में उबल पड़े और महाजन पर चिल्ला दिये, "मेरी बला से जहन्नुम में जाओ..."। तेज आवाज सुनकर साथ के ही कमरे में प्रतीक्षा कर रहे शेख अब्दुल्ला बाहर आ गये और उन्होंने नेहरू से शांत रहकर महाजन की बात सुनने की प्रार्थना की क्योंकि मुद्दा बहुत ही नाजुक था।

उसी दिन तीन सेनाप्रमुखों के साथ भी नेहरू की बैठक भी हुई। तीनों अंग्रेज थे और उन्होंने तर्कों की बौछार करके नेहरू को चुप करा दिया कि उस समय कश्मीर में सेना भेजना असंभव था। वे कश्मीर को बचाना ही नहीं चाहते थे और बैठक की अध्यक्षता कर रहा माउंटबैटन भी न इधर का था न उधर का। एक घंटे की इस बैठक में गृहमंत्री सरदार पटेल चुपचाप बैठे सब सुन रहे थे। अंततः उन्होंने नेहरू से पूछा, "आप कश्मीर चाहते हैं कि नहीं?" उत्तर सुने बिना ही वे जनरल बूचर की तरफ मुड़े और बोले, " सड़क ठीक है या नहीं, कड़ाके की ठण्ड है या जो कुछ भी है, सुबह से पहले मुझे भारतीय सेना श्रीनगर में चाहिये...।" उसी शाम जनरल बूचर न त्यागपत्र दे दिया और जनरल करियप्पा सेनाध्यक्ष बने। अगले दिन सुबह से पहले सिक्ख लाइट इन्फेन्ट्री की दो टुकडियां श्रीनगर की दामोदर वुडर हवाई पट्टी पर उतरीं। उस सुबह एक व्यक्ति था जो खुशी से फूला नहीं समा रहा था और वह था शेख मोहम्मद अब्दुल्ला। लेकिन उसने इस खुशी की भनक भी किसी को लगने नहीं दी।

## लेक सक्सेस और उसके बाद

अमरीका में न्यूयार्क के पास के ही एक गांव लेक सक्सेस में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की एक बैठक हुई जिसमें कश्मीर से कबाइलियों को निकालने के लिये सुरक्षा परिषद के हस्तक्षेप की मांग संबंधी भारत की याचिका पर विचार हुआ। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के एक सदस्य के रूप में शेख अब्दुल्ला समझ नहीं पा रहे थे कि नेहरू इतने नौसिखिये कैसे हो सकते हैं कि सुरक्षा परिषद से न्याय की भीख मांगने लगें। यद्यपि अंततः रूस के प्रतिनिधि जैकब मलिक ने गोपालस्वामी आयंगर की नैया पार लगा दी परंतु शेख का मन बदल गया। उन्हें लगा कि ऐसी कमजोर और ढुलमुल नीति के चलते भारत कुछ नहीं कर सकता। उन्होंने पाला बदलने की सोची। ऐसी स्थिति में अमरीकी एजेंसियां शेख को कश्मीर की सल्तनत का ताज पहन लेने का सपना कैसे न दिखातीं! यह तो उनके लिये सुनहरा मौका था।

संविधान सभा के सत्र आरंभ हुये तो शेख ने अपना असली रंग दिखाना शुरू कर दिया। अपने संरक्षक से उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि भारतीय संविधान में जम्मू व कश्मीर को विशेष दर्जा दिये जाने की एक धारा नहीं जोड़ी जाती है तो वे भारत का साथ छोड़ देंगे। जब जम्मू–व–कश्मीर विधान परिषद के सदस्य पंडित शिव नारायण फोतेदार ने कहा कि एक ऐसी ही धारा जम्मू–व–कश्मीर के संविधान में भी जोड़ी जानी चाहिए जिससे कश्मीर के हिन्दू अल्पसंख्यकों के हित सुरक्षित रह सकें, तो नेहरू ने उन्हें सांप्रदायिक घोषित कर दिया। नेहरू को जिस सांप्रदायिकता में अपना हित नहीं दिखता था उससे वे घृणा करते थे और जो सांप्रदायिकता उनके व्यक्तिगत हित को साधती थी उसे बाहों में भर लेते थे। फिर भी कांग्रेसियों ने उन्हें भारतीय धर्मनिरपेक्षता की प्रतिमूर्ति के रूप में सामने रखा।

**संविधान सभा के सत्र आरंभ हुये तो शेख ने अपना असली रंग दिखाना शुरू कर दिया। अपने संरक्षक से उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि भारतीय संविधान में जम्मू व कश्मीर को विशेष दर्जा दिये जाने की एक धारा नहीं जोड़ी जाती है तो वे भारत का साथ छोड़ देंगे**

## पटाक्षेप

भारतीय संविधान में धारा 370 को शामिल किया गया तो शेख अब्दुल्ला को लगा कि कश्मीर की सल्तनत अब उनकी हो गयी। उनके तेवर बिल्कुल बदल गये और 1953 में जम्मू में रणवीर सिंह पुरा के अपने भाषण में उन्होंने भारत से अलग हो जाने की धमकी दे डाली। उसी बसन्त को उन्होंने अमरीकी राजदूत एडलइ स्टीवन्सन से श्रीनगर में तीन गुप्त बैठकें की थीं। इस नाटक का पटाक्षेप तब हुआ जब 8–9 अगस्त 1953 की रात में शेख को बर्खास्त करके गिरफ्तार कर लिया गया।

अगले एक दशक तक शेख अब्दुल्ला राजनीति के केन्द्र से बाहर रहे। निर्वासन की इस अवधि के दौरान नेहरू ने अपने मित्र के घर–परिवार का ध्यान रखा जबकि शेख ने अपने विश्वासपात्र मिर्जा मोहम्मद अफजल बेग के माध्यम से कश्मीर में महाजे–रायशुमारी (प्लेबिसाइट फ्रंट), अर्थात जनमत संग्रह की मांग करने वाले मोर्चे की शुरुआत करवाई। यही महाजे–रायशुमारी या प्लेबिसाइट फ्रंट पहले तो जे के एल एफ और फिर हिज्बुल मुजाहिदीन के साथ मिलकर 1989 से भारत विरोधी अलगाववादी आंदोलन चला रहा है।

मैं 1978 में बिहामा, गांदरबल में मौलाना मसूदी से मिला था। उन दिनों नेशनल कान्फ्रेंस के गुर्गों ने मीरवाइज फारुख के विरुद्ध प्रदर्शन किये थे और उनके घर पर पथराव भी किया था। उन दिनों हर जगह इसी बारे में बात हो रही थी और हमने भी यही विषय छेड़ दिया। मैंने उत्सुकतावश मौलाना मसूदी से पूछा कि शेख की गिरफ्तारी के बाद नेशनल कान्फ्रेंस ने किस तरह से काम किया था? गिरफ्तारी के बारे में नेहरू से बात हुई थी या नहीं? तब मौलाना बोले थे, "हमने

मुजाहिद मंजिल, श्रीनगर में एक विशाल रैली की थी। वक्ताओं ने कहा कि इस तरह से मनमाने ढंग से शेख की गिरफ्तारी की हम निन्दा करते हैं। निन्दा मैंने भी की थी। तभी श्रोताओं में से एक युवक उठा और चिल्लाया, "भारत से लड़ने के लिये बंदूक उठानी होगी।" मुझे बुरा लगा और मैंने उसे दफा हो जाने के लिये कहा। वह युवक डॉ. फारुख अब्दुल्ला था। कुछ दिनों बाद मैं दिल्ली चला गया और नेहरू से उनके अध्ययन कक्ष में मिला। मैंने पूछा कि उन्होंने शेख के बारे में जल्दबाजी में फैसला क्यों किया? इसके नतीजों के बारे में क्यों नहीं सोचा? पंडित जी ने बड़े सब्र से मेरी बात सुनी और सर झुका लिया। काफी देर तक कुछ नहीं बोले। और जब उन्होंने सर उठाया तो उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे। उन्होंने रुंधे गले से कहा, "मौलाना साहब! शेख अब्दुल्ला ने मेरी पीठ में छुरा भोंका है!" इन सभी बातों के बाद मौलाना मसूदी ने जैसे कोई रहस्य खोलते हुये कहा, "यह थी शेख अब्दुल्ला की असलियत!" बहुत कम लोग जानते हैं कि एक बार शेख ने मिस्र के राष्ट्रपति नासिर को यह विनती करते हुये पत्र लिखा था कि वे नेहरू को समझाएं कि कश्मीर का विभाजन सांप्रदायिक आधार पर किया जाए। यह पत्र पंडित ऋषिदेव लिखित "इन्साइट्स इन्टु कन्टेम्पोरेरी पॉलिटिक्स ऑफ कश्मीर' के परिशिष्ट में संकलित है।

मई 1964 में अपनी मृत्यु से एक सप्ताह पहले नेहरू ने शेख अब्दुल्ला को अयूब खान के पास यह प्रस्ताव लेकर भेजा कि भारत, पाकिस्तान और कश्मीर का एक परिसंघ बनाया जाये। यह शेख के दिमाग की उपज थी। अयूब खान ने भाव नहीं दिया तो शेख पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के नेतृत्व को आजमाने मुजफ्फराबाद चले गये। इससे पहले कि कोई कुछ जान पाता, नेहरू की मृत्यु हो गयी और शेख तुरंत ही दिल्ली लौट आये।

## अंततः

नेहरू के गुजर जाने के बाद नई दिल्ली में शेख का आधार ही समाप्त हो गया। 1972 के युद्ध के परिणामों से शेख को

*मालवा संघ के गठन हेतु उप प्रधानमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने मध्य भारत के राजाओं की एक बैठक 20 अप्रैल 1948 को नई दिल्ली में आयोजित की। इस दुर्लभ चित्र में कश्मीर के महाराजा हरि सिंह श्री पटेल के साथ। ( साभार– kashmirlife.net)*

धक्का लगा और वे अत्यंत निराश हो गये। परिस्थितियों के साथ समझौता करने के सिवा कोई चारा नहीं था। उन्होंने इंदिरा गांधी की ओर हाथ बढ़ाया। इंदिरा ने नियम कानून को ताक पर रखकर ऐसा जोड़–तोड़ किया कि 1975 में सत्ता फिर से शेख को सौंप दी। कश्मीर के मुख्य मंत्री के रूप में इस दूसरी पारी में उनका योगदान यह था कि उन्होंने कश्मीर में जमाते–इस्लामी के साथ जीवन भर के विवाद को भुला दिया और घाटी में सक्रिय सऊदी गुप्तचर संगठनों के साथ संपर्क स्थापित किया।

समूचा श्रीनगर शहर और गांवों से लाखों लोग शेख अब्दुल्ला की शवयात्रा में उमड़ पड़े। विश्व इतिहास में इससे बड़ी शवयात्रा केवल मिस्र के कर्नल नासिर की थी। शेख को डल झील के तट पर हजरतबल मस्जिद के पास ही दफनाया गया। स्थापित राजकीय प्रोटोकॉल को तोड़ते हुये भारत के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री भी अंतिम संस्कार में शामिल होने के लिये श्रीनगर पहुंचे। यह 1982 का वर्ष था। आठ वर्ष बाद जब पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद की शुरुआत कश्मीर में हुई तो कट्टरपंथ दिमागों में ऐसा भर गया कि असंख्य कश्मीरी युवकों ने उस व्यक्ति को कब्र से बाहर निकालकर अपमानित और अपवित्र करने का प्रयत्न किया जो कभी उनका महानायक रहा था। कश्मीरी युवकों के इस ध्वंसात्मक अभियान को भारतीय सेना के वीर जवानों ने असफल कर दिया। तब से आज तक भारतीय सेना शेख की कब्र पर दिन रात चौकसी करती रहती है। आजादी–आजादी चिल्लाने वाली श्रीनगर शहर की नारेबाज भीड़ का वास्तविक चेहरा यही है। ■

*संपर्क - 9469650591*
*knp627@gmail.com*

# डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी

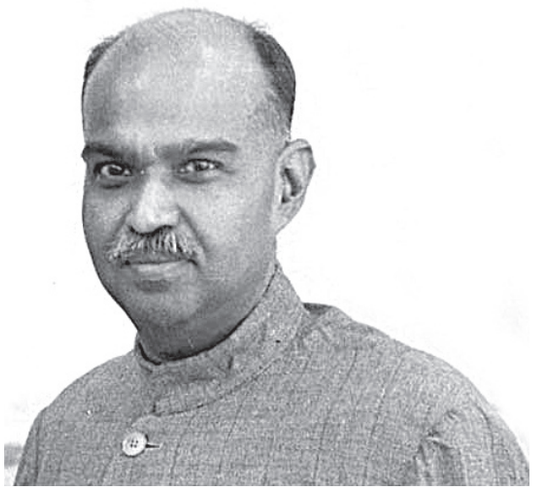

बाघन बरस के छोटे से जीवन में ही डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने दूसरों से बहुत अधिक उपलब्धियां प्राप्त कर ली थीं। भारतीय जनसंघ की स्थापना करना उनका सर्वाधिक महत्पूर्ण ऐतिहासिक कार्य था। यही भारतीय जनसंघ आज की भारतीय जनता पार्टी का अग्रदूत था। यह एक ऐसी ऐतिहासिक पहल थी जो आगे जाकर भारतीय राजनीति की धारा को ही बदलने वाली थी। यह एक ऐसा उद्यम था जिससे उनकी दूरदर्शिता का पता चलता है और जिसमें उन्होंने अपना सर्वस्व लगा दिया।

अपने समय के राजनेताओं में डॉ. मुखर्जी संभवतः सबसे छोटी आयु के थे परन्तु आने वाले समय को सबसे स्पष्ट देखने वाले ऐसे द्रष्टाओं में से एक थे जो भारत के राष्ट्रीय हित, उसकी एकता और अखंडता को अपनी राजनीति के केन्द्र में रखते थे। उनके अतिमानवीय और युगप्रवर्तक प्यासों से ही पश्चिम बंगाल के रूप में बंगाल का एक भाग, जिसमें कोलकाता भी आता था, भारत के साथ ही रहा। उनका यह योगदान अविस्मरणीय है। अपने निस्वार्थ प्रयत्नों से डॉ. मुखर्जी ने यह सुनिश्चित किया कि बंगाली हिन्दू सुरक्षा और गरिमा के साथ भारत के एक ऐसे भाग में रहें जिसे वे अपना कह सकें। इसमें उन्हें बंगाल के बुद्धिजीवियों और राज्य के हर श्रेणी के राजनेता का समर्थन प्राप्त हुआ।

इससे पता चला कि उन्हें व्यापक जनसमर्थन प्राप्त था, और हमेशा ही आगे की सोचते हुये वे व्यावहारिक राजनीति में विश्वास रखने वाले राजनेता के रूप में सामने आते थे। जबकि बंगाल के तत्कालीन मुख्य मंत्री हुसैन शहीद सुहरावर्दी, जिसने अगस्त 1946 में जिन्ना के डायरेक्ट एक्शन के आह्वान को कोलकाता में लागू किया, से प्रभावित शरतचन्द्र बोस जैसे नेताओं के मन में 'एकीकृत प्रभुसत्तासंपन्न बंगाल' के लड्डू फूट रहे थे। श्यामाप्रसाद जी को कोई संदेह नहीं था कि 'एकीकृत प्रभुसत्ता संपन्न बंगाल' का सपना दिखाकर बंगाली हिन्दुओं को जाल में फंसाने का षडयंत्र रचा जा रहा है और अंततः समूचे बंगाल को पाकिस्तान के हाथों में सौंप दिया जाएगा ताकि फटेहाली को रफू किया जा सके। निरंतर राजनीतिक और बौद्धिक आंदोलन से श्यामा प्रसाद जी ने हवा का रुख़ ही बदल डाला और एक तरह से पाकिस्तान का विभाजन कर दिया।

जम्मू–व–कश्मीर का भारत के साथ एकीकरण करने का प्रयास डॉ. मुखर्जी का एक और महान और अंतिम हस्तक्षेप था, जिससे वे जीवित न निकल पाए। उन्हें स्पष्ट पूर्वाभास हो गया था कि, यदि जम्मू–व–कश्मीर को हाथ से निकल जाने दिया गया तो यह अलगाववाद का गढ़ बन जाएगा और भारत की एकता और अखंडता को नष्ट करने वाली शक्तियां इसे अपने कुटिल षडयंत्रों की प्रयोगशाला बना लेंगी। उनके सामने यह भी स्पष्ट था कि यदि देश के एक प्रमुख क्षेत्र को ढीले ढाले ढंग से देश के साथ जोड़ा गया तो आगे जाकर इससे अलगाववाद को शह मिलेगी और पाकिस्तान के साथ अन्य शक्तियां भी अलगाववाद और उग्रपंथ की इस आग में घी डालने को प्रस्तुत रहेंगी। भारत के स्वर्णिम भविष्य में उनका अटल विश्वास था और इसलिये उन्होंने भारत के एकीकरण के संघर्ष को अपना व्यक्तिगत संघर्ष माना। उस संघर्ष और स्वतंत्र भारत की एक जेल में उनके जीवन के बलिदान ने अलगाववाद, उग्रवाद और अंततः आतंकवाद की चुनौतियों को हमारे सामने ला खड़ा किया और भारत के लोगों को समझाया कि ये चुनौतियां देश के लिये कितनी घातक हो सकती हैं।

उनके बलिदान, निर्भीकता और अद्वितीय साहस, भारत की एकता और अखंडता को लेकर सुस्पष्ट दृष्टिकोण और उस दृष्टिकोण को लेकर अडिग रहने की प्रवृत्ति से ही सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण और अमूल्य जम्मू–व–कश्मीर भारत के साथ बना हुआ है। ■

**–डॉ. अनिर्बान गांगुली**

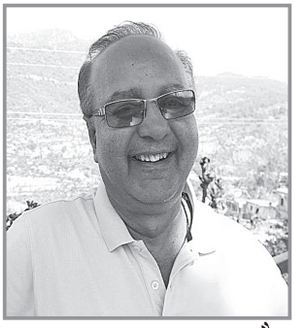

उत्पल कौल

# कश्मीर में राष्ट्रवादी प्रतिरोध

*जब मैं ,जो स्वयं जनता हूं, सीख जाऊंगा स्मृति को जीवित रखना*
*जब मैं, जो स्वयं जनता हूं, अतीत के पाठों को स्मृति में सहेजे हुये*
*विस्मृत नहीं करूंगा उसे, जिसने पिछले वर्ष छीन लिया था मेरा सबकुछ*
*सोचते हुये कि मूर्ख है क्या समझेगा–तो समूचे संसार में*
*किसी भी जुबान पर नहीं आयेगा 'जनता' का नाम*
*अवमानना की कटुता के साथ*
*या किसी भी चेहरे पर , भूल कर भी नहीं आयेगी*
*खिल्ली उड़ाने वाली, छुपी छुपी–सी हंसी।*
*–कार्ल सैंडबर्ग (1878–1967)*

पिछले 750 वर्षों का कश्मीर का इतिहास इस्लामी उत्पीड़न और प्रभुत्व के विरुद्ध कश्मीरी हिन्दुओं के संघर्ष और प्रतिरोध का इतिहास है। यह प्रतिरोध आज भी चल रहा है। कश्मीर पर इस्लामी आक्रमण के विरुद्ध पहली राष्ट्रवादी आवाज़ पंडित श्रीभट्ट की थी। कश्मीर के तत्कालीन सुल्तान ज़ैनुलाबिदीन (1420–1470) को भयंकर फोड़ा हो गया था और मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से त्रस्त होकर घाटी के अधिकांश हिन्दू घर छोड़कर भाग गये थे। एक भी वैद्य घाटी में नहीं था। जो थे वे सामने ही नहीं आते थे। सुलतान का फोड़ा ठीक करने वाला कोई नहीं था। तब डरते–डरते श्रीभट्ट सामने आये और सुलतान का फोड़ा ठीक कर दिया। पुरस्कार की बात की गई तो श्रीभट्ट ने अपने लिये कुछ नहीं मांगा। उसने हिन्दुओं पर लगे जज़िया कर को समाप्त करने का अनुरोध किया। यह श्रीभट्ट का ही प्रभाव था कि सुलतान ने हिन्दुओं को सरकारी सेवाओं में लिया। जो हिन्दू भाग गये थे या छुप गये थे, सामने आ गये और उन्हें उनका अधिकार दिया गया। अपने हित को पीछे रखकर अपने हिन्दू समुदाय के हित को प्राथमिकता देने का पंडित श्रीभट्ट का यह ऐतिहासिक कर्म कश्मीर में हिन्दुओं के राष्ट्रवादी प्रतिरोध का पहला उदाहरण है। जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में इस घटना का विवरण दिया है।

अपने हित को पीछे रखकर अपने हिन्दू समुदाय के हित को प्राथमिकता देने का पंडित श्रीभट्ट का यह ऐतिहासिक कर्म कश्मीर में हिन्दुओं के राष्ट्रवादी प्रतिरोध का पहला उदाहरण है। जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में इस घटना का विवरण दिया है

सत्रहवीं शताबदी में मुग़ल शासक औरंगज़ेब के शासनकाल में कश्मीरी हिन्दुओं को उसके गवर्नर के हाथों उत्पीड़न, अत्याचार और धर्मांतरण का सामना करना पड़ रहा था। इस असहनीय स्थिति से उबरने के लिये पंडित कृपाराम दत्त के नेतृत्व में कश्मीरी हिन्दुओं का एक समूह गुरु तेग़बहादुर के पास गया। गुरु जी ने कहा कि वे जाकर गवनर्स से यह कह दें कि यदि गुरु तेग़बहादुर इस्लाम कुबूल कर लेते हैं तो हम सब भी वैसा ही करेंगे। लाहौर के गवर्नर ज़ालिम ख़ान के माध्यम से औंगज़ेब तक यह संदेश पहुंचाया गया। उसके बाद दिल्ली में गुरु तेग़बहादुर की गिरफ़्तारी और उसके बाद उनकी शहादत के बारे में सभी जानते हैं। परंतु 1705 में चमकौर साहब के युद्ध में मुग़ल फ़ौजों के साथ युद्ध में पंडित कृपा राम दत्त ने भी शहादत दी।

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पठान शासन में बीरबल धर ने हिन्दू हितों के लिये अपने पूरे परिवार का बलिदान दिया था। उनके

# अमरनाथ वैष्णवी

अमरनाथ वैष्णवी 'जयकारा' एकमात्र सामाजिक–राजनीतिक नेता हैं जिन्होंने कश्मीर, कश्मीरी हिंदू अल्पसंख्यक और अन्य के लिए 60 वर्षों से अधिक समय तक काम किया था. अगस्त 1925 में जन्मे वैष्णवीजी ने प्रारम्भिक शिक्षा रणबीर स्कूल, जम्मू से हासिल की। परन्तु बाद में वे अपने पिता के साथ कश्मीर वापस चले गए। स्कूली शिक्षा के बाद, उन्होंने ललित कला में डिप्लोमा किया और स्कूल के शिक्षक के रूप में अपना कैरियर शुरू किया। अपने कॉलेज के दिनों के दौरान ही उन्होंने अपने विरोधी स्वरों को आवाज़ दी और भगत सिंह आंदोलन के कम्युनिकेटर के रूप में काम किया। 1948 में, वैष्णवजी ने पठानकोट में आर्य हाई स्कूल में प्रवेश लिया जहां पर उन्होंने सक्रिय रूप से आरएसएस के लिए काम किया। वैष्णवजी ने प्रजा परिषद आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई और उन्हें प्रिवेंटिव डिटेंशन अधिनियम के अंतर्गत हिरासत में मिला गया। उन पर जो आरोप लगाए गए उनमें से यह मुख्य रूप से था कि वे पठानकोट से जम्मू आंदोलन के लिए हथियारों की आपूर्ति कर रहे थे। यह स्पष्ट रूप से एक झूठा आरोप था क्योंकि पूरी दुनिया को पता था कि जम्मू आंदोलन शांतिपूर्ण था।

तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश महाजन की अध्यक्षता में सुप्रीम कोर्ट की पीठ ने वैष्णवी जी को तत्काल रिहा करने का आदेश दिया। इस काण्ड में पहली बार वैष्णवी जी जेल गए थे, हालांकि जेल का स्वाद बाद में उन्होंने बहुत चखा ।

वैष्णवजी परमेश्वरी आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण नेताओं में से एक थे। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और बाद में लद्दाख में सजा के रूप में भेजा गया। लद्दाख में, उन्होंने लद्दाख बौद्धों के हितों के लिए काम किया मगर उन्हें वहां पर भी गिरफ्तार कर लिया गया. ठाकुर बलदेव सिंह और टिक्का लाल टपिलू ने उन्हें रिहा कराने के लिए बहुत मेहनत की और उन्हें जेल से बाहर निकाल लिया। वैष्णवीजी के अंदर जो योद्धा था उसने उन्हें फिर से आपातकाल के खिलाफ 1975 में खड़ा कर दिया और उन्हें 6 महीने तक जेल भेजा गया। इसके साथ ही वह राज्य में प्रसिद्ध 'गंगा जल यात्रा' का हिस्सा थे। इसके बाद वह पंजाब में आतंकवाद के खिलाफ 1983 में बलदानी जत्थे में शामिल हो गए। 1987 में, उन्हें एएसकेपीसी का अध्यक्ष चुना गया और अगले दो दशकों तक इस पद पर बने रहे।

मैं उनकी टीम का हिस्सा बनकर बहुत ही भाग्यशाली रहा और उनके साथ मैंने कश्मीर के विभिन्न हिस्सों में सैकड़ों गांवों की यात्रा की। वे एक आजीवन सन्यासी रहे जिन्होंने समाज के कल्याण के लिए निरंतर काम किया था। कश्मीरी पंडित शरणार्थियों के पुनर्वास के पीछे भी उनकी कल्याण की ही भावना रही। 1990 के पलायन के बाद उनकी कड़ी मेहनत यह साक्ष्य है कि वह संकट में उनकी मदद करने के लिए जो भी कर सकते हैं, वे कर रहे हैं। उन्होंने भाजपा के टिकट पर श्रीनगर से संसद का चुनाव भी लड़ा था। उनके द्वारा 50 वर्षों की सेवा के कारण उन्हें यह कृतज्ञ राष्ट्र उन्हें कश्मीर के हिंदू अल्पसंख्यक के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में मान्यता देता है। ■

**–उ. कौल**

ही प्रयासों से महाराजा रणजीत सिंह ने कश्मीर पर आक्रमण किया और 600 वर्षों बाद ग़ैर–मुस्लिम शासन आया।

**1931 में जब शेख़ मोहम्मद अब्दुल्ला ने मुस्लिम कान्फ्रेंस की स्थापना की और हिन्दू महाराजा के विरुद्ध विद्रोह किया तो कश्मीर के आधुनिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया**

1931 में जब शेख़ मोहम्मद अब्दुल्ला ने मुस्लिम कान्फ्रेंस की स्थापना की और हिन्दू महाराजा के विरुद्ध विद्रोह किया तो कश्मीर के आधुनिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। यही वह समय था जब शेख़ के अनुयायियों ने सेन्ट्रल जेल पर हमला किया और सैंकड़ों हिन्दू घरों और दूकानों को लूटा और आग के हवाले कर दिया। ऐतिहासिक शीतलनाथ में कश्मीरी हिन्दू नेतृत्व ने युवक सभा की स्थापना की। कश्यप बंधु, प्रेमनाथ बज़ाज़, और शिवनारायण फोतेदार जैसे प्रमुख नेताओं ने एक सम्मिलित घोषणा करके अल्पसंख्यक समुदाय पर हुये इन हमलों और उत्पीड़न को शर्मनाक और असहनीय बताया। उन्होंने 13 जुलाई 1931 को हुई घटनाओं का एक विस्तृत विवरण तैयार किया और उसे महाराजा हरिसिंह के सामने प्रस्तुत किया। अपने साप्ताहिक अख़बार 'मार्तण्ड' के माध्यम से युवक सभा कश्मीरी हिन्दुओं की आवाज़ के रूप में बनी रही।

आर्य समाज जैसे सामाजिक–धार्मिक संगठनों ने वैदिक पाठशालाओं का पुनरुद्धार करके सराहनीय कार्य तो किया ही, साथ ही लड़कों और लड़कियों के लिये स्कूल भी खोले। कश्मीरी पंडितों ने इस उद्देश्य के लिये दिल खोलकर दान दिया। दीवान उपेन्द्रकृष्ण कौल ने रैणावारी में प्रसिद्ध डल झील के किनारे पर स्थित अपनी ज़मीन

दयानंद एंग्लो–वैदिक स्कूल के निर्माण के लिये दान कर दी। रैणावारी के प्रमुख हिन्दुओं ने महिलाओं को शिक्षित करने के लिये विश्वभारती गर्ल्स स्कूल खोला लेकिन यह अन्य स्कूलों से अलग था। यहां हिन्दू धर्म, राष्ट्रवाद और नैतिक शिक्षा पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग थे। विश्वभारती गर्ल्स स्कूल में उच्चतर माध्यमिक और कॉलेज स्तर की शिक्षा के साथ बी.एड कोर्स भी उपलब्ध था जिससे यह अपने समय का सबसे बड़ा महिला शिक्षा केन्द्र बन गया था।

कश्मीर पर मुस्लिम प्रभुत्व स्थापित होता जा रहा था तो प्रतिरोध की आवश्यकता महसूस होनी ही थी। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दर्शन अत्यंत उपयोगी साबित हुआ। 1943–44 में पंजाब और जम्मू के कुछ व्यापारियों ने कश्मीर में

**कश्मीर पर मुस्लिम प्रभुत्व स्थापित होता जा रहा था तो प्रतिरोध की आवश्यकता महसूस होनी ही थी। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दर्शन अत्यंत उपयोगी साबित हुआ**

संघ की गतिविधियों की शुरुआत की। राम मंदिर, सत्थू बर्बरशाह में पहली संघ शाखा आयोजित की गई। इसके बाद श्रीनगर जिले में अनेक शाखाएं स्थापित की गईं। ये गतिविधियां कुछ समय तक चलती रहीं परंतु प्रो. बलराज मधोक जब, डी ए वी कॉलेज श्रीनगर में इतिहास के प्रोफेसर बन कर आये तो संघ की गतिविधियों में नये उत्साह का संचार हुआ। उन्होंने गतिविधियों को अपने नियंत्रण में ले लिया और संघ का विस्तार होने लगा। श्रीनगर के अन्य क्षेत्रों काठलेश्वर, शीतलनाथ, रैणावारी और वज़ीर बाग़ में शाखाएं आयोजित होने लगीं। युवा ऊर्जा और उत्साह से भरपूर, कॉलेजों के छात्र, प्रो. मधोक के साथ थे। माखन लाल ऐमा (हरकार), ओंकार नाथ काक, देवकी प्रसाद नखासी, बृजनाथ मिया, जानकी नाथ धोबी, अवतारकृष्ण काव और सोमनाथ ओगरा इन छात्रों में प्रमुख थे।

एक पहाड़ी पर स्थित, माता ज्येष्ठा देवी के मंदिर में पहला एकत्रीकरण अर्थात संघ स्वयंसेवकों का सम्मेलन आयोजित कराया गया जिसमें लगभग 300 युवकों ने भाग लिया। श्रीनगर से तो स्वयंसेवक

# परमेश्वरी आंदोलन

1967 का परमेश्वरी एक मुस्लिम आंदोलन गुलाम नबी कांथ के द्वारा कश्मीरी हिन्दू लड़की परमेश्वरी के अपहरण और उसके बाद उसे जबरन विवाह के माध्यम से इस्लाम धर्म अपनाने को बाध्य करने की घटना के विरुद्ध कश्मीरी हिंदुओं की एक प्रतिक्रिया थी।

अगस्त 1967 में श्रीनगर में एक सहकारी सस्ते दामों की दुकान में काम करने वाली परमेश्वरी शाम तक घर नहीं लौटी। उसकी वृद्ध और विधवा माँ ने उसे हर जगह बेचैनी से खोजा, मगर उसका कहीं पता नहीं चला।

अगली सुबह हर कोई यह जानकार आश्चर्यचकित रह गया कि उसका अपहरण कर लिया गया है। चूंकि वह श्रीनगर के रैनावारी इलाके की थी तो रैनावारी के पुलिस थाने में एफआईआर लिखवाई गयी। अंत में उसका पता श्रीनगर के निचले इलाके के वाज़रपोरा इलाके में चला, जहां से उसे खानवार पुलिस स्टेशन लाया गया।

अगले दिन उसकी माँ प्रमुख कश्मीरी हिंदू कार्यकर्ता श्री अमरनाथ गंजू और श्री टी.एन.धर के साथ अपनी बेटी से पुलिस स्टेशन में मिली। पुलिस स्टेशन के एसएचओ ने उन्हें बताया कि परमेश्वरी ने उसे बताया है कि उसने गुलाम नबी कांथ के साथ शादी कर ली है। उसकी माँ को स्वाभाविक रूप से धक्का लगा और उसने अपनी बेटी से दो प्रमुख हिन्दू कार्यकर्ताओं की उपस्थिति में वापस लौट आने की अपील की और दो प्रमुख हिन्दू नेताओं की उपस्थिति में उसने वापस आने का वादा किया।

परंतु अगले ही दिन लड़की को उस मुस्लिम लड़के के साथ विवाह को कानूनी ठहराने के लिए न्यायालय में ले जाया गया। पूरा कश्मीरी हिन्दू समुदाय गुस्से से भर गया। रैनावारी के कश्मीरी हिंदू वहीं के स्थानीय शिव मंदिर में मिले और उन्होंने श्री अमरनाथ गंजू के नेतृत्व में विरोध प्रदर्शन करने का निश्चय किया। पुलिस ने जुलूस पर लाठीचार्ज किया और श्री अमरनाथ गंजू को हिरासत में लिया गया और उन्हें केन्द्रीय कारागार में भेज दिया गया। कश्मीरी हिन्दुओं ने शीतल नाथ मंदिर में इकट्ठा होने का फैसला किया, जो कश्मीरी हिंदुओं का प्रमुख राजनीतिक केंद्र हुआ करता था। हर कोना केवल एक ही नारे से भर गया "चलो शीतल नाथ"।

सरकार इस आंदोलन का कारण देखने के लिए तैयार नहीं थी और वह मुस्लिम अपहर्ता के साथ थी। इस प्रकार वह राज्य के मुस्लिम समुदाय की तरफदारी कर रही थी। शीतल नाथ मंदिर से कश्मीरी हिंदू नेताओं ने हर कश्मीरी हिंदू से यह आह्वान किया कि जब तक लड़की वापस नहीं आती तब तक हर रोज़ विरोध प्रदर्शन जारी रखा जाए। श्रीनगर में हर रोज़ पांच से सात सत्याग्रही स्वैच्छिक रूप से हिरासत में लिए गए। 4500 से अधिक कश्मीरी हिन्दुओं को दो महीने लम्बे चले विरोध प्रदर्शन के दौरान गिरफ्तार किया गया, 500 घायल हुए और सात शहीद हुए।

यह आंदोलन कश्मीर के अल्पसंख्यक समुदाय के द्वारा किया गया सबसे बड़ा आन्दोलन था। यह कश्मीरी हिंदुओं के बलात धर्मांतरण और शोषण के विरुद्ध असंतोष का प्रदर्शन था जो सदियों से उन पर होता आ रहा था। ■

**–उ. कौल**

# अमर नाथ गंजू

कश्मीर के एक उत्साही और कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता का जन्म 11 फरवरी 1931 को शिवरात्रि के पवित्र दिन, श्रीनगर में अलीकदल में हुआ था। उनका पूरा जीवन इस तथ्य का प्रमाण रहा कि शंकर भगवान ने उन्हें इस पृथ्वी पर उस अन्धकार से बचाने के लिए भेजा था जो मुस्लिम आक्रमणकारियों ने न केवल जम्मू और कश्मीर बल्कि भारत के हिंदुओं के जीवन पर अपने अत्याचार से स्थापित कर दिया था। उन्होंने बहुत ही साधारण जीवन जिया, परंतु लोग उन्हें भाग्य विधाता कह कर बुलाते हैं। 1961 में, उन्होंने सोनीपत से होम्योपैथी में डिप्लोमा किया, जिसमें उन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ, जिस प्रकार होम्योपैथी का उद्देश्य है शरीर की जैविक पद्धति में बीमारी से पैदा हुए असंतुलन को सुधारना और संतुलन को स्थापित करना, उसी प्रकार श्री गंजू ने भी अपना पूरा जीवन असामाजिक और राष्ट्रविरोधी तत्वों के द्वारा उत्पन्न असंतुलन को सही करने के लिए समर्पित कर दिया। वे 1947 में मात्र 16 वर्ष के थे, जब उन्होंने कश्मीर में कबीलाइयों के आक्रमण के पीड़ितों के लिए राहत शिविर लगवाए। 1951 से 1959 तक वह कानपुर में थे, और वे रक्षा विभाग में शस्त्र विभाग के साथ काम कर रहे थे। कानपुर में वे सक्रिय रूप से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के साथ 1960 के शुरुआती दशक तक जुड़े रहे, और उसके बाद उन्हें श्रीनगर में एनसीसी सचिवालय में स्थानांतरित किया गया। फिर उसके बाद उन्होंने श्रीनगर में संघ की शाखाओं और अन्य गतिविधियों का आयोजन करना आरंभ किया।

स्वतंत्रता के बाद, वे जम्मू और कश्मीर राज्य के इस्लामीकरण का विरोध करने के लिए प्रजा परिषद के साथ जुड़े। उन्हें हिरासत में लिया गया और पुलिस ने उन्हें बहुत ही निर्दयता से पीटा। परंतु वे इस दुनिया में कुछ कर गुजरने के लिए आए थे। वर्ष 1967 में उन्होंने बहुसंख्यक

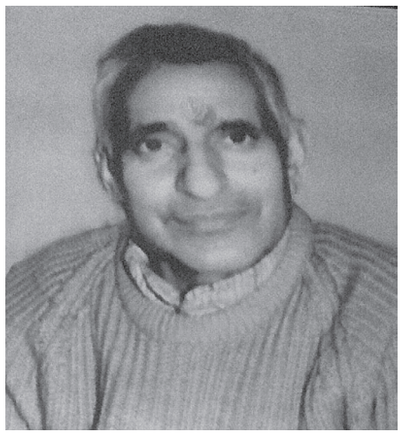

समुदाय के द्वारा और राज्य सरकार के द्वारा उनके साथ हो रहे भेदभाव के खिलाफ शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में हिंदुओं को एक करने के लिए राज्यव्यापी अभियान आरंभ किया। अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए, उन्होंने लोगों के साथ बैठकों का आयोजन करना आरंभ किया। उनके द्वारा उठाए गए क़दमों से कश्मीरी हिन्दू समुदाय में काफी जागरूकता आई।

1972 तक उन्होंने कश्मीर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का नेतृत्व किया। वर्ष 1967 में जब हिंदू लड़कियों को बलात अपहरण और जबरन विवाह का एक अभियान मुस्लिम समुदाय के कट्टरपंथियों के द्वारा शुरू किया गया, तो श्री अमर नाथ गंजू ने सरकार के खिलाफ एक आंदोलन आरम्भ किया, क्योंकि सरकार ने लड़कियों को बचाने के लिए कोई कदम नहीं उठाए थे। इस अभियान के लिए, वे कश्मीर के पूरे हिन्दू समुदाय का समर्थन हासिल करने में और राज्य के बाहर से समर्थित कार्यकर्ता पाने में सक्षम रहे थे। राज्य सरकार ने उनके समर्थन और प्रभाव को पहचाना और आंदोलन के पहले दिन ही तीन महीने के लिए केन्द्रीय कारागार में डाल दिया। उन्हें 1971 में फिर से जेल में डाल दिया गया क्योंकि उनके काम सरकार की आँखों में किरकिरी बन गये थे।

फिर आपातकाल का समय आया, वर्ष, 1975। स्वाभाविक रूप से वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें सरकार कारागार में डाल सकती थी। उन्होंने इस खतरे की आशंका को सूंघा और अपने कामों को अंजाम देने के लिए वे भूमिगत हो गए। सरकार उन्हें हिरासत में लेने में नाकाम रही। देवस्थान सुरक्षा समिति के बैनर के अंतर्गत उन्होंने वर्ष 1978 में एक धार्मिक सम्मलेन का आयोजन किया जिसमें कई विद्वानों और विचारकों ने भाग लिया। वर्ष 1980 में सेना और जनता के बीच संघर्ष के बाद, एक जांच आयोग का गठन किया गया। गंजू साहिब ने जांच आयोग के सामने यह साबित किया कि इस संघर्ष के लिए राष्ट्रविरोधी तत्व जिम्मेदार हैं, न कि सेना। वे आल स्टेट कश्मीरी पंडित सभा, शीतल नाथ, श्रीनगर के सक्रिय सदस्य थे।

न केवल राष्ट्रविरोधी तत्व बल्कि सरकारी अधिकारियों ने भी दुर्गानाग मंदिर, मार्तंड मंदिर और घाटी में कई अन्य धार्मिक स्थानों पर अतिक्रमण कर लिया था। ऐसी सभी गतिविधियों को राज्य के उच्च न्यायालय में चुनौती देते हुए, उन्होंने सरकार द्वारा जारी किए गए एसआरओ पर और अन्य सरकारी संस्थाओं की गतिविधियों पर प्रश्न किया। वह आल इंडिया कश्मीरी समाज के संस्थापक सदस्य थे और उन्होंने कोलकाता, मुम्बई और इलाहाबाद में आयोजित सम्मेलनों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। उन्होंने विश्व हिन्दू सम्मलेन में भी प्रतिभागिता की और कश्मीरी हिंदुओं की स्थिति के बारे में जागरूकता पैदा की। उन्होंने कई सामाजिक सांस्कृतिक संस्थानों की अध्यक्षता की और वे लगभग हर कश्मीरी हिंदू संस्थान के साथ जुड़े रहे। उन्होंने कश्मीर घाटी की बीस अनाथ/अपहृत कश्मीरी हिन्दू लड़कियों का विवाह करवाया। उन्होंने महत्वपूर्ण सामाजिक माहौल को विकसित किया और उन्हें राज्य सरकार के द्वारा मंत्रीपद स्वीकार करने के लिए आमंत्रित

किया गया क्योंकि उनके पास जनता की शक्ति थी। उन्होंने कभी भी पद की चाह नहीं की। वे ऐसे व्यक्ति थे जो कश्मीर घाटी के शहरी, ग्रामीण या सुदूर क्षेत्रों में हिंदू समुदाय के हितों की खातिर अपना खानापीना और सब कुछ छोड़ सकते थे। उनकी पत्नी कांता गंजू ने भी उनके साथ योगदान दिया और उनकी अनुपस्थिति में बिना किसी शिकायत के घर का प्रबंध करती रही।

वे हमेशा ही योद्धा रहे और वर्ष 1987 में कैंसर का पता लगने के बाद उनके जीवन का एक और युद्ध आरंभ हुआ। उन्हें श्रीनगर में सौरा मेडिकल इंस्टीट्यूट में एडमिट कराया गया। मगर इससे भी वे अपने पथ से नहीं डिगे। यहाँ तक कि उस स्थिति में भी पार्टी कार्यकर्ता, नज़दीकी सहयोगी, और अन्य उनके पास आते–जाते रहे और आगे के काम के लिए उनका मार्गदर्शन चाहते रहे। जब महान राष्ट्रवादी और पहले कश्मीरी हिन्दू श्री टीका लाल तापलू इस्लामी आतंकवादियों की गोलियों का निशाना बने, तो श्री गंजू सौरा मेडिकल कॉलेज में अपने कैंसर का इलाज करा रहे थे। वे उसी स्थिति में श्री तापलू के घर श्रद्धांजलि देने के लिए गए और उनके अंतिम संस्कार तक वहीं रहे। मगर अब घाटी छोड़ने का समय आ रहा था। जब आतंकवाद अपने शिखर पर था, तो उन्हें डॉक्टर ने रेडियोथेरेपी जारी रखने के लिए जम्मू शिफ्ट होने की सलाह दी। नवंबर 1989 में उन्होंने घाटी छोड़ दी। ऐसी दुसाध्य बीमारी से पीड़ित होने के बाद भी उन्होंने जम्मू में महाजन सभा, जम्मू में 1990 में आयोजित कश्मीरी पंडितों के एक तीन दिवसीय सम्मलेन में भाग लिया। कश्मीरी पंडितों के जबरन पलायन के बाद के आगे के क़दमों पर चर्चा की गयी और ऐसी स्थिति के बाद भी उन्होंने महत्वपूर्ण विचार दिए।

उनका कैंसर अंतिम चरण में था। मगर वे हमेशा ही जिंदगी, प्रेरणा और उत्साह से भरे रहे। परंतु अंतिम जीत हमेशा ही कैंसर की होती है। उन्होंने 28 जुलाई 1990 को यह देह त्याग दी मगर उनकी स्मृतियाँ आने वाली कई पीढ़ियों को प्रेरणा देती रहेगी। ■

**–उ. कौल**

आये ही थे; बारामुल्ला, अनंतनाग और अन्य ज़िलों से भी काफ़ी संख्या में युवाशक्ति इस एकत्रीकरण में उपस्थित थी। कश्मीर के बाहर से भी अनेक वरिष्ठ प्रचारक (पूर्णकालिक) इस समारोह में भाग लेने के लिये आये थे। संघ की गतिविधियों का ऐसा प्रभाव था कि जिन बाग़ों में संघ की शाखाएं लगती थीं उन बाग़ों को संघ बाग़ कहा जाने लगा था। रैणावारी, श्रीनगर में मेरे मोहल्ले पंडित पुरा मोतीयार, में एक ऐसा संघबाग़ था।

प्रोफेसर बलराज मधोक के अनुसार कश्मीर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गतिविधियां देश के अन्य भागों की तरह ही चल रही थीं। सैंकड़ों स्वयंसेवकों ने संघ शिक्षा वर्ग (संघ के प्रशिक्षण शिविर) में भाग लिया और घाटी से ही नहीं घाटी के बाहर से भी संघ के प्रचारकों और विस्तारकों के रूप में अनेक हिन्दू जुड़े।

शाखाओं में केवल हिन्दू धर्म और राष्ट्रवाद को लेकर ही विचार–विमर्श नहीं होता था। कश्मीर अपने इतिहास के एक और कठिन दौर से गुज़र रहा था। मुस्लिम कान्फ्रेंस जैसी इस्लामी ताक़तें नाम बदल कर नेशनल कान्फ्रेंस हो रही थीं। उनका एक ही उद्देश्य था कि हिन्दू महाराजा को गद्दी से उतारकर इस्लामी प्रभुत्व स्थापित किया जाए। महाराज रणजीत सिंह ने

**शाखाओं में केवल हिन्दू धर्म और राष्ट्रवाद को लेकर ही विचार-विमर्श नहीं होता था। कश्मीर अपने इतिहास के एक और कठिन दौर से गुज़र रहा था। मुस्लिम कान्फ्रेंस जैसी इस्लामी ताक़तें नाम बदल कर नेशनल कान्फ्रेंस हो रही थीं**

तो इस्लामी शासन स्थापित करने के प्रयत्नों को धूल चटा दी थी। शाखाओं में स्वयंसेवक तत्कालीन भारतीय उपमहाद्वीप की राजनीतिक स्थिति पर विचार करने के साथ ही मुसलमानों के लिये पाकिस्तान की मांग करने वाले जिन्ना के अलगाववाद को लेकर भी विचार–विमर्श करते थे।

अंततः भारत दो हिस्सों में बांट दिया गया। उसके तुरंत बाद पाकिस्तान ने अपनी सेना और कबाइलियों को कश्मीर पर आक्रमण करने के लिये भेज दिया। लगभग 500 स्वयंसेवक महाराजा की सेना की हर संभव सहायता करने के लिये तैयार खड़े थे। कश्मीर के लिये स्वयं को बलिदान कर देने में भी उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं थी। सेना को वायुमार्ग से युद्धक्षेत्र में उतारने का, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का पहला विशाल अभियान, भारतीय सेना को श्रीनगर में उतारने के साथ आरंभ हुआ। परंतु श्रीनगर की हवाई पट्टी अच्छी हालत में नहीं थी और हवाई जहाज़ों के उतरने और फिर उड़ने के समय हवाई पट्टी की मरम्मत अनिवार्य हो जाती थी। हवाई पट्टी को चालू रखने का काम स्वयंसेवकों ने अपने ऊपर ले लिया।

अनेक स्वयंसेवक वेष बदल कर शत्रु के इलाक़े में घूमते रहे जहां से उन्होंने उनकी योजनाओं और गतिविधियों के बारे में सूचनाएं प्राप्त कीं। वे मुज़फ़्फ़राबाद, रावलपिंडी और लाहौर तक भी गये। उन भारतीय सैनिको के बलिदान के प्रति तो श्रद्धा से सर झुक ही जाता है जिन्होंने कश्मीर को पाकिस्तानी क़बाइलियों के चंगुल से आज़ाद कराया, परंतु हमें उन स्वयंसेवकों की सेवाओं को भी भूलना नहीं चाहिये जिन्होंने आरंभ में महाराजा की सेनाओं की और बाद में भारतीय सेना की सहायता की जो केवल सराहनीय और सार्थक नहीं अनेक स्थितियों में निर्णायक भी साबित हुई।

1947 में स्वयंसेवकों को मगरमल बाग़, श्रीनगर में एक बौद्धिक में सम्मिलित होने के लिये कहा गया। 5 बजे का समय दिया गया था परंतु बौद्धिक को संबोधित

# शहीद टिक्का लाल टपिलू

राष्ट्रों का निर्माण बलिदानों पर होता है. प्रतिवर्ष हर 14 सितम्बर को बलिदान दिवस के रूप में मनाया जाता है. वर्ष 1989 को उसी दिन टिक्का लाल टपिलू शहीद हुए थे. उन्हें चिन्क्राल मोहल्ला स्थित उनके निवास के बाहर सुबह 9 बजे गोली मार दी गयी थी. शाम को जेकेएलएफ ने एक प्रेस रिलीज़ भेजी थी जिसमें यह कहा गया था कि टपिलू को उसके संगठन ने इसलिए मारा क्योंकि टपिलू के अनुसार कश्मीर भारत का ताज था और हमेशा रहेगा।

टपिलू बचपन से ही निडर योद्धा थे. अपने स्कूल के दिनों से एक स्वयंसेवक, टपिलू की आरंभिक शिक्षा कश्मीर में हुई. वे एम.ए. और एल.एल.बी. करने के लिए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय गए. जब उन्हें वहां पर प्रवेश नहीं मिला तो उन्होंने विरोध स्वरुप धरना दिया. उन्होंने जम्मू और कश्मीर बार को 1957 में ज्वाइन किया. उच्च न्यायालय के लिए उनका नामांकन अप्रैल 1971 में हुआ।

वे सबसे पहले स्वयंसेवक थे और अंतिम समय तक स्वयं सेवक बने

रहे. अपनी मातृभूमि के निडर योद्धा का दिल शेर जितना ही निडर था. वे भारत और भारत के नागरिकों की महानता पर विश्वास करते थे. वे एक भारतीय और हिन्दू होने पर गर्व करते थे, मगर वे साम्प्रदायिक नहीं थे। उन्होंने श्रीनगर में लाल चौक से घोषणा की थी कि कश्मीर भारत का एक अभिन्न अंग है। उन्हें आपातकाल के दौरान 1976 तक छह बार से अधिक हिरासत में लिया गया. उन्होंने मदन वाली और शुबंजी पंडित के साथ सत्याग्रह किया था. उन्हें हिरासत में लिया गया और उन पर आपराधिक मुक़दमे दर्ज किए गए। उन्हें श्रीनगर के केन्द्रीय कारागर में पांच से अधिक महीनों के लिए रखा गया। उनकी रिहाई के बाद, सभी भूमिगत नेताओं की महत्वपूर्ण बैठक तीन दिनों के लिए डल लेक में एक हाउसबोट में आयोजित की गयी.

मैं यह सोचकर गर्व का अनुभव करता हूँ कि मुझे उनके साथ 25 वर्षों तक काम करने का अवसर मिला। 1968 से मैं उनके साथ हर कार्यक्रम में था जो भी उन्होंने जनसंघ के लिए आयोजित कराए और बाद में भाजपा के लिए, या फिर किसी और कारण के लिए।

टपिलू अपने समय की सबसे महत्वपूर्ण शख्सियत थे. उन्हें लोग कितना प्यार करते थे, वह इस तथ्य से पता चला कि उनके अंतिम संस्कार में 50,000 से अधिक लोग सम्मिलित हुए। लोग उन्हें एक वकील के रूप में जानते थे, जिसने गरीबों को अपनी सेवाएं मुफ्त में दीं फिर चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान। लोग उन्हें अभी भी घाटी के तत्कालीन सबसे बड़े नेता के रूप में जानते हैं और वे भविष्य में भी उन्हें इसी रूप में जानेंगे। ■

**–उ. कौल**

**सरदार पटेल ने श्रीगुरुजी से अनुरोध किया था कि वे महाराजा को विलय के प्रपत्र पर तुरंत हस्ताक्षर करने के लिये तैयार करें। मुलाकात के बाद महाराजा ने श्रीगुरुजी को धन्यवाद दिया, कंधे पर पश्मीने का शाल डालकर उनका सम्मान किया और 2000 रुपये भेंटस्वरूप दिये**

कौन करेंगे यह नहीं बताया गया था। हर स्वयं सेवक उत्सुक था कि कौन होगा जो बौद्धिक को संबोधित करेगा? लगभग 300 स्वयंसेवक उपस्थित थे। और संबोधन के लिये आये परमपूज्यनीय सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर 'गुरुजी'। श्रीगुरुजी ने कश्मीर की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और हिन्दू राष्ट्रवाद से इसके संबंध के बारे में विस्तार से बताया। बाद में पता चला कि श्रीगुरुजी एक विशेष कार्य से कश्मीर आये थे। वे दोपहर में कश्मीर पहुंचे थे और सीधे महाराजा के महल में जाकर उनसे लगभग एक घण्टा बातचीत की थी। श्रीगुरुजी के साथ अप्पाजी थाते थे जिन्होंने बातचीत में तो हिस्सा नहीं लिया पर वे श्रीगुरुजी के सहचर के रूप में उनके साथ थे। श्रीगुरुजी ने विलय के प्रपत्र पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता पर बल दिया और महाराजा से जल्द से जल्द ऐसा करने को कहा जिससे कि देश के उत्तरी भाग में चली आ रही अनिश्चितता समाप्त हो सके। अनेक स्रोतों से यह पता चलता है कि सरदार पटेल ने श्रीगुरुजी से अनुरोध किया था कि वे महाराजा को विलय के प्रपत्र पर तुरंत हस्ताक्षर करने के लिये तैयार करें। मुलाक़ात के बाद महाराजा ने श्रीगुरुजी को धन्यवाद दिया, कंधे पर पश्मीने का शाल डालकर उनका सम्मान किया और 2000 रुपये भेंटस्वरूप दिये।

विलय हुआ, नियंत्रण रेखा पर युद्ध विराम हो गया, पर शेख़ अब्दुल्ला श्रीनगर में थे ही नहीं। वे होल्कर राजा की सुरक्षा में इन्दौर में थे। कश्मीर में स्थिति पर नियंत्रण कर लिया गया तो शेख कश्मीर पहुंचे और आपातकालीन सरकार को अपने हाथ में लेकर लाल चौक में अपनी पहली रैली आयोजित की। एक लाख से

**विस्थापन आंखों में आंखें डाले सामने खड़ा था। इस्लामी आतंकवाद के चलते समूचा कश्मीरी पंडित समुदाय कश्मीर से बाहर फेंक दिया गया। संघ फिर से कमर कस कर खड़ा हो गया। अपने ही देश में शरणार्थी बन चुके कश्मीरी हिन्दुओं के लिये संघ से जो भी बन पड़ा उसने किया**

अधिक लोग उपस्थित थे। उत्सव का सा माहौल था क्योंकि दुश्मन को कश्मीर से खदेड़ दिया गया था। सबको लग रहा था कि अपने भाषण में अब्दुल्ला इस कठिन घड़ी में साथ देने के लिये भारतीय सेना और भारत सरकार को धन्यवाद देंगे परंतु उन्होंने अपनी सत्तालोलुप विकृति को यों अभिव्यक्ति दी, "मैंने कश्मीर का ताज धूल में से उठाया है, हम हिन्दुस्तान के साथ जाएंगे या पाकिस्तान के साथ यह बाद की बात है, सबसे पहले और सबसे ऊपर जो है वह है–आज़ादी.." आशा के बिल्कुल विपरीत था यह भाषण। सभी चकित थे।

प्रो. मधोक वहां उपस्थित थे। यह अप्रत्याशित भाषण सुनकर वे अंदर तक हिल गये थे। उनसे रहा नहीं गया। वे सीधे अपनी मोटरबाइक तक पहुंचे, किक लगाई और जम्मू के लिये निकल पड़े। अगले दिन जम्मू में वे पंडित प्रेमनाथ डोगरा और वहां के प्रमुख नागरिकों से मिले। मधोक जी ने उन्हें शेख और लालचौक प्रकरण के बारे में सबकुछ बताया। राज्य की राजनीति में यह एक और ऐतिहासिक मोड़ था। जम्मू में राष्ट्रवादी शक्तियों का एक ऐतिहासिक आंदोलन शुरू हुआ जो प्रजा परिषद आंदोलन के नाम से जाना गया। 1947 से 1953 तक के अब्दुल्ला के शासनकाल में पुलिस थानों में स्वयंसेवकों पर तरह तरह के अत्याचार किये गये। नेशनल कान्फ्रेंस के स्थानीय कार्यालयों, जिन्हें हल्क़ा कहते थे, भी ऐसे जुल्म के अड्डे थे। कई बार तो स्वयंसेवकों को घास की हथकड़ियां भी लगाई जाती थीं।

1963 में पं.अमरनाथ गंजू ने संघ के कार्य को एक नई शक्ति दी। वे कई संस्थाओं की आड़ में कार्य करते थे, जैसे हिन्दी प्रचारिणी सभा, स्वामी विवेकानन्द सोसाइटी जिनके साथ साथ वे भगवद्गीता की कक्षायें की लगाते थे। परंतु हर कोई जानता था कि शाखा में ही चरित्र निर्माण, अनुशासन और राष्ट्रभक्ति को स्वयंसेवक के अस्तित्व का हिस्सा बनाया जाता है। कश्मीरी पंडित नेतृत्व की ही शक्ति से राष्ट्रवाद का दिया कश्मीर में जलता रहा। इस नेतृत्व की अग्रभूमि में थे सर्वश्री गोपी कृष्ण, श्रीधर कौल डुल्लू, श्रीकान्त चुके और सुदर्शन धर्मार्थ। 1967 में परमेश्वरी के लव जिहाद कांड के बाद उभरे कश्मीरी पंडित आंदोलन में भी संघ ने अग्रणी भूमिका निभाई। लेकिन इससे भी कठिन समय आया 1984 के अनंतनाग दंगों के बाद। संघ ने न केवल राहत और पुनर्वास का काम किया अपितु तोड़े गये मंदिरों के पुनर्निर्माण में भी मुख्य भूमिका अदा की। इस संबंध में पं. अमर नाथ वैष्णवी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमण्डल राष्ट्रपति ज्ञानी ज़ैल सिंह और प्रधानमंत्री राजीव गांधी से मिलने दिल्ली भी गया। 1985 में हिन्दू यूथ फोरम ने श्रीनगर में एक युवा सम्मेलन किया जिसमेः एक प्रस्ताव पारित किया गया कि यदि कश्मीर में स्थिति ठीक नहीं की जाती है और हिन्दुओं का उत्पीड़न जारी रहता है तो समुदाय का विस्थापित होना तय है। उन्होंने इस बात को भी रेखांकित किया अब यह दस्तूर ही बन गया है कि मुसलमान इच्छानुसार किसी भी तीर्थस्थल या मन्दिर से जुड़ी संपति पर कब्ज़ा कर लेते हैं।

विस्थापन आंखों में आंखें डाले सामने खड़ा था। इस्लामी आतंकवाद के चलते समूचा कश्मीरी पंडित समुदाय कश्मीर से बाहर फेंक दिया गया। संघ फिर से कमर कस कर खड़ा हो गया। अपने ही देश में शरणार्थी बन चुके कश्मीरी हिन्दुओं के लिये संघ से जो भी बन पड़ा उसने किया। 1990 के बाद फिर से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने गीता भवन, जम्मू में व्यापक स्तर पर राहतकार्य आरंभ किया। यह ऐतिहासिक राहत कार्य वैसा ही था जैसा संघ ने 1947 के देश विभाजन के समय किया था।

जिन प्रमुख स्वयंसेवकों ने कश्मीर में लगभग आधी सदी तक कार्य किया उनमें प्रमुख नाम हैंः सर्वश्री अमरनाथ गंजू, अमरनाथ वैष्णवी, पुष्कर नाथ कर्नल, टिक्का लाल टपिलू, दुर्गाप्रसाद कौल, प्रेमनाथ भट्ट, हरजीलाल जद, चुन्नी लाल कौल, हीरालाल चत्ता, बंसीलाल मल्ला, सोमनाथ सूरी और ह्रदयनाथ भट्ट। इनके साथ अनगिनत स्वयंसेवक और भी थे। 30 वर्ष से अधिक समय तक कार्य करनेवाले प्रमुख स्वयंसेवक हैं बालजी सीरू, उपेन्द्र कृष्ण भट्ट, शिबनजी गंजू, राजेन्द्र कम्पासी, अनुपम कौल, अश्विनी च्रंगू, भारतभूषण भट्ट, चांदजी भट्ट, विजय हंडू, प्रमोद दुर्रानी, सुरेन्द्र अम्बारदार और गिरधारी लाल रैणा।

एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व जिनका कश्मीरी हिन्दू समुदाय सदा ही ऋणी रहेगा श्री भगवत् स्वरूप थे। मूलतः पंजाब में बंगा के निवासी श्री स्वरूप ने कश्मीर में 50 वर्ष से अधिक समय तक कार्य किया। उनकी सलाह, प्रेरक शक्ति और सही रास्ता दिखाने की क्षमता कश्मीरी हिन्दुओं के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण रही। यहां भारतीय जनसंघ की स्थापना करने वाले श्री टी.एन. धर और 1967 में जनसंघ के टिकट पर पहला संसदीय चुनाव लड़ने वाले श्री टी. एन. मट्टू का नाम लेना भी उपयुक्त रहेगा। अनेक वर्षों तक कश्मीर में सामाजिक कार्य करने वालों में प्रमुख थे सर्वश्री लाला दीनानाथ, कृष्णगोपालजी और राजकुमार चावला।

कुल मिलाकर इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि कश्मीर में इस्लामी शासन के आरंभ से ही वहां राष्ट्रवादी प्रतिरोध आरंभ हो चुका था। एक समय ऐसा था जब यह प्रतिरोध श्रीभट्ट के रूप में अभिव्यक्त हुआ जबकि बाद में यह बीरबल धर जैसे व्यक्तित्वों के रूप में सामने आया। अनेक कालबिन्दुओं पर यह अनेक संगठनों के रूप में प्रकट हुआ। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने इसे उस राष्ट्रवादी सारतत्त्व का आधार दिया जो इस संगठन की जीवनीशक्ति है। ■

*संपर्क - 9818447636*
*utpalpublications@gmail.com*

# बलराज मधोक

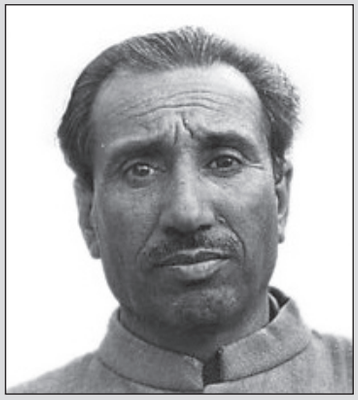

प्रोफेसर बलराज मधोक का जन्म 25 फरवरी 1920 को स्कार्डू (बाल्टिस्तान) में हुआ था। उन्होंने जम्मू के प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज और लाहौर में दयानंद एंग्लो–वेदिक (डीएवी) कॉलेज श्रीनगर में अध्ययन किया। उन्होंने 1940 में इतिहास में बीए (ऑनर्स) के साथ स्नातक की उपाधि प्राप्त की। मधोक परिवार आर्य समाजी था।

जम्मू में पढ़ाई के दौरान ही वे 1938 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) में शामिल हो गए। वह 1942 में आरएसएस के पूर्णकालिक प्रचारक बने और उन्होंने जम्मू में संघ की शाखाओं का एक बहुत बड़ा नेटवर्क बनाया। उन्होंने कश्मीर घाटी में भी आरएसएस नेटवर्क की स्थापना की। कश्मीरी हिंदू युवाओं की मदद से, बलराज जी श्रीनगर के विभिन्न हिस्सों में और बहुत ही कम समय में संघ की शाखाओं को स्थापित करने में सक्षम रहे। मधोक जी के प्रमुख नेटवर्क में श्रीनगर, अनंतनाग, बारामुल्ला, सोपोर और अन्य छोटे गांव और कस्बे सम्मिलित थे।

बलराज जी पाकिस्तानी सेना के द्वारा आक्रमण के बारे में सूचना प्राप्त करने के लिए अपने खुफिया नेटवर्क को स्थापित करने में सफल रहे थे। बलराज जी को कश्मीर के युवाओं का साथ मिला जैसे ओमकार नाथ काक, माखन लाल ऐमा, तारा चंद ढोबी, देवकी प्रसाद नाखसी और कई अन्य युवा नेता। लाहौर, रावलपिंडी, मुजफ्फराबाद इत्यादि से जो भी खुफिया जानकारी एकत्र की जाती, वह बलराज मधोक सरकारी अधिकारियों को प्रदान करते थे।

बलराज मधोक जी का सबसे बड़ा योगदान था 300–500 स्वयंसेवकों को सीधे भारतीय सेनाओं की मदद के लिए तैयार करना। जब महाराजा हरि सिंह ने प्रवेश समझौते पर हस्ताक्षर किए, तो भारतीय सेना को श्रीनगर हवाई अड्डे पर ले जाया गया लेकिन रनवे की स्थिति अच्छी नहीं थी। इसे स्वयंसेवकों ने खुद साफ़ किया और इसे सही किया जिसके कारण भारतीय सेना एक आसान लैंडिंग कर सकी।

1983 में बलराज जी के साक्षात्कार के दौरान, उन्होंने मुझे बताया कि जब भारतीय सेना ने 1947 का युद्ध जीता था और हमलावरों को वापस पाकिस्तान भेज दिया था तो शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को आपातकालीन सरकार चलाने का मौक़ा मिला। उन्होंने (अब्दुल्ला) लाल चौक में एक बड़ी रैली आयोजित की जिसमें लगभग 1 लाख लोग इकट्ठे हुए थे। शेख अब्दुल्ला से यह उम्मीद थी कि वह भारत सरकार और भारतीय सेना का शुक्रिया अदा करेंगे जिन्होंने देश को एक करने के लिए हर तरह की कुर्बानी दी थी, परन्तु इसके अलावा उन्होंने यह कहा कि "मैंने जमीन से कश्मीर का मुकुट लिया है। हमें भारत या पाकिस्तान के साथ जाना है, यह एक एकदम सवाल है, मगर पहले हमें आज़ादी चाहिए। "बलराज जी ने कहा कि यह उनके लिए इतनी हैरान करने वाली और चौंकाने वाली बात थी कि उन्होंने निराश होकर बाइक स्टार्ट की और वे सीधे जम्मू की तरफ चले आए।

वह हरि वजीर, पंडित प्रेम नाथ डोगरा और अन्य प्रमुख नागरिकों से मिले और उन्होंने उन सबको शेख के इरादों के विषय में समझाया। उन्होंने नवंबर 1947 में प्रजा परिषद की स्थापना की जिसने भारत के साथ जम्मू–कश्मीर के पूर्ण एकीकरण की मांग की। प्रजा परिषद की मांग थी कि 'एक देश, एक संविधान, एक ध्वज, एक राष्ट्रपति'। लेकिन बाद में अब्दुल्ला और नेहरू के बीच वार्ता के जरिए लचीली स्वायत्तता को अनुच्छेद 370 के रूप में सम्मिलित कर लिया गया। प्रजा परिषद ने जम्मू प्रांत में एक ऐतिहासिक आंदोलन का आयोजन किया जिसमें हजारों लोगों ने हिस्सा लिया, सैकड़ों लोगों ने सत्याग्रह किया और कई लोगों को बहुत ही निष्ठुरता पूर्वक कारागार भेजा गया। बलराज जी को उनके राजनीतिक विचारों के कारण ही शेख अब्दुल्ला ने जम्मू और कश्मीर से निकाल दिया था।

बलराज जी 1948 में दिल्ली चले गए और पंजाब विश्वविद्यालय कॉलेज में शिक्षण कार्य आरम्भ किया जिसकी स्थापना पश्चिम पंजाब के शरणार्थियों की शिक्षा के लिए की गयी थी। बाद में, उन्होंने दिल्ली में डीएवी कॉलेज में व्याख्याता के रूप में कार्य किया। 1951 में, बलराज जी श्यामा प्रसाद मुखर्जी के साथ जुड़े, जिन्होंने बाद में जाकर भारतीय जनसंघ की स्थापना की। 27 मई 1951 को, बलराज जी ने जनसंघ की दिल्ली शाखा की स्थापना की।

1953 में, बलराज जी श्यामा प्रसाद मुखर्जी के उस आन्दोलन में सक्रिय रूप से सम्मिलित थे जब श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने बिना किसी परमिट के जम्मू–कश्मीर में प्रवेश करने का फैसला किया। 1967 में, बलराज जी ने श्रीनगर में शीतलनाथ से घोषणा की कि जो लोग पाकिस्तान जाना चाहते हैं, मैं उनके लिए सीमा तक परिवहन की व्यवस्था करते हुए बहुत ही हर्षित होऊँगा, क्योंकि कश्मीर हमेशा भारत का हिस्सा होगा। कश्मीर के विषय में बलराज मधोक के विचार एकदम स्पष्ट थे. उनका मत था कि भारत सरकार कश्मीर में सभी सेवानिवृत्त रक्षा कर्मियों के लिए कालोनी का निर्माण करे। ■

**–उ.कौल**

कर्नल तेज कुमार तिक्कू
(सेवानिवृत्त)

# पाक अधिकृत कश्मीर

1947 में विभाजन से पहले यह सबसे बड़ी रियासत तो थी परन्तु आज इसके एक बड़े हिस्से पर चीन और पाकिस्तान ने अवैध कब्ज़ा जमा रखा है। असल में मात्र 139,443.92 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र भारत के नियंत्रण में है जो इस राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 46 प्रतिशत है। जम्मू व कश्मीर के 86017.81 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर पाकिस्तान का कब्ज़ा है

## विभाजन से पहले जम्मू व कश्मीर राज्य का भूगोल

जम्मू–व–कश्मीर राज्य भारतीय उप–महाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी कोने पर स्थित आयताकार क्षेत्र है। 1947 में भारत के विभाजन से पहले, यह 263,717 वर्ग किलोमीटर* में फैली भारत की सबसे बड़ी रियासत थी। इसके निर्देशांक हैं 32.17 और 36.58 उत्तर अक्षांश और 73.26 और 80.30 पूर्व रेखांश। यों तो अपनी भौगोलिक संरचना में कश्मीर अधिकतर पहाड़ी था, लेकिन इसके बावजूद जनसंख्या बहुत कम थी। प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में सत्रह व्यक्ति रहते थे जिससे कुछ मिलाकर जनसंख्या लगभग चालीस लाख थी जो 39 कस्बों और 8,903 गांवों में रहती थी। एक आकलन के अनुसार इसकी शहरी जनसंख्या 362314और ग्रामीण जनसंख्या 3503929 थी। परन्तु कश्मीर घाटी में बहुत ही घनी आबादी थी।

1947 में विभाजन से पहले यह सबसे बड़ी रियासत तो थी परन्तु आज इसके एक बड़े हिस्से पर चीन और पाकिस्तान ने अवैध कब्ज़ा जमा रखा है। असल में मात्र 139,443.92 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र भारत के नियंत्रण में है जो इस राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 46 प्रतिशत है। जम्मू व कश्मीर के 86017.81 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर पाकिस्तान का कब्ज़ा है। अक्साई चिन में चीन 38256 वर्ग किलोमीटर पर कब्ज़ा जमाए हुये है। इसी क्षेत्र से उसका राष्ट्रीय राजमार्ग 219 गुज़रता है जो तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में लाज़ी और ज़िनजियांग को जोड़ता है।

यद्यपि यह क्षेत्र बंजर है और यहां की आबादी नहीं के बराबर फिर भी चीन के लिये सामरिक दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह इसके दो अशांत क्षेत्रों तिब्बत और ज़िन्जियांग को जोड़ता है। इस राजमार्ग का निर्माण 1951 में आरंभ हुआ और 1957 में समापत हुआ और ऐसा माना जाता है कि भारत को इसके निर्माण की भनक तक नहीं लगी। 1963 में पाकिस्तान ने अपने कब्ज़ाए हुये क्षेत्रों में से अतिरिक्त 5480 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र चीन को पट्टे पर दे दिये। इसके बदले चीन ने पाकिस्तान को वह सब कुछ दे दिया जो एटम बम बनाने के लिये ज़रूरी था। यह क्षेत्र शक्सगम उर मुज़ताग घाटी में पड़ता है जो सियाचिन के उत्तर में और कराकोरम दर्रे के काफ़ी निकट है। विभाजन से पहले यह क्षेत्र बल्तिस्तान के शिगर इलाक़े में स्थित और उत्तरी क्षेत्र का लगभग पच्चीस प्रतिशत था (इस क्षेत्र पर पाकिस्तान का अवैध क़ब्ज़ा है और उन्होंने इसे गिलगित बल्तिस्तान नाम दिया है)। तब से यह चीन के ज़िन्जियांग स्वायत्त क्षेत्र का हिस्सा है। संयोग स पाकिस्तान ने उत्तरी शक्सगम घाटी में सियाकांगड़ी के उत्तर में दो छोटे ग्लेशियरों का दोहन करके उन्हें सिन्धु नदी की ओर मोड़ दिया है जिससे चीन परेशान हो गया है।

इस राज्य की सीमाएं अन्य देशों की सीमाओं के साथ लगती हैं। ये सीमाएं ऐसे नामकरणों की खिचड़ियां हैं जो केवल इस पर कब्ज़ा जमाने वाले ठेकेदारों को रेखांकित करती हैं। चीन के साथ इसकी 860 किलोमीटर लंबी सीमा लगी हुई है जिसमें से अंतर्राष्ट्रीय सीमा 270 किलोमीटर लंभी है। अक्साई चिन के साथ लगने वाली वास्तविक नियंत्रण रेखा 530 किलोमीटर लंबी है और शेष 60 किलोमीटर उस क्षेत्र के साथ जुड़ते हैं जो पाकिस्तान ने चीन को दिया है। लद्दाख/कर्गिल क्षेत्र में 322 किलोमीटर सीमा पाकिस्तान से लगती है जिसमें से 198 किलोमीटर वास्तविक नियंत्रण रेखा और 124 किलोमीटर वास्तविक भूस्थिति रेखा के अंतर्गत आते हैं। घाटी में वास्तविक नियंत्रण रेखा 520 किलोमीटर तक जाती है, जबकि जम्मू क्षेत्र में यह 225 किलोमीटर

*आलेख में दिए आंकड़े अन्य स्रोतों में उपलब्ध आंकड़ों से भिन्न हैं*

लंबी है। जम्मू क्षेत्र के अंतर्गत भी 265 किलोमीटर की अंतर्राष्ट्रीय सीमा आती है जिसके साथ–साथ पाकिस्तानी पंजाब का प्रांत फैला हुआ है। अतः पाकिस्तान और चीन के साथ जम्मू–व–कश्मीर की 2062 किलोमीटर लंबी सीमा है जो अलग अलग स्थानों पर अलग अलग नामों से जानी जाती है।

## गिलगित–बल्तिस्तान

पंजाब के मैदानों से दूर, विराट कराकोरम श्रृंखला की छत्रछाया में, मुख्यधारा की राजनीतिक उठापटक से अलग रहकर यह क्षेत्र जिस तरह से अकेला सा लगता है उस अकेलेपन की अपनी गरिमा है। संसार के सबसे ऊंचे पर्वत इसकी पृष्ठभूमि में स्थित हैं, आकाश को छूती हुई कराकोरम, हिन्दूकुश और लद्दाख की विशाल पर्वत–श्रृंखलाओं का मिलन यहां पर होता है। सिन्धु नदी अपनी लंबी यात्रा के लगभग 700 किलोमीटर इसी क्षेत्र में पूरे करती है। अनेक नील–जल सरोवर, विश्व के सबसे बड़े हिमनद, सफेद रेत के टीले और गहरी से भी गहरी घाटियां दुनिया में कहीं और नहीं मिलते। इतना बीहड़ और दुर्गम होने के बावजूद इस क्षेत्र का भू–सामरिक महत्व कम नहीं हुआ है, क्योंकि यह चार देशों पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान, चीन और भारत के बीच में सिमटा हुआ है। प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से भी यह क्षेत्र अत्यंत समृद्ध है जिससे इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। ब्रिटिश शासन में इसे ब्रिटेन और रूस के बीच सत्ता की महाक्रीड़ा अर्थात ग्रेट गेम[1] के अंतर्गत शत्रु की गतिविधियों पर नज़र रखकर उनकी पूर्वसूचना प्राप्त करने वाली चौकी के रूप में इस्तेमाल किया। उसके बाद ऊर्जा संसाधनों की दृष्टि से समृद्ध मध्य एशिया क्षेत्र तक अंग्रेज़ों की पहुंच यहीं से बनी। 1947 से पहले यह जम्मू–व–कश्मीर का एक भाग था और वर्तमान में सीमा के साथ लगने वाले अफ़गानिस्तान का एक भाग है। इसलिये यह ध्यान का केन्द्र बना ही रहता है।

इसके साथ ही इस क्षेत्र के भू–सामरिक महत्व को कराकोरम राजमार्ग ने और भी बढ़ा दिया है। यह राजमार्ग, कराकोरम के ऊपर से, खूंजेरब दर्रे से गुज़रते हुये

**9–10वीं शताब्दी तक बल्तिस्तान पर तिब्बतियों का शासन था जिसके बाद यह स्कर्दू के स्थानीय सामंतों के हाथ में आ गया। 13वीं शताब्दी में मिस्र निवासी युवा यात्री इब्राहीम शाह बल्तिस्तान आया और स्कर्दू की अंतिम राजकुमारी के साथ विवाह किया**

ज़िन्जियांग को पाकिस्तान से जोड़ता हुआ इस क्षेत्र से निकलता है। इस राजमार्ग से चीन, अरब सागर में कराची और ग्वादर की बंदरगाहों तक आसानी से पहुंच सकता है और अपने उपद्रवग्रस्त क्षेत्र ज़िन्जियांग राज्य की ओर आने वाले पाकिस्तानी और अफ़ग़ानी आतंकवादियों की गतिविधियों पर लगातार नज़र भी रख सकता है। मीडिया विवरणों से पता चलता है कि अनेक सामरिक उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये इस क्षेत्र में चीन की पीपुल्स लिबरेशन आर्मी के सैनिक तैनात किये गये हैं। इस तैनाती का प्रमुख उद्देश्य यह है कि भारत को उत्तरी दिशा से घेरा जाए और साथ ही कश्मीर में मौजूद भारतीय सेना के लिये एक निरंतर आसन्न संकट के रूप में उपस्थित रहा जाए। आसन्न संकट पैदा करने वाली इस सामरिक स्थिति को सैनिक शब्दावली में थ्रेट इन बीइंग[2] कहा जाता है। अब जब कि चीन–पाकिस्तान आर्थिक गलियारा भी अस्तित्व में आ चुका है, जो ज़िन्जियांग और ग्वादर बंदरगाह को जोड़ते हुये इसी क्षेत्र से निकलता है, चीन की मंशा पहले से अधिक स्पष्ट हो चुकी है।

बल्ती, लद्दाखी और कर्गिल के पुरिग पास समुदायों के बीच व्यावहारिक रूप से कोई कोई अंतर नहीं है क्योंकि ये सभी तिब्बती मूल के हैं और आज भी तिब्बती भाषा के प्राचीनतम रूप का व्यवहार करते हैं। उनका संगीत, परिधान, भोजन, लोकसाहित्य, महाकाव्य आदि, सभी समान हैं। इसीलिये लेह और कर्गिल के रेडियो कार्यक्रम सीमा के उस पार भी अत्यंत लोकप्रिय हैं। लद्दाख़ी और बल्ती अत्यंत शांतिप्रिय समुदाय हैं जिनमें अन्दरूनी झगड़े देखने को ही नहीं मिलते। उनकी मानी जाए तो वे पूरी शांति और सौहार्द से एक दूसरे के साथ रहना पसन्द करेंगे। उपमहाद्वीप के साथ उनके विशिष्ट संबंधों के चलते ही दोनों के बीच अविश्वास पैदा हो गया है। सदियों से, धर्मशासित पड़ोसी तिब्बत के विपरीत, लद्दाख़ वास्तविक धर्मनिरपेक्षता का प्रतिनिधि रहा है। बल्तिस्तान को मॉन नामक एक भारोपीय समुदाय ने बौद्ध धर्म का गढ़ बनाया , जिससे कश्मीरी, गांधार और तुर्फ़ान विचारशैलियों के बीच त्रिकोणीय संबंध स्थापित हो सका।

9–10वीं शताब्दी तक बल्तिस्तान पर तिब्बतियों का शासन था जिसके बाद यह स्कर्दू के स्थानीय सामंतों के हाथ में आ गया। 13वीं शताब्दी में मिस्र निवासी युवा यात्री इब्राहीम शाह बल्तिस्तान आया और स्कर्दू की अंतिम राजकुमारी के साथ विवाह किया। आगे जाकर उसने माकपोन राजवंश की नींव डाली। 15वीं शताब्दी में मक्पोन बोखा के समय में मीर शमसुद्दीन अराक़ी ने बल्तिस्तान का परिचय नूरबख़्शिया सूफ़ीवाद से कराया। लगभग इसी समय मुग़ल शासकों सुल्तान सैय्यद ख़ान काशगरी (1571) और मिर्ज़ा हैदर दुग़लत (1532) ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार 16–17वीं शताब्दी में बारह इमामों को मानने वाले फारसी शिया इमामिया संप्रदाय के उपदेशक बल्तिस्तान आये और वहां के लोगों की आस्था को प्रभावित किया, जबकि अन्य मानते हैं कि बल्ती लोग 19वीं शताब्दी तक नूरबख़्शिया सूफीवाद को ही मानते थे, जब सैय्यद अब्बास अलमूसवी उन्हें शिया मत में लाये। चूंकि यह क्षेत्र अनेक देशों संस्कृतियों और सभ्यताओं का संगम है विभिन्न लोग इसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। प्रोफ़ेसर स्तोब्दन के अनुसार चीनी इसे पालोलो कहते हैं तो दरदियों के लिये यह बालोर है। अरबों ने इसका नाम बलोरिस्तान रख छोड़ा है तिब्बती इसे नाग–कोड़ के नाम से पहचानते हैं।[3]

1840 में जब सुविख्यात सेनानायक जनरल ज़ोरावर सिंह[4] ने बल्तिस्तान के साथ साथ लद्दाख़ पर भी अधिकार कर लिया तो यह क्षेत्र जम्मू–व–कश्मीर का एक भाग बन

गया। अंग्रेज़ों के लिये यह सामरिक महत्व का क्षेत्र था जिसे अपने नियंत्रण में केवल इसलिये रखना था कि यहां से सोवियत गतिविधियों पर नज़र रखी जा सकती थी। ब्रिटिश शासन के दौरान बल्तिस्तान, लद्दाख़ और गिलगित को मिलाकर 'सीमांत ज़िला' बनाया गया। लद्दाख़ वज़ारत को 1901 में अलग कर दिया गया और स्कर्दू को इसकी शीतकालीन राजधानी बनाया गया। 1947 में पाकिस्तान ने 'ऑपरेशन स्लेज' चलाकर बल्तिस्तान पर बलपूर्वक क़ब्ज़ा कर लिया। इस प्राचीन भूभाग को ज़बरदस्तीदो छोटे तिब्बतों में बांट दिया गया। इस कृत्रिम विभाजन से यह एक बंद गली होकर रह गया क्योंकि इसके दो भागों को एक करने वाला संबंध ही समाप्त हो गया था।

गिलगित में अधिकतर मुसलमान रहते हैं जो अफ़्गानिस्तान के पश्तूनों की तरह मज़बूत क़द काठी के होते हैं। इनके नाक–नक्श, परिधान और आदतें भी पश्तूनों जैसी ही होती हैं। पूर्वी कर्गिल में बौद्धों की संख्या अधिक है. यहां उनके प्रार्थना चक्र, भव्य मठ और गोम्पा, हर तरफ़ देखे जा सकते हैं। कर्गिल में अधिकतर शिया मुसलमान रहते हैं। भारत के विभाजन से पहले गिलगित–बल्तिस्तान की 50 प्रतिशत आबादी शिया, 25 प्रतिशत इस्माइली (शियाओं की एक शाखा) और 25 प्रतिशत सुन्नी हुआ करती थी। दियामर ज़िले में सुन्नी बहुसंख्यक हैं परंतु अन्य पांच ज़िलों में वे अल्पसंख्यक हैं। पाकिस्तान के भूतपूर्व सैनिक तानाशाह ज़िया–उल–हक़ ने सुन्नी मुसलमानों को इस क्षेत्र में बसाकर जनसांख्यिकी परिवर्तन करने के लिये एड़ी–चोटी का ज़ोर लगाया। अपने परंपरागत निवास–स्थान में बहुसंख्यक शियओं को अल्पसंख्यक बनाने के ये प्रयत्न खुलेआम हो रहे थे। प्रतिक्रिया में शिया/ इस्माइली समुदाय की बहुलता वाले स्वायत्त और अलग (परंतु स्वाधीन नहीं) राज्य की स्थापना के लिये आंदोलन छिड़ गया। ज़िया ने क्रूरता से इस आंदोलन का दमन किया। बल्तिस्तान को तो पाकिस्तानी क़ब्ज़े के दौरान तथाकथित परिष्करण के नाम पर सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तरों पर अपार नृशंसता झेलनी पड़ी। यहां के निवासियों का दुर्भाग्य है कि उसके अपार प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके इस्लामाबाद अपना ख़ज़ाना भरता है और स्थानीय लोगों को कुछ नहीं मिलता। इस क्षेत्र के लोग जीवन की मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित रखे जाते हैं। अली इंजीनियर रिंचन के अनुसार गिलगित बल्तिस्तान के लोग पाषाण युग में रहते आ रहे हैं। जिन्होंने यहां कब्ज़ा कर रखा है वे भूमि का विकास अपने लोगों की आवश्यकता के अनुसार नहीं कर रहे।[5] यही नीति अभी भी लागू है।

## पाक अधिकृत कश्मीरः कश्मीर को ज़बरदस्ती हथियाने का पकिस्तानी फैसला

महाराजा अपने भविष्य को लेकर चिंतित थे और नेहरू टालमटोल कर रहे थे। मगर समय अपनी गति से चल रहा था। जो हृदय विदारक घटनाएं देश–विभाजन के साथ–साथ घट रही थीं वे जम्मू–व–कश्मीर राज्य में भी होने लगीं। जिन्ना की सहमति से पाकिस्तान प्रायोजित कबाइली कश्मीर को हथियाने के लिये निकल चुके थे।

सितंबर 1947 में अति–महत्वाकांक्षा से ग्रस्त पाकिस्तान ने कश्मीर को जल्दी से जल्दी हथियाने के चक्कर में एक गुप्त योजना को स्वीकृति दे दी जिसके अनुसार जम्मू–व–कश्मीर की सीमा के साथ लगने वाले अनेक क्षेत्रों में राजय की सेनाओं के साथ झड़पें होनी थीं और उसके बाद भरपूर हमला होना था। उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत में रहने वाले आफ़रीदी, वज़ीर, महसूद, पश्तून और स्वाती जैसे जंगी कबीलों को हमला करने वाले इस सैन्यबल में केन्द्रीय भूमिका दी गयी। इसके पीछे यह आशंका भी थी कि इन जंगी कबीलों को किसी भावुक और आकर्षक मुद्दे की ओर न मोड़ा गया तो वे नये मुस्लिम देश पाकिस्तान के जन्म के समय विद्रोह करके बखेड़ा खड़ा कर सकते थे। उन्हें बेशुमार ज़मीन, सोना–चांदी और न जाने किन–किन चीज़ों का लालच दिया गया जो उन्हें कश्मीर को आज़ाद करने करने के लिये किय गये जिहाद के बाद ही प्राप्त हो सकती थीं। उनसे कहा गया कि कश्मीर में ज़ालिम हिन्दू बेचारे मुसलमानों पर बेइन्तहा जुल्म कर रहे हैं। इस झूठ का सहारा लेकर ही कबाइलियों को उत्तेजित किया गया और वे कश्मीर को रौंदने के लिये चल पड़े। "उनका नेतृत्व वे अनुभवी सैनिक कर रहे थे जिन्हें ब्रिटिश भारतीय सेना से लिया गया था।उन्होंने शस्त्रों की तस्करी की व्यवस्था तो की ही, उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रांत में हथियारों की व्यवस्था के लिये भी हरकारे भेजे क्योंकि छोटी बन्दूकों और गोलियों का निर्माण वहां बरसों से होता चला आ रहा था।[6]

## नरसंहार

पाकिस्तान ने ज़ोर–शोर से राज्य पर आक्रमण करने की तैयारियां शुरू कर दीं। पहले तो जम्मू संभाग के मुस्लिम बहुल इलाकों में हथियारबंद विद्रोह भड़काया गया। इन ज़िलों में मुस्लिम लीगी तत्त्वों ने पाकिस्तानी पंजाब के साथ लगने वाली राज्य की सीमा के पास से अस्त्र–शस्त्र लाकर इकट्ठे कर रखे थे। अपनी पुस्तक 'नेहरू–टन इयर्स ऑफ़ पॉवर' में विन्सेंट शीन कश्मीर पर कब्ज़ा करने की पाकिस्तानी कोशिशों के बारे में लिखते हुये कहते हैं कि, 'इस वर्ष (1947) में सितंबर के आरंभ से ही, पठान कबाइली जम्मू–व–कश्मीर की सीमाओं के पास जमा हो रहे थे और शीघ्र ही जम्मू का पश्चिमी भाग(पुंछ क्षेत्र) उनके क़ब्ज़े में आ गया। अक्तूबर के मध्य में उन्होंने आधुनिक हथियारों के साथ कश्मीर में घुसपैठ कर दी। इतने आधुनिक हथियार सेना के सिवा कहीं से नहीं आ सकते थे। हमले की पूर्वपीठिका के रूप में उन्होंने जम्मू क्षेत्र के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में हिंसा फैलायी जिसमें भारी संख्या में हिन्दू और सिक्ख मारे गये और जो बच गये उन्हें भागना पड़ा। कुछ आकलनों के अनुसार लगभग तीस हज़ार

**महाराजा अपने भविष्य को लेकर चिंतित थे और नेहरू टालमटोल कर रहे थे। मगर समय अपनी गति से चल रहा था। जो हृदय विदारक घटनाएं देश-विभाजन के साथ-साथ घट रही थीं वे जम्मू-व-कश्मीर राज्य में भी होने लगीं**

# कश्मीर के रक्षक: मकबूल शेरवानी

प्रतिवर्ष अपने शौर्य दिवस पर भारतीय सेना कश्मीर के रक्षक मोहम्मद मकबूल शेरवानी का स्मरण करती है। सेना ने बारामूला शहर में उनके नाम पर एक स्मारक भवन का निर्माण भी करवाया है। परन्तु इसके अलावा कोई भी अपने इस रक्षक की याद में कोई दिन नहीं मनाता जिसे कबीलाई फ़ौज ने 7 नवंबर 1947 को पकड़ लिया था और उन्हें वाकई में ही सूली पर चढ़ा दिया गया था।

मकबूल के साहसी कामों को बताते हुए उनके भाई गुलाम मोहम्मद शेरवानी, बारामूला जिला कांग्रेस समिति के महासचिव, कहते हैं "1947 में, युवा मोहम्मद मकबूल शेरवानी महज़ 19 वर्ष के थे, मगर उन्होंने बारामूला से हजारों कबीलियों की फ़ौज को अकेले ही रोका था, और उन्होंने भारतीय सेना को इस प्रकार पर्याप्त समय दिया कि वह श्रीनगर में आ पाए और उन कबीलियों को वापस भेज सके। घुसपैठियों ने उन्हें एक लकड़ी के क्रॉस पर टांगा, उन्हें कीलों से ठोंका और उन पर 10–15 बार गोलियां चलाईं। वह इसी स्थिति में दो से तीन दिन तक रहे। उनके शरीर को केवल तब लाया गया जब सेना उस स्थान पर पहुँची।"

गुलाम मोहम्मद कहते हैं कि जब घुसपैठिये श्रीनगर की तरफ बढ़ रहे थे, तब मकबूल शेरवानी ने घुसपैठियों को गलत रास्ता बता दिया और उन्हें चार दिन तक भटकने दिया, जिससे भारतीय सेना रक्षा करने के लिए श्रीनगर तक पहुँच जाए। जब मकबूल को घुसपैठियों ने पकड़ लिया, तो घुसपैठियों के अमीर ने बहुत ही प्यार से मकबूल से कहा "तुम बहुत ही प्रतिभाशाली युवा हो। अगर तुम हमारे साथ आ जाओ, तो हम तुम्हारी जान बख्श देंगे। तुम्हारा दिल बदल गया है, इस बात को साबित करने के लिए तुम्हें हमें शाल्तेंग में राज्य की सेना और भारतीय सेना की गोपनीय स्थिति बतानी होगी और उसके साथ ही यह भी बताना होगा कि श्रीनगर हवाई अड्डे तक पहुँचने का सबसे छोटा रास्ता कौन है।" शेरवानी का जबाव था "नहीं यह कभी भी नहीं होगा" अमीर ने एक कागज़ पर उर्दू में लिखा कि "शेरवानी एक धोखेबाज़ है और इसकी सजा केवल मौत है।" और उसे शेरवानी के माथेपर चिपका दिया। अमीर ने अपने आदमियों को आदेश दिया "इसके कान और इसका निर्जीव शरीर और इसकी बाहें चौकियों पर बाँध दो, जिससे यहाँ से गुजरने वाला हर आदमी इसे देख सकें।।। गोली चलाओ।।।।।।"

8 नवम्बर 1947 को जब बारामूला से घुसपैठियों को बाहर खदेड़ दिया गया। लोगों को आज़ाद कराने के बाद जो सबसे पहला काम था वह था शेरवानी के मृत शरीर को लेना और उसे पूरे सैनिक सम्मान के साथ शहर की जुमा मस्जिद की कब्रगाह में दफनाना।

अपने बचपन से ही मकबूल शेख मुहम्मद अब्दुल्ला का समर्पित कार्यकर्ता था। वह अपनी मंगेतर ज़ेबा के साथ निकाह के बंधन में बंधने से पहले ही शहीद हो गया था। जब मोहम्मद अली जिन्ना कश्मीर गए थे और उन्होंने जब बारामूला में अपने दो राष्ट्र वाले सिद्ध ांत के बारे में बात की, तो शेरवानी ने उनसे मंच से नीचे आने के लिए कहा और इसने उनके भाषण को रोका। शेख अब्दुल्ला के द्वारा वर्ष 1939 में स्थापित आल जम्मू एंड कश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस की स्थापना के समय से ही मकबूल शेरवानी उन चालीस लाख कश्मीरियों के राष्ट्रीय उद्देश्य का प्रबल समर्थक था जो डोगरा वंश से आज़ादी चाहते थे। मगर आज शेरवानी को धोखेबाज़ और भारतीय एजेंट के रूप में देखा जा रहा है। बाद में आई सरकारों ने उन्हें बहुत अनदेखा किया है।" गुलाम मोहम्मद बहुत ही दर्द के साथ कहते हैं।

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के बारे में वे कहते हैं कि वे एक स्वार्थी व्यक्ति थे जिन्होंने सत्ता पाने के बाद अपने वफादार

कार्यकर्ताओं की कभी परवाह नहीं की। यह परम्परा अभी तक नेशनल कान्फ्रेंस में कायम है। वे आगे कहते हैं कि "जब मेरे भाई की हत्या हुई, मकबूल के पिता मोहम्मद शेरवानी ने शेख अब्दुल्ला से मुलाक़ात की और उनसे अपने दूसरे बेटे के जीवनयापन के लिए व्यवस्था की मांग की। शेख अब्दुल्ला ने कोई ध्यान नहीं दिया।"

मकबूल शेरवानी के परिवार से केवल गुलाम मोहम्मद एकमात्र ऐसे व्यक्ति रहे जिसने 1958 में राजनीति में प्रवेश लिया जब वे शिक्षा विभाग में काम कर रहे थे। बाद में वे 1975 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सक्रिय सदस्य बन गए थे, उन्होंने कहा कि भारत और पाकिस्तान के बीच चल रही कश्मीर वार्ता का कोई हल नहीं निकलेगा और कश्मीर हमेशा ही एक विवाद का विषय रहेगा।

उन्होंने कहा "वे लोग जो पाकिस्तान या पाक अधिकृत कश्मीर में गए, वे निजी बातचीत में कहते हैं कि उन्हें पाकिस्तान से कोई प्यार नहीं है।" राज्य के वर्तमान राजनीतिक हालातों पर बात करते हुए उन्होंने कहा कि जम्मू और कश्मीर में गठबंधन सरकारें नहीं चलतीं। ■

**–आर.सी. गंजू**

लोग मारे गये और जो बच गये उन्हें भागना पड़ा। कुछ आकलनों के अनुसार लगभग तीस हज़ार लोग मारे गये और एक लाख को शरणार्थी होना पड़ा। 4 सितंबर 1947 को जम्मू–व–कश्मीर राज्य सैन्य बल के अंग्रेज़ सेनाध्यक्ष ने राज्य सरकार को एक रिपोर्ट दी जिसके नुसार 2 और 3 सितंबर 1947 को हथियारबंद मुसलमान, जो मुख्यतः रावलपिंडी के निवासी थे, राज्य में घुसपैठ कर गये थे।

इस आक्रमण की योजना बनाकर उसका कार्यान्वयन किया था पाकिस्तान के प्रधान–मंत्री लियाक़त अली ख़ां ने जिसके पास रक्षा–मंत्रालय भी था। उसके विश्वस्त सहयोगियों में थेकृरक्षा सचिव सिकन्दर मिर्ज़ा (बाद में पाकिस्तान के राष्ट्रपति), ख़ान अब्दुल क़यूम ख़ां (उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रांत के मुख्यमंत्री) और इसहाक़ ख़ान (बाद में राष्ट्रपति), जो प्रांतीय नौकरशाह के रूप में मुख्यमंत्री के कर्मचारियों में से थे। जिन्ना के सचिव खुर्शीद हसन खुर्शीद जो स्वयं कश्मीरी थे लिखते हैं, "लगता है कि जिन्ना को हमला शुरू होने से कुछ ही दिन पहले इसके बारे में बताया गया था और श्रीनगर के इस विजय अभियान की शुरुआत के समय उपस्थित रहने के लिये एबटाबाद में उपस्थित रहने के लिये आमंत्रित किया गया था।[7] अक्तूबर 1947 में कश्मीर पर किये गया इस आक्रमण की योजना यों तो पाकिस्तान में उच्चतम प्रशासनिक स्तरों पर तैयार की गयी थी, फिर भी पाकिस्तानी सेना का इसमें सीमित योगदान था। इसके बाद जब यह आक्रमण विस्तारित होता चला गया तो दो नव–स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच पूर्ण सैनिक संघर्ष में बदल गया। उस समय भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों के सेनाध्यक्ष अंग्रेज़ थे। साथ ही भारत का गवर्नर जनरल भी माउंटबैटन था जो कि अंग्रेज़ था। पाकिस्तानी सेना के अधिकांश अधिकारी (कुल मिलाकर 700) अंग्रेज़ थे जब कि भारतीय सेना में भी उनकी संख्या लगभग 300 थी। सर रॉय बूचर भारतीय सेना और जनरल डगलस ग्रेसी पाकिस्तनी सेना के सेनाध्यक्ष थे। दोनों ही देशों कि सेनाओं के तीनों अंगों का नेतृत्व ब्रिटिश अधिकारी ही कर रहे थे। इसलिये सामरिक योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये

*अक्टूबर, 1947 में कबायलियों ने कश्मीर में घुसपैठ शुरू की*

भारत पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं था। संभवतः यही हाल पाकिस्तान का भी था परन्तु वहां काफ़ी सीमा तक ब्रिटेन के अपने हित और पाकिस्तान के हित एक समान थे।

अतः अंग्रेज़ों ने सुनिश्चित किया कि जब भारत को ध्यान में रखते हुये उनके उद्देश्य अधिक से अधिक सीमा तक पूरे हो रहे हों, तो युद्ध का एक निश्चित अंत न हो। चन्द्रशेखर दासगुप्ता, जो एक प्रसिद्ध राजनयिक और एक महत्वपूर्ण पुस्तक वार एण्ड डिप्लोमेसी इन कश्मीर, 1947–48 के लेखक हैं ने रश्मि सहगल के साथ एक साक्षात्कार में बताया था, "स्पष्ट है कि अंग्रेज़ समूचे जम्मू–व–कश्मीर को भारत में नहीं चाहते थे। लंदन में सब यही महसूस कर रहे थे कि यदि पाकिस्तान के साथ लगने वाले क्षेत्रों पर भारत का नियंत्रण रहता है तो पाकिस्तान का अस्तित्व ही मिट जाएगा। यदि भारतीय सेना रावलपिण्डी से इतनी दूरी पर हो कि आसानी से हमला कर सके तो पाकिस्तान के लिये गंभीर समस्या हो जाएगी।" अंग्रेज़ कितने विश्वासघाती थे यह इसी बात से समझा जा सकता है कि भारत के नये सेनाध्यक्ष जनरल लोकार्ट ने भारत को यह महत्वपूर्ण सूचना देना आवश्यक नहीं समझा कि उसे इस बात की सूचना है कि क़बाइली हमलावर कश्मीर पर कब्ज़ा करने के लिये आगे बढ़ रहे हैं। इस बात का पता आक्रमण के दो महीनों बाद चला। इस अंग्रेज़ सेनाध्यक्ष ने तो हमलावरों का प्रतिरोध करने के लिये महाराजा की सेनाओं को सैनिक साज़ो–सामान उपलब्ध कराने के निर्देशों का भी पालन नहीं किया। फिर क्या होना था। जनरल साहब को इस्तीफ़ा देना पड़ा।

24 अक्तूबर 1947 दूरस्थ दक्षिण–पूर्व कश्मीर में स्थित बारामुल्ला के विनाश का दिन। श्रीनगर को जाने वाली सड़क पर, वहां से 56 किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह पहला और एकमात्र बड़ा क़स्बा था। इसकी 14000 की आबादी में से अधिकांश स्थानीय मुसलमान थे। फादर जॉर्ज शैंक्स, एक मिशनरी पादरी जो उस समय बारामुल्ला में ही थे अनुशासनहीन कबाइली लड़ाकों का वर्णन करते हुये कहते हैं कि वे गंदे से, खून से सने हुये, उलझे हुये बालों और दाढ़ियों को चेहरे पर ज़बरदस्ती चिपकाए हुये से दिख रहे थे। उनमें से कुछ तो कंबल ओढ़े हुये थे और कुछ बिल्कुल ही ख़ाली हाथ थे। उनके पास सीमांत प्रांत में बनी दुनाली बंदूकें, रिवाल्वर, ख़ंजर, तलवारें और कुल्हाडियां थीं और कुछ ऐसे भी थे जिनके पास स्टेनगन दिख रही थी। एक दूसरे को धक्का देते, चिल्लाते, गालियां देते और

झगड़ते हुये वे ऐसे बढ़े चले आ रहे थे मानो नदी का बांध टूट गया हो। कबाइलियों ने ईसाई मिशन के भवन में लूटमार की, मुसलमानों के घरों और दुकानों को लूटा, सिक्ख लड़कियों और औरतों का अपहरण किया। लूट के माल के लालच में वे वहीं रुके रहे और कश्मीर की राजधानी तक पहुंचने में उन्हें देर हो गयी।[8] कबाइलियों ने ऐसी लूटमार और नरसंहार किया जैसा दशकों से नहीं देखा गया था, ऐसी तबाही मचाई कि कस्बे में मात्र 3000 लोग ही बचे रहे। बारामुल्ला कबाइलियों के लिये सोने की चिड़िया साबित हुआ। उन्हें लूट का काफ़ी सामान मिला और यही लालच देकर तो उनमें से अधिकांश को इस अभियान पर भेजा गया था। अभियान को कुछ देर के लिये रोक दिया गया ताकि कबाइली दिल खोलकर बलात्कार और लूटमार कर सकें। उनमें से अनेकों ने जितना भी हो सका लूट का सामान घोड़ों, गधों और जो भी वाहन मिला, उसपर लाद दिया और घर लौट गये।

लूटमार, बलात्कार, अपहरण, यातना और जो भी अत्याचार हो सकता था अन्य स्थानों पर भी दोहराया गया। इनमें सबसे अधिक क्रूरता और नृशंसता मीरपुर की तबाही में देखने को मिली जिसे हमलावर पठानों ने 26 नवंबर,1947 को जलाकर राख कर दिया। "सैंकड़ों सिपाहियों और नागरिकों को बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया गया। माले ग़नीमत के रूप में अनगिनत औरतें उठा ली गईं। जेहलम के बाज़ारों में नग्नावस्था में इन औरतों का जुलूस निकाला गया। उनमें से कईयों को 150 रुपये प्रति औरत की दर से बेच दिया गया।[9] इंदर सिंह बाली, सुपुत्र सरदार तहल सिंह, स्टेट जागीरदार, मीरपुर ख़ास इस त्रासदी के अनुभव को यों बताते हैं, " हमारे दल में से लगभग 300 लड़कियां ज़बरदस्ती उठा ली गयी थीं और जब हम थातला कैम्प पहुंचे तो जो हिन्दू वहां पहले ही पहुंच चुके थे उन्होंने बताया कि उनकी 500 लड़कियां भी वैसे ही उठा ली गई थीं। थातला में .303 राइफलों से लैस लगभग 2000 पठान दिखाई दे रहे थे।[10] मानव जीवन के ऐसे क्रूर तिरस्कार की ओर भारत के सर्वोच्च नेताओं का ध्यान जाना स्वाभाविक था। इस बारे में पंडित नेहरू पाकिस्तानी प्रशासकों से लगभग रोज़ ही बात करते थे। मीरपुर के पतन के कुछ ही समय बाद उन्होंने पाकिस्तानी प्रशासकों को यह तार भेजाः

## पाकिस्तान के प्रधानमंत्री को भारत के प्रधानमंत्री की ओर से

मुझे सूचना मिली है कि अगवा की गई 3000 हिन्दू औरतें गुजरात और भिंबर लाई गयी हैं और 150 रुपये प्रति औरत की दर से जानवरों की तरह बेची जा रही हैं। लाहौर में तैनात सहायक उच्चायुक्त के एक अधिकारी को मैं निर्देश दे रहा हूं कि वह व्यक्तिगत रूप से स्वयं गुजरात जाकर स्थिति का आकलन करे और आशा करता हूं कि पंजाब सरकार उसे आवश्यक सुविधाएं प्रदान करेगी।[11] अगले ही दिन 2 दिसंबर 1947 को नेहरू ने दूसरा तार भेजाः

## लियाक़त अली ख़ां को जवाहरलाल नेहरू की ओर से

मुझे सूचना मिली है कि मीरपुर क़स्बे को पूरी तरह से तबाह कर दिया गया है और 13000 ग़ैर–मुसलमानों( 26000 के आधे) में से केवल 2000 (4000 से आधे), जेहलम से 15 मील के क्षेत्र के भीतर पहुंचे हैं। इन शरणार्थियों और शेष मीरपुर के 3000 शरणार्थियों (6000 के आधे) का क्या हुआ कुछ नहीं पता। परंतु ये सूचनाएं भी मिली हैं कि पठान अपहृत हिंदू स्त्रियों को बड़ी संख्या में जेहलम ज़िले में लाए हैं। पठान अंधाधुंध गोलीबारी करके गैर–मुस्लिम शरणार्थी शिविरों में आतंक फैला रहे हैं।[12] इसके बाद अगले ही दिन 3 दिसंबर 1947 को एक और तार भेजा गया, "मैं आपका ध्यान कश्मीर राज्य की सीमा के साथ लगे पश्चिमी पंजाब में भारी संख्या में जमा हो रहे कबाइली और अन्य लोगों की और आकर्षित करवाता रहा हूं और इस बात को लेकर चिंतित हूं कि भारी संख्या में कश्मीरी औरतों को पश्चिमी पंजाब ले जाकर बेचा जा रहा है।"[13] आक्रमणकारियों की इस अमानवीयता की पुष्टि अन्य स्रोतों से भी होती है। पाकिस्तान में भारत सरकार के एक गुप्तचर अधिकारी ने एक रिपोर्ट भेजी जिसमें कहा गया था, "जेहलम में हमारे कर्मचारियों के अतिरिक्त कोई हिन्दू नहीं बचा। ज़िला संपर्क अधिकारी जिसे या तो ज़िले के उच्चाधिकारियों से प्राप्त सूचनाओं पर निर्भर रहना पड़ता है या फिर मुसलमान मित्रों से हालात का ब्यौरा लेना पड़ता है, अपनी रिपोर्ट में कहता है कि मीरपुर से अगवा करके लाई गई लड़कियां जेहलम नगर में 20 रुपये प्रति लड़की बेची गयी थी। स्थानीय पुलिस हस्तक्षेप करने से इनकार कर रही है क्योंकि लड़कियां पंजाब से नहीं उठाई गयी हैं। जिन हथियारबंद पठानों के कब्ज़े में ये लड़कियां हैं उनका व्यवहार ही ऐसा है कि पुलिस असहाय खड़ी देखते रहने के सिवा कुछ नहीं कर सकती।[14]

## भारत का सैनिक हस्तक्षेप

विलय के औपचारिक प्रपत्र पर जम्मू–व–कश्मीर के महाराजा के हस्ताक्षर के बिना भारत अपनी सेना वहां भेजने के लिए तैयार नहीं था। 26 अक्तूबर 1947 को अंततः वह तैयार हुआ और रात में ही भारतीय सेना की सिक्ख रेजीमेंट को तैयार होने का आदेश मिला। अगली सुबह 27 अक्तूबर 1947 को सिपाही दिल्ली के बाहर पालम हवाई अड्डे पर जमा हुये। उनका उद्देश्य स्पष्ट थाकृअग्रिम दस्ते के रूप में कश्मीर पहुंचकर वायुमार्ग से भारतीय सेना को कश्मीर में उतारने के लिये घाटी को सुरक्षित बनाना। यह पहला दस्ता जब कश्मीर में उतरा तो कबाइली श्रीनगर के बाहरी इलाके शालटेंग तक पहुंच चुके थे। श्रीनगर तो बस हाथ भर की दूरी पर था। भारतीय सेना ने असाधारण शौर्य का प्रदर्शन करते हुये कुछ असंभव से युद्धों को जीतकर

**विलय के औपचारिक प्रपत्र पर जम्मू-व-कश्मीर के महाराजा के हस्ताक्षर के बिना भारत अपनी सेना वहां भेजने के लिए तैयार नहीं था। 26 अक्टूबर 1947 को अंततः वह तैयार हुआ और रात में ही भारतीय सेना की सिक्ख रेजीमेंट को तैयार होने का आदेश मिला**

## महावीर चक्र विजेता नौशेरा उद्धारक

# ब्रिगेडियर मोहम्मद उस्मान

ब्रिगेडियर मोहम्मद उस्मान, एमवीसी का जन्म 15 जुलाई 1912 को बीबीपुर, आजमगढ़, जिला उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनके पिता, खान बहादुर मोहम्मद फारुख एक जाने–माने सम्मानित पुलिस अधिकारी थे। वाराणसी में शहर कोतवाल के रूप में उन्होंने द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को लेकर पैदा हुए एक गंभीर विवाद से निपटने में अग्रणी भूमिका निभाई थी। इस भिड़ंत में उनकी निष्पक्षता की सभी ने खूब तारीफ की थी। इस तरह की खासियतों का असर उनके बच्चों पर होना ही था। इसलिए यह कोई ताज्जुब की बात नहीं थी कि युवा उस्मान के व्यक्तित्व में देशभक्ति की भावना और अखंड भारत की भावना का प्राधान्य था।

उस्मान की पढ़ाई वाराणसी के हरीश चंद्र भाई स्कूल में हुई थी। स्कूल में ही उस्मान ने सेना में जाने का मन बना लिया था। किसी भारतीय के लिए उच्च पदासीन अफसर बनने की संभावना सीमित थी और भारी प्रतिस्पर्धा के बावजूद उस्मान प्रतिष्ठित रॉयल मिलिट्री एकेडमी में प्रवेश पाने में कामयाब रहे। प्रशिक्षण खत्म होने पर उस्मान को बलूच रेजीमेंट में नियुक्त किया गया। बलूच रेजीमेंट अधिकारी के रूप में उस्मान ने 1947 के बंटवारे के समय की पैशाचिक परिस्थियों को झेला था। पाकिस्तानी सेना में शामिल होने का विकल्प होने के बावजूद ब्रिगेडियर एम. उस्मान अपनी मातृभूमि के आदर्शों के प्रति कटिबद्ध रहे। चूंकि बलूच रेजीमेंट पाकिस्तान को आवंटित था, इसलिए ब्रिगेडियर एम. उस्मान को डोगरा रेजीमेंट में स्थानांतरित कर दिया गया।

22 अक्टूबर 1947, को पाकिस्तान ने कुछ आदिवासियों और अपने सैनिकों को जम्मू और कश्मीर में भेजकर भारत पर युद्ध थोप दिया था। यहां तक कि कश्मीर घाटी में जब स्थिति स्थिर हुई तो भी जम्मू क्षेत्र में खतरा गंभीर बना रहा। ब्रिगेडियर एम. उस्मान, कमांडर 77 पैराशूट ब्रिगेड को दिसंबर 1947 में झांगर में तैनात 50 पैराशूट ब्रिगेड का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। स्थितियां उनके प्रतिकूल थीं इसलिए 25 दिसंबर 1947 को पाकिस्तानियों ने झांगर पर कब्जा जमा लिया। ब्रिगेडियर उस्मान ने उस दिन झांगर पर वापस कब्जा करने की कसम खाई जिसे उन्होंने तीन महीने बाद पूरा किया। झांगर जीतने के बाद मजबूत हुए पाकिस्तानियों ने नौशेरा को घेर लिया और स्थिति गंभीर हो गई। ढेर सारी मुश्किलों के मद्देनजर उन्होंने 6–7 फरवरी 1948 को हुए एक अहम युद्ध में नौशेरा को सुरक्षित रखने की व्यवस्था की। इसमें संख्या के लिहाज से बेहतर पाकिस्तानी सेना की हार हुई। यह इस अभियान का एक महत्वपूर्ण बिन्दु साबित हुआ और ब्रिगेडियर एम. उस्मान को बहादुरी के दो खिताब– "हीरो ऑफ नौशेरा" ("नौशेरा के वीर") और "सेवियर ऑफ नौशेरा" ("नौशेरा के उद्धारक") मिले।

ब्रिगेडियर उस्मान हर शाम 5.30 बजे अपने यूनिट कमांडर की कांफ्रेंस आयोजित करते थे। यह कांफ्रेंस ब्रिगेड सैंड मॉडल रूम के अंदर हुई जो कुछ तंबुओं को एक साथ मिलाकर बनाया गया था। 3 जुलाई को कांफ्रेंस अपने सामान्य समय से पहले पूरी हो चुकी थी। 5.45 बजे क्रॉस रोड के 500 गज उत्तर, ब्रिगेड मुख्यालय के पास 25 पौंड वाले चार गोले गिरे। कई लोगों ने इसे सपोर्टिंग गन का गोला समझा जो बहुत करीब से दागा जाता है।

अगले हमले का असर वहीं होना शुरू हुआ जो उनका लक्ष्य था ब्रिगेड मुख्यालय। लिहाजा लोग छिपने के लिए जगह ढूंढ़ने इधर–उधर भागने लगे।

ब्रिगेडियन उस्मान ने एक बड़े लटके हुए पत्थर के नीचे शरण ली जो खेतों में सिगनलर के बंकर के ठीक ऊपर था। उनके साथ माउंटेन बैट्री कमांडर, मेजर भवन सिंह और उनके खुफिया अधिकारी कैप्टन एस.सी. सिन्हा थे। सिन्हा कहते हैं, 'पत्थर की छत के नीचे ब्रिगेडयर उस्मान जल्दी ही पहले की तरह फुर्ती से काम कर रहे थे।' दुश्मन की बंदूकों को शांत करने की एक कोशिश के तहत हमारी टुकड़ी ने फायरिंग शुरू की। इसकी व्यर्थता को महसूस करते हुए

उस्मान ने आदेश दिया कि वे झांगर से उत्तर प्वाइंट 3150 पर ध्यान दें। वह अकेली जगह थी जहां से दुश्मन ब्रिगेड मुख्यालय पर नजर रख सकते थे और इस पर गोलियां दाग सकते थे। नए लक्ष्य पर गोलियां बरसाने का असर हुआ। दुश्मनों ने गोलियां चलाना बंद कर दिया। गोलियों की बरसात के दौरान ब्रिगेडियर उस्मान सिगनलर्स बंकर की ओर बढ़े। पर दुर्भाग्य से एक गोला वहां फटा जहां उन्होंने पहले शरण ले रखी थी इससे वे खुले में आ गए। ज्यादातर स्प्लिंटर उन्हें लगे और वे बंकर के प्रवेश पर गिरकर मर गए।

गोलियां सारी रात चलती रहीं। सुबह से पहले तक दुश्मनों ने झांगर पर 800 गोले दागे थे। पर इसके पीछे इनफैन्ट्री का हमला नहीं था। एकाध जगह घुसपैठ रोकने की कोशिश जरूर हुई थी और यह दो जगहों पर लगभग एक कंपनी के बराबर की पार्टी थी। उस रात कुल हताहतों की संख्या ब्रिगेडियर उस्मान के अलावा अन्य चार थी, आठ जख्मी हुए थे। इनमें तीन अधिकारी थे।

50 पैराशूट ब्रिगेट का नेतृत्व करते हुए ब्रिगेडियर उस्मान ने काफी कुछ हासिल कर लिया था। उन्होंने नौशेरा को बचा लिया था और ब्रिगेड को वापस झांगर ले आए थे। उनके पार्थिव शरीर को उनके अपने काफिले में जम्मू ले जाया गया था। रास्ते भर लोग चुप–चाप खड़े थे। जम्मू से उन्हें विमान से ले जाया गया जहां उन्हें राजकीय सम्मान के साथ अंतिम विदाई दी गई। ब्रिगेडियर उस्मान को 50 पैरा ब्रिगेड के उनके पूरी नेतृत्व की अवधि के दौरान 'उनके प्रेरक नेतृत्व और उल्लेखनीय हिम्मत' के लिए महावीर चक्र दिया गया।

इस व्यक्ति के कद और इनके योगदान का पता इस बात से लगता है कि इंडिया गेट पर उनके अंतिम दर्शन के लिए बड़ी संख्या में लोग इकट्ठा हुए थे। जामिया मिलिया में उनके अंतिम संस्कार में उस समय के गर्वनर जनरल लॉर्ड लुइस माउंटबैटन, प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, शेख मोहम्मद अब्दुल्ला, सरदार बलदेव सिंह और कई अन्य राष्ट्रीय नेता शामिल हुए थे।

ब्रिगेडियर एम. उस्मान, एमवीसी ने 1947–48 के जम्मू और कश्मीर ऑपरेशंस के एक अहम क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। बेशक वे वीरता के शिखर, महान राष्ट्रभक्त और राष्ट्रवादी थे जो हमेशा हमारे राष्ट्रीय वीरों के बीच सम्मान की जगह पाएंगे। ■

**–क. तिक्कू**

कबाइली हमलावरों को पीछे धकेल दिया।

कड़ाके की सर्दी के महीने आ गये थे और युद्ध धीमा और कठिन हो चला था। इस दौरान 1 जनवरी 1948 को भारत इस मामले को संयुक्त राष्ट्र में ले गया, जहां एक वर्ष तक इसपर बहद होती रही।इस दौरान कबाइलियों को कई बार मुंह की खानी पड़ी और भारतीय सेना विजय पर विजय प्राप्त करती रही। तब तक कबाइलियों के साथ पाकिस्तानी सेना भी आ गयी थी। 1948 तक आते–आते यह युद्ध पूरी तरह से भारत–पाक युद्ध में बदल चुका था।

राज्य के रणक्षेत्रों में युद्ध लड़ा जा रहा था और संयुक्त राष्ट्र इस युद्ध को लेकर बहस कर रहा था। वहां चार प्रस्ताव पारित किये गये जिनमें सबसे महत्वपूर्ण था 13 अगस्त, 1948 का प्रस्ताव जिसके तीन भाग थे:

1. इसका संबंध युद्ध विराम को लागू करके युद्ध रोकने से है। इस प्रस्ताव की स्वीकृति के चार दिनों के भीतर भारत और पाकिस्तान दोनों को ही युद्ध–विराम के आदेश जारी करने होंगे। 17 अप्रैल 1948 को पारित किये गये प्रस्ताव के अनुसार दोनों देशों की सहमति से, दोनों के बीच मध्यस्थता करने ले एक आयोग का गठन होगा जो युद्धविराम की निगरानी करने के लिये पर्यवेक्षकों को नियुक्त करेगा।

2. दूसरा भाग कई उपभागों को मिलाकर बना है। ये उपभाग हैं: (एक) पाकिस्तान जम्मू–व–कश्मीर से अपनी सेनाएं हटा लेगा। (दो) कबाइली और पाकिस्तानी नागरिक भी वहां से निकल जाएंगे।(तीन) पाकिस्तानी सेनाओं द्वारा ख़ाली किये गये क्षेत्रों का प्रशासन आयोग की निगरानी में स्थानीय अधिकारी चलाएंगे। (चार) जब आयोग इस बात की अधिसूचना जारी करेगा कि सभी कबाइली और पाकिस्तानी नागरिक कश्मीर से निकल चुके हैं और पाकिस्तानी सेनाओं ने निकलना शुरू कर दिया है तो भारत अपनी अधिकांश सेनाओं को राज्य से निकालना आरंभ कर देगा। (पांच) क़ानून और व्यवस्था बनाए रखने में स्थानीय प्रशासन की सहायता करने के लिये भारत वहां न्यूनतम सैन्यबल को बनाए रखेगा। यह उन नियमों के अनुसार होगा जो युद्ध विराम लागू होते समय प्रभावी होंगे।

3. इस भाग के अनुसार "भारत और पाकिस्तान की सरकारें इस बात की पुष्टि करती हैं कि भविष्य में जम्मू–व–कश्मीर की स्थिति वहां की जनता की मर्ज़ी को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाएगी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, इस समझौते की स्वीकृति के बाद, दोनों ही देश सहमत हैं कि लोगों की मर्ज़ी की स्वतंत्र अभिव्यक्ति को सुनिश्चित करने के लिये, निष्पक्ष और न्यायसंगत वातावरण का निर्माण करने लिये आयोग के साथ विचार–विमर्श किया जाएगा।"[15]

भारत और पाकिस्तान के लिए संयुक्त राष्ट्र आयोग का एक महत्वपूर्ण आश्वासन यह था कि "यदि पाकिस्तान अगस्त 1948 के प्रस्ताव के भाग 1 और भाग 2 को लागू नहीं करता है तो भारत जनमत संग्रह के इस प्रस्ताव को मानने के लिए बाध्य नहीं होगा।"[16]

इसके बावजूद युद्ध विराम एक महीने बाद लागू हुआ।

**युद्धविराम रेखा (सीज़ फायर लाइन, बाद में नियंत्रण रेखा यानी लाइन ऑफ़ कन्ट्रोल)**

युद्धविराम प्रस्ताव 1 जनवरी 1949 से लागू हुआ और इसे कराची समझौते द्वारा औपचारिक स्वीकृति दे दी गयी। युद्धवएरम रेखा का निर्धारण भी वहीं किया गया। बाद

में यह रेखा नियंत्रण रेखा बना दी गई। युद्धविराम से यह सुनिश्चित हो गया कि जम्मू क्षेत्र की मीरपुर और पुंछ जागीरों के सभी ज़िले, मुज़फ़्फ़राबाद का पूरा ज़िला और घाटी में बारामुल्ला ज़िले का एक भाग, बल्तिस्तान का पूरा ज़िला, गिलगित एजेंसी और उस से जुड़ी दरदी एजेंसियां, पाकिस्तान के कब्ज़े में रहेंगी। इस बीच हरिसिंह ने 29 अक्तूबर, 1947 को राज्य की सत्ता नेश्नल कान्फ्रेंस को सौंप दी।

भारत–पाक सीमा लगभग 2500 किलोमीटर लंबी है जो उत्तर में कराकोरम से लेकर दक्षिण में कच्छ के रन तक फैली हुई है। चिनाब नदी के दक्षिण का क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय सीमा के रूप में रेखांकित किया गया है। परंतु इसके उत्तर में ग्रिड प्वांइट एन जे 9842 का क्षेत्र जो सियाचिन हिमनद से ठीक पहले पड़ता है, और लगभग 776 किलोमीटर लंबा है नियंत्रण रेखा के रूप में अंकित किया गया है। कराची समझौता ऐसा पहला समझौता था जिसमें विवादों को बातचीत के माध्यम से सुलझाने और युद्ध विराम रेखा को लेकर आपसी सहमति बनाने का प्रयत्न किया गया। दोनों पक्षों ने संयुक्त राष्ट्र भारत–पाक आयोग के आदेशानुसार इस समझौते पर हस्ताक्षर किये। ले.जनरल श्रीगणेश, मेजर जनरल के.एस. थिमैय्या और ब्रिगेडियर मानेक शॉ भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। पाकिस्तानी प्रतिनिधिमण्डल में मेजर जनरल डब्ल्यू.जे. काथॉर्न और नज़ीर अहमद शामिल थे। दस दिनों तक ज़बरदस्त मोलभाव होता रहा और तब जाकर 27 जुलाई 1949 को समझौते पर हस्ताक्षर किये गये। युद्धविराम रेखा को उसी स्थान पर अंकित किया गया जहां 1 जनवरी 1949 को दोनों देशों की सेनाएं तैनात थीं। इस समझौते के अनिवार्य बिन्दु यों थेः

1. दोनों सेनाओं को अपनी अपनी तरफ़ युद्धविराम रेखा से कम से कम 500 मीटर की दूरी पर स्थित रहना था।

2. दोनों ही पक्ष युद्धविराम रेखा के अपनी तरफ़ के क्षेत्र की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिये कुछ भी कर सकते हैं, परंतु तार या बारूदी सुरंगें किसी भी सूरत में नहीं लगाइ जानी चाहियें।

3. जम्मू–व–कश्मीर में कोई भी पक्ष अतिरिक्त सैन्य बलों की तैनाती नहीं करेगा।

4. आयोग जहां चाहेगा पर्यवेक्षकों की तैनाती करेगा। युद्ध विराम रेखाफ 1965 तक बनी रही जब ऑपरेशन जिब्राल्टर नाम का सैनिक अभियान आरंभ करके पाकिस्तान ने इसका उल्लंघन कर दिया। इसके बाद ताशकन्द समझौते पर हस्ताक्षर हुये। इसके अनुसार कराची समझौते को फिर से लागू कर दिया गया जिसके अनुसार 5 अगस्त 1965 से पहले की स्थिति को बने रहना था। पाकिस्तान ने छम्ब–जौडियां के कुछ क्षेत्रों से अपने सैनिक निकाल लिये और भारत ने सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हाजी पीर दर्रा लौटाया जो ऊडी–पुंछ बल्ज की ओर फैलता हुआ रणभूमि का एक महत्वपूर्ण भाग था।

वर्तमान नियंत्रण रेखा को सुनिश्चित करने वाली घटनाओं की अंतिम कड़ी है 2 जुलाई 1972 को किया गया शिमला समझौता। इस समझौते में नियंत्रण रेखा से जुड़े मुद्दे यों हैंः

"17 दिसंबर 1971 में हुये युद्ध विराम से जो नियंत्रण रेखा अस्तित्व में आई थी दोनों ही पक्ष उसका समर्थन करेंगे। सभी विवाद आपसी सहमति से द्विपक्षीय वार्ता या अन्य शांतिपूर्ण तरीक़ों से निपटाए जाएंगे।"

युद्धविराम रेखा के बारे में फैसला होने के दौरान कुछ ऐसी घटनाएं हुईं जिनसे पाक अधिकृत कश्मीर अस्तित्व में तो आया पर इन घटनाओं को क्यों होने दिया गया इनकी कोई तार्किक या सामरिक व्याख्या नहीं की जा सकी। उदाहरणार्थ, कोटली क़स्बे पर क़ब्ज़ा छोड़ दिया गया। इस बत को ध्यान में रखा जाना चाहिये कि ज़बरदस्त शौर्य और प्रतिबद्धता का प्रदर्शन करत हुये इस क़स्बे की घेराबंडी तोड़ी गई थी और 24 नवंबर 1947 को भारतीय सेना इस इस अधिकार करने में सफल रही थी। भारतीय सेना का यहां से निकलना स्थानीय लोगों के लिये अत्यंत निराशाजनक था क्योंकि तब तक अनेक बलिदान देकर और तकलीफ़ें सहकर वे वहां जमे रहे थे। अज्ञने एक आलेख में विश्वामित्र स्पष्ट करते हैं कि कोटली को पाक–अधिकृत कश्मीर के लिये छोड़ने का क्या कारण था, " शेख़ मुहम्मद अब्दुल्ला जो राज्य के प्रधान–मंत्री बन गये थे नहीं चाहत थे कि पहाड़ी और पंजाबी बोलने वाले मुसलमान उनके राज्य के निवासी हों।"

पाकिस्तान गिलगित–बल्तिस्तान से अपने सैन्यबलों, कबाइलियों और नागरिकों को सात हफ़्तों के भीतर निकालने के लिये सहमत हो गया था। बाद में इसने संयुक्त राष्ट्र से 12 हफ़्तों का समय मांगा पर फिर भी अपनी सेनाएं नहीं निकालीं। संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव में जिन अधिकृत क्षेत्रों को रेखांकित किया गया था उने अपनी सेनाएं निकालने से पाकिस्तान ने साफ़ इन्कार कर दिया था। इसके विपरीत उसने अपने लगभग 30,000 मिलिशिया सैनिकों को वहां बनाए रखा। इस मिलिशिय का निर्माण महाराजा की सेना के भगोड़े मुसलमान सिपाहियों, मिरपुर, पुंछ और सुधूंटी के उन पूर्व सैनिकों को लेकर किया गया था जिन्हें द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद ब्रिटिश भारतीय सेना की नौकरी से हटा दिया गया था। इनमें वे लोग भी आते थे जिन्हें राज्य पर हमला करने से पहले पाकिस्तानी सेना ने नौकरी पर रखा था।

## पाक अधिकृत कश्मीर की जनसंख्या और शरणार्थी समस्या

विभाजन के समय पाक अधिकृत कश्मीर में 12.5 प्रतिशत हिन्दू और सिक्ख रहते थे। आज वहां दोनों का ही नामोनिशान नहीं है। सिक्ख मुख्यतः मुज़फ़्फ़राबद ज़िले में रहते थे। 1947–48 में पाकिस्तान ने उस क्षेत्र प क़ब्ज़ा कर लिया तो इन लोगों को राज्य के दूसरे भागों में जाना पड़ा। "उनमें सेस अधिकतर ब्राह्मण थे जिन्हें राजा सुखजीवानंद वहां लाये थे। ये लोग महाराजा रणजीत सिंह के समय[17] में सिक्ख बन गये थे। इस समय कश्मीर घाटी के 8 ज़िलों के 121 गांवों में लगभग 80,000 सिक्ख रह रहे हैं।[18]

किसी भी युद्ध से पहले या बाद में जो मानवीय समस्याएं उत्पन्न होती हैं यह युद्ध भी उनसे रहित नहीं था। हज़ारों लोग रातोंरात शरणार्थी बन गये; 226,000 शरणार्थी भारत आ गये (जम्मू–व–कश्मीर मे 181,000)। हिन्दू और सिक्ख शरणार्थियों को अकल्पनीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वे जो उन क्षेत्रों से भागने के लिये मजबूर हो गये थे जिनपर पाकिस्तान

ने कब्ज़ा कर लिया था, उनका तो पुनर्वास ही नहीं हो पाया। उन्होंने सबकुछ वहीं छोड़ दिया और सीमा के इस तरफ़ आने के बाद उन्हें एक कानी कौड़ी भी नहीं मिली। इसके विपरीत जो मुसलमान पाक अधिकृत कश्मीर और पाकिस्तान चले गये उनकी ज़मीन जायदाद को राज्य सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। धीरे धीरे यह सारी जायदाद जोड़–तोड़ करके मुसलमानों या उनके नाम से बनाए गये ट्रस्टों को सौंपो दी गयी। हिन्दू और सिक्ख कहीं के न रहे। पाकिस्तान और पाक अधिकृत कश्मीर मे जो ज़मीन जायदाद और मन्दिर आदि, वे छोड़कर निकले थे, उनपर या तो मुसलमानों ने कब्ज़ा कर लिया या पाकिस्तान सरकार ने उन्हें अपने हाथ में ले लिया। अनेक धर्मस्थल ढहा दिये गये और उन स्थानों से सुविधानुसार काम लिया जाने लगा।

पंजाब का जो हिस्सा पाकिस्तान के कब्ज़े में आ चुका था वहां से जो लोग विस्थापित होकर जम्मू–व–कश्मीर आ गये उनके साथ तो और भी बुरा हुआ। 1947 से सांप्रदायिक उन्माद में ये लोग शरणार्थी बनकर आये थे तो महाराजा ने इन्हें शरण दी थी। परन्तु महाराजा के हटने के बाद 1947–48 में पाकिस्तान और पाक अधिकृत कश्मीर से आये इन हिन्दू और सिक्ख शरणार्थियों को शेख़ अब्दुल्ला ने कश्मीर में बसने नहीं दिया। आज भी वे न घर के हैं न घाट के, उन्हें तो राज्य का नागरिक भी नहीं माना जाता न ही राज्य की जनसंख्या का हिस्सा माना जाता है। इसके विपरीत मुसलमान शरणार्थी जहां से भी आये, उन्हें राज्य सरकार ने हाथों हाथ लिया और चुपचाप राज्य में बसा भी दिया। इनमें वे शरणार्थी भी थे जो तिब्बत और जिन्जियांग से आये थे (जहां से वे दो सदी पहले आये थे), पाक अधिकृत कश्मीर के शरणार्थी थे, जो 1965 और 1971 के युद्धों के दौरान जम्मू के सीमावर्ती ज़िलों से राज्य में घुस आये थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत में जो अफ़गान शरणार्थी कश्मीर में बस गये थे उन्हें भी नागरिक माना गया और अब रोहिंग्या शरणार्थी भी इसी प्रक्रिया के अंग के रूप में हमारे सामने हैं। राज्य में इन सबका पुनर्वास राज्य की जनसांख्यिकीय संरचना में मुसलमानों के प्रभुत्व को बनाए रखने और उसे मज़बूत करने के लिये किया गया। 1947 से 1950 के बीच हज़ारों डोगरा राजपूतों और पंजाबी भाषी व्यापारियों को घाटी छोड़ने के लिये विवश किया गया। इन लोगों को कश्मीर में रहते एक शताब्दी से ऊपर हो गया था। इसी अवधि में सिंकियांग और उसके साथ लने वाले क्षेत्रों से आने वाले मुसलमान शरणार्थियों को घाटी में बसने के लिये सहायता दी गयी।

**पंजाब का जो हिस्सा पाकिस्तान के कब्ज़े में आ चुका था वहां से जो लोग विस्थापित होकर जम्मू-व-कश्मीर आ गये उनके साथ तो और भी बुरा हुआ**

## पाक अधिकृत कश्मीर की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति

आर्थिक दृष्टि से तो पाक अधिकृत कश्मीर जम्मू–व–कश्मीर के सामने कहीं ठहरता ही नहीं है और राजनीतिक दृष्टि से भी इसके पास घास के तिनके जितनी भी स्वतंत्रता नहीं है। 1949 से 1974 के बीच इसका प्रशासन केन्द्र सरकार द्वारा सीधे रावलपिंडी से चलाया जाता था। संघीय सरकार में सेवारत अधिकतर प्रशासनिक उच्चाधिकारी पंजाबी या पश्तून थे।1974 में जुल्फ़िकार अली भुट्टो ने एक 'अंतरिम संविधान' के माध्यम से इसे एक स्वायत्त प्रशासनिक व्यवस्था उपलब्ध कराई। इसे अंतरिम इसलिए कहा गया क्योंकि पाक अधिकृत कश्मीर जम्मू–व–कश्मीर राज्य का एक भाग था और अंतिम संविधान जम्मू–व–कश्मीर राज्य की नियति को निर्धारित करने वाले 'जनमत संग्रह'के बाद ही अस्तित्व में आ सकता था। पाक अधिकृत कश्मीर में आज तक यही संविधान लागू है। इस अंतरिम संविधान के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं:

1. राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख होगा, प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख होगा और 48 सदस्य (40 सीधे चुनाव से और 8 परोक्ष चुना से) स्थानीय विधानसभा का गठन करेंगे।
2. राज्य का अपना राष्ट्रीय झंडा होगा और यह अपने पासपोर्ट जारी करेगा। परंतु किसी भी देश ने इन पासपोर्टों को मान्यता न दी। इसलिये लोगों को पाकिस्तानी पासपोर्ट पर ही यात्रा करनी पड़ी।
3. पाक अधीकृत कश्मीर को अपना राष्ट्रीय गान, एक चुनाव आयोग, एक महा लेखापरीक्षक, उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय और अधीनस्थ अदालतें उपलब्ध कराई गईं।

यह मात्र एक आवरण था जिसकी आड़ में पाकिस्तान इस राज्य पर अपनी मज़बूत पकड़ बनाए हुये है। राज्य को काम करने से रोकने के लिये अनेक प्रतिबन्ध लगाए गये हैं। कोई प्रत्याशी केवल उस स्थिति में चुनाव लड़ने योग्य माना जाता है जब वह एक घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करे कि पाक अधिकृट कश्मीर पाकिस्तान का हिस्सा है। पाक अधिकृत कश्मीर के अंतरिम संविधान की धारा 32 के अनुसार विधान सभा मुद्रा, व्यापार,विदेशी मामलों और राज्य की सुरक्षा से संबंधित कोई क़ानून नहीं बना सकती। पाक अधिकृत कश्मीर की सरकार के सभी महत्वपूर्ण निर्णय तब तक मान्य नहीं होंगे जब तक इस्लामाबाद स्थित 'आज़ाद जम्मू–व–कश्मीर परिषद' की स्वीकृति न मिले। यह परिषद एक संघीय मंत्री के अधीन रहकर कार्य करती है। इस मंत्री को "कश्मीर और उत्तरी क्षेत्र (पाकिस्तान) मामलों के संघीय मंत्री" के रूप में जाना जाता है। विधान परिषद का के पांच संघीय मंत्री होते हैं जिन्हें पाकिस्तान का प्रधानमंत्री चुनता है। प्रधानमंत्री ही इसकी बैठकों की अध्यक्षता भी करता है। इनके साथ परिषद में पाक अधिकृत कश्मीर के प्रतिनिधि के रूप में "कश्मीर और उत्तरी क्षेत्र (पाकिस्तान) मामलों का संघीय मंत्री" होता है जो एक पदेन सदस्य होता है, पाक अधिकृत कश्मीर का राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री या उसकी अनुपस्थिति में एक मंत्री, भी होते हैं। पाकअधिकृत कश्मीर पर संघीय सरकार की पकड़ बनाये रखने के लिये अनेक कठोर क़दम उठाये गये हैं। इतनी राजनीतिक बंदिशों के बावजूद इसे आज़ाद कश्मीर कहना तो विडम्बना ही कही जा सकती है। फिर भी दुष्प्रचार के अपने हथकंडों का बेहतरीन इस्तेमाल करके पाकिस्तान "कश्मीरियों को कब्ज़ा करने वाली

भारतीय फ़ौज के अत्याचारों का शिकार" बताकर सारी दुनिया को मूर्ख बना रहा है।

पाकिस्तान के उत्तरी क्षेत्रों के लोगों की हालत तो इससे भी बदतर है। इस क्षेत्र की अनेक राजनीतिक पार्टियों के नेता जो यहां के लोगों के अधिकारों के बारे में आवाज़ उठाते रहे हैं स्वयं को 'कहीं के नहीं' कहते हैं क्योंकि पाकिस्तान के लोग तो इनके साथ हैं ही नहीं। उत्तरी क्षेत्र (एन ए) को पाक अधिकृत कशमीर से अलग करके सीधे ही पाकिस्तान के नियंत्रण में लाया गया। अफ़ग़ान सीमा के साथ लगने वाले एफ ए टी ए यानी संघ शासित कबाइली क्षेत्र के साथ भी ऐसा ही किया गया था। यहां की व्यवस्था चलाने और और अफ़ग़ान सीमा के पास अपराधी क़बक़बीलों को के लिये ब्रिटिश सरकार ने सीमांत अपराध नियंत्रण क़ानून बनाया था। पासपोर्ट की सुविधा इस क्षेत्र के लोगों के लिये बिल्कुल बंद कर गई और उनकी विदेश यात्राओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया। क़ानून इतना कठोर था कि ह नागरिक को महीने में एक बार थाने में हाज़िरी देनी पड़ती थी। इसी तरह एक गांव से दूसरे गांव मे चले जाने पर भी थाने को बताना पड़ता था। एक आदमी की ग़लती पर समूचे गांव पर जुर्माना लगाना तो आम बात थी।1994 तक उत्तरी क्षेत्रों के निवासियोम को तो वोट देने का अधिकार भी नहीं था। न तो उनकी कोई विधान सभा थी और न ही नगरपालिका परिषद। राष्ट्रीय संसद में भी उनका कोई प्रतिनिधि न था। सच तो यह है कि वहां राजनीतिक पार्टियों पर ही प्रतिबंध लगा हुआ था। 1994 में बेनज़ीर भुट्टो ने पाकिस्तान (पाक अधिकृत कश्मीर नहीं) की राजनीतिक पार्टियों को वहां अपनी शाखायें खोलने की छूट दे दी। अधिकतर राजनीतिक पार्टियों ने जिनमें शिया मुसलमानों की पार्टी तहरीक–ए–जाफ़रिया पाकिस्तान भी शामिल थी उत्तरी क्षेत्रों में अपनी गतिविधियां शुरू कर दीं।

एक तरफ़ पाकिस्तान ने इन क्षेत्रों के लिये अपने दरवाज़े खोलने शुरू कर दिये तक दूसरी ओर आइ एस आइ ने तहरीक–ए–जाफ़रिया का विरोध करने के मुख्य उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये सुन्नी मुसलमानों के एक संगठन सिपाह–ए–सहबा, पाकिस्तान को खड़ा कर दिया। यह उग्रपंथी सुन्नी संगठन काफ़ी देर से शियाओं को ग़ैर–मुस्लिम घोषित करने के लिये अभियान चला रहा है। इस संदर्भ में पाकिस्तान के संविधान के 12 अध्यायों को देखा जाए तो गिलगित–बल्तिस्तान का नाम एक बार भी नहीं आता है। अक्तूबर 1994 में पाकिस्तान ने उत्तरी क्षेत्रों की कार्यकारी परिषद के 26 सदस्यों को चुनने के लिये दलीय चुनाव कराये। इस कार्यकारी परिषद के पास लगभग वैसी ही शक्तियां थीं जैसी उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रांत की विधान सभा को दी गयीं थीं। यहां प्रांतीय विधान सभा का मुखौटा तो नज़र आ रहा था परंतु बाद में पता चला कि इस परिषद को केवल संस्तुतिपरक शक्तियां दी गयी थीं वैधानिक शक्तियां नहीं। बाद में इसके पांच सदस्यों को "कश्मीर और उत्तरी क्षेत्र (पाकिस्तान) मामलों के संघीय मंत्री" के सलाहकार बनाया गया। यह घोषणा तो की गई कि इन सलाहकारों को पाक अधिकृत कश्मीर के मंत्रियों के बराबर दर्जा दिया जाएगा , परंतु असल में, वे सीमित अधिकार भी उन्हें नहीं दिये गये। नतीजा यह है कि उत्तरी क्षेत्रों पर छह अधिकारियों के माध्यम से इस्लामाबाद ही शासन करता आ रहा है और इन छह अधिकारियों में से एक भी स्थानीय नहीं है। ये हैं मुख्य कार्यकारी अधिकारी, कमिश्नर, पुलिस महानिरीक्षक, न्यायिक आयुक्त अर्थात ज्यूडिशियल कमिश्नर और चीफ़ इंजीनियर।

अधिकतर पहले दो पदों पर सेवानिवृत्त सैनिक अधिकारी तैनात रहे हैं और अन्य पदों पर उन लोगों की नियुक्ति होती रही है जो स्थानीय नहीं रहे हैं। यहां जनतंत्र का स्तर क्या है इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि न्यायिक आयुक्त अर्थात ज्यूडिशियल कमिश्नर के आदेशों के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती थी क्योंकि पाकिस्तान के उच्चतम न्यायालय का उसपर कोई इख़्तियार नहीं था। ऐसा व्यवहार करता है पाकिस्तान उन अपने ही लोगों से जो 1947 से पहले जम्मू–व–कश्मीर राज्य से जुड़े हुये थे। इंजीनियर अली रिन्चन लिखते हैं, "पाकिस्तान के लिये गिलगित–बल्तिस्तान ग्रीष्मकालीन शिविर की तरह है। उनकी तुलना मंगोलों के साथ की जा सकती है जिन्होंने चीन पर अधिकार तो कर लिया पर इसके संसाधनों की विविधता और इसके निवासियों की क्षमताओं को समझने में असफल रहे। उनके लिये चीन बस एक चरागाह था जहां उनके घोड़ों को पर्याप्त मात्रा में घास उपलब्ध थी। गिलगित–बल्तिस्तान के लिये यही दृष्टिकोण पाकिस्तान का है।"[19]

पिछले 30 वर्षों के दौरान पाक अधिकृत कश्मीर, कश्मीर में चल रहे परोक्ष युद्ध की शरण–स्थली और प्रक्षेपण–स्थल के रूप इस्तेमाल किया जाता रहा है। गुप्तचर एजेंसियों और भूतपूर्व आतंकवादियों के अनुसार 1989 से 1991 तक पहले दो वर्षों में पाक अधिकृत कश्मीर और अन्य क्षेत्रों में स्थापित प्रशिक्षण शिविरों में पाकिस्तान ने लगभग 25000 कश्मीरी युवकों को प्रशिक्षित किया जिसने जम्मू–व–कश्मीर में हथियारबंद विद्रोह के लिये आधार तैयार किया। ख़तरनाक आतंकवादी नेता सैय्यद सलाहउद्दीन 1995 से पाक अधिकृत कश्मीर से युनाइटेड जिहाद काउन्सिल के प्रमुख के रूप में कार्य कर रहा है। यह जिहाद काउन्सिल आइ एस आइ के संरक्षण में कश्मीर के सभी आतंकवादी संगठनों के कार्य पर नज़र रखती है और उनका संयोजन करती है। इसके साथ ही विभिन्न आतंकवादी संगठनों पर प्रभावशाली नियंत्रण के लिये जटिल सामरिक सूचना प्रणाली को सुचारु रूप से चलाने के लिये आइ एस आइ ने पाक अधिकृत कश्मीर में अनेक सूचना और प्रसारण केन्द्र स्थापित किये हैं।

विश्व बैंक की 2002 की रिपोर्ट के अनुसार पाक अधिकृत कश्मीर में 88 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं जहां वे वन–संपदा और कृषि पर निर्भर करते हैं। बेरोज़गारी 35 से 50 प्रतिशत तक है। कुछ समय पहले तक साक्षरता का प्रतिशत 10 था, यद्यपि यह 48 प्रतिशत हो चुका है। 60 प्रतिशत जनता को पीने के लिये साफ़ पानी नहीं मिलता। पाकिस्तान में प्रति व्यक्ति आय 420 डॉलर ( 21000 रुपये) है तो पाक अधिकृत कश्मीर में यह 185 से 200 डॉलर (9,500 रपये) तक है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि कश्मीर का यह हिस्सा आज़ाद कश्मीर तो किसी भी तरह से नहीं है। यह सही मायने में पाक अधिकृत कश्मीर ही है जो पाकिस्तानी शिकंजे में छटपटा भी नहीं पा रहा है। ■

# 1947-48 का भारत-पाक युद्ध: गिलगित और बल्तिस्तान की स्थिति

कर्नल तेज कुमार तिक्कू
(सेवानिवृत्त)

*भाग– 1: गिलगित का पतन*

गिलगित क्षेत्र उन्नीसवीं शताब्दी में डोगरा शासन के अंतर्गत आया था। यह मुस्लिम बहुल क्षेत्र था और यहां बसने वाले मुसलमान उपद्रवी क़िस्म के थे। ये चित्रल, हुंज़ा, नगर आदि, अर्द्धसामंती जागीरों में निवास करते थे। जुलाई 1947 में जब अंग्रेज़ों के भारत छोड़ने का समय निकट आता जा रहा था तो उन्होंने गिलगित के साठ बरस के लीज़ को समाप्त कर दिया और इसे महाराजा के सुपुर्द कर दिया

## युद्धक्षेत्र का स्वरूप

1947–48 के भारत–पाक युद्ध में उत्तरी मोर्चे के अंतर्गत गुरेस, द्रास, कर्गिल और लेह सेक्टरों के क्षेत्र आते थे। यद्यपि अधिकतर सभी सेक्टरों पर युद्ध एक साथ चल रहा होता था फिर भी ये रणक्षेत्र इतने कठिन थे कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना और यहां तक कि सैनिकों की ड्यूटी बदलना भी टेढ़ी खीर था जिसके कारण ये युद्ध कुल मिलाकर हर सेक्टर में अलग–अलग ही लड़े जाते थे। यह स्थिति बाद में बदल गई जब पाकिस्तानी सेना का नेतृत्व बेहतर हो गया और उन्होंने इस कठिनाई को अपने लाभ के लिये इस्तेमाल किया।

यह इलाक़ा बीहड़ और टूटा फूटा था। इसमें ऊंचे पर्वत थे,जिनकी ढलान बेहद तिरछी थी और नीचे गहरी नदी घाटियां थीं, जो अनगिनत दुर्गम और संकरे नालों की ओर निकलती थीं। गिलगित महाराजा द्वारा नियुक्त गवर्नर का मुख्यालय था। इसके दक्षिण–पश्चिम में पर्वत उतने ऊंचे नहीं थे, उनमें पगडंडियों का जाल बिछा हुआ था, इस क्षेत्र का प्राकृतिक निकास पथ, वेगवती सिंधु नदी के तट के साथ साथ ही लगकर चलता था। गिलगित का एक और लाभ यह भी था कि यह श्रीनगर से काशगर की यात्रा करने वाले, गुरेस–बुर्ज़िल दर्रे, मिन्टका दर्रे के बीच से होकर जाने वाले कारवानों के एक महत्वपूर्ण रास्ते पर बसा हुआ था। गुरेस तो एक और महत्वपूर्ण रास्ते पर बसा हुआ था जो पूर्व की ओर जाते हुये, सिन्धु नदी के साथ–साथ लगते हुये स्कर्दू और तब कर्गिल और लेह तक जाता था। जब आक्रमण हुआ तो रणनीतिक दृष्टि से इस रास्ते महत्व असदिंग्ध था क्योंकि कर्गिल द्रास, ज़ोजीला और बाल्तल के रास्ते सीधे श्रीनगर से जुड़ा हुआ था। रणनीतिक दृष्टि से अमूल्य अन्य छोटे रास्ते भी थे जो देवसाई पठार तक जाते थे। यह पर्वत के ऊपर स्थित 4270 मीटर का सपाट इलाका था जो कराकोरम और हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं के बीच स्थित था। यदि सेनानायक जोखिम उठाने के लिये तैयार हों तो ये पगडंडियां मुख्य रास्ते से अलग हटकर पीछे से हमला करके शत्रु को चकित कर देने के पर्याप्त अवसर दे सकती थीं। एक अन्य रास्ता सिन्धु और श्योक नदियों के संगम से निकलता था और पूर्व की ओर श्योक नदी के साथ–साथ चलते हुये लेह और यारकंद की ओर जाने वाले कारवां पथ पर निकलता था।

इस ऊबड़–खाबड़ और निर्जन क्षेत्र में संचार की सुविधाएं अत्यंत सीमित थीं जिससे यह सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता था। कोई नौसिखिया सैनिक कमांडर यहां असमंजस में पड़ सकता था लेकिन जीवट और कल्पनाशीलता हो तो शत्रु को घेरकर उसे अलग–थलग कर देने के अनमोल तरीके यहां उपलब्ध हो सकते थे।

## जुलाई 1947 में गिलगित

गिलगित क्षेत्र उन्नीसवीं शताब्दी में डोगरा शासन के अंतर्गत आया था। यह मुस्लिम बहुल क्षेत्र था और यहां बसने वाले मुसलमान उपद्रवी क़िस्म के थे। ये चित्राल, हुंज़ा, नगर आदि, अर्द्धसामंती जागीरों में निवास करते थे। जुलाई 1947 में जब अंग्रेज़ों के भारत छोड़ने का समय निकट आता जा रहा था तो उन्होंने गिलगित

के साठ बरस के लीज़ को समाप्त कर दिया और इसे महाराजा के सुपुर्द कर दिया। जम्मू व कश्मीर राज्य की सेना के वरिष्ठतम अधिकारियों में से एक ब्रिगेडियर घन्सारा सिंह की नियुक्ति तुरंत ही नये गवर्नर के रूप में कर दी गई। 1 अगस्त 1947 को उन्होंने ब्रिटिश सरकार के राजनीतिक एजेंट कर्नल बेकन से कार्यभार ग्रहण कर लिया। स्थानीय लोगों ने गर्मजोशी से उनका स्वागत किया। हुन्ज़ा और नगर के मीर, पुनियाल के राजा और कोह गिज़र, यासीन और अश्कोमान के सामंत ब्रिगेडियर घन्सारा सिंह के अधीन थे। इन सभी प्रभावशाली बाहुबलियों में से हुन्ज़ा और नगर के मीर ही थे, जो स्पष्ट रूप से गवर्नर साहब के धुर विरोधी थे। यह विरोध जल्द ही गवर्नर साहब के लिये घातक होने जा रहा था क्योंकि गिलगित स्काउट्स के 75 प्रतिशत सैनिक हुन्ज़ा और नगर के ही निवासी थे। सबसे अधिक ख़तरनाक साबित हुआ सूबेदार बाबर ख़ान जो नागर और हुन्ज़ा दोनों ही जागीरों के मीरों का संबंधी था। नगर के मीर का वह रिश्ते में चाचा लगता था और हुन्ज़ा के मीर की बहन से उसका विवाह हुआ था। यहां इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि अधिकारियों के अतिरिक्त सूबेदार मेजर सबसे ऊंचा पद होता है जो मामूली सिपाही से उठकर उस पद पर पहुंचा होता है। अंग्रेज़ों के ज़माने में और काफ़ी सीमा तक आज भी वह यूनिट का एक महत्वपूर्ण कार्यकर्ता होता है जो पद के महत्त्व में कमांडिंग आफिसर के बाद आता है। सिपाहियों पर उसका काफ़ी अधिक प्रभाव होता है। आगे कुंआ और पीछे खाई थी। एक तरफ़ बाबर ख़ान था तो दूसरी तरफ़ थे मेजर ब्राउन और कैप्टेन मैथ्यूसन, जिनकी सेवायें राज्य सरकार ने बहाल रखी थीं। ये दोनों अंग्रेज़ महाराजा के लिये आस्तीन के सांप साबित हुये। इन्होंने पाकिस्तान परस्ती का ऐसा घातक खेल खेला जिससे गवर्नर का अंत निश्चित हो गया।

## सैनिकों की तैनाती

सैनिकों की उपलब्धि की दृष्टि से देखा जाए तो ब्रिगेडियर घन्सारा सिंह के पास 6 जे एण्ड के इन्फेन्ट्री थी जिसमें दो

**ब्रिगेडियर घन्सारा सिंह समझ रहे थे कि वे कैसी ख़तरनाक स्थिति में हैं परंतु एक सच्चे सैनिक की तरह शांत रहकर पूरी गरिमा से वे डटे रहे। उन्होंने आपातकालीन सहायता के लिये कई संदेश श्रीनगर भेजे परंतु कोई जवाब नहीं मिला**

कम्पनियां कम थीं। 6 जे एण्ड के इन्फेन्ट्री का बटालियन मुख्यालय गिलगित से 54 किलोमीटर दूर बुन्जी मे श्रीनगर जाने वाली सड़क पर स्थित था। इसका कमांडर था लेफ़्टिनेंट कर्नल अब्दुल मजीद ख़ान और इसमें सिक्खों और मुसलमानों का अनुपात लगभग समान था। लेकिन सिक्ख सैनिक नये रंगरूट थे और युद्ध में जाने के लिये उन्हें छह महीने के अतिरिक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता थी। इसे विडम्बना ही कहा जा सकता है कि जहां स्थानीय लोगों और गिलगित स्काउट्स उस सांप्रदायिक हिंसा से प्रभावित नहीं लग रहे थे जिसने भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र को अपनी लपेट में ले लिया था, वहीं 6 जे एण्ड के इन्फेन्ट्री के मुसलमान सिपाही अंदर ही अंदर उबल रहे थे। पुंछ में रहने वाले अपने कुछ साथियों से उन्होंने पंजाब के सांप्रदायिक उन्माद के बारे में सुना था और वे मज़हबी उन्माद से भरे हुये थे। ब्रिगेडियर घन्सारा सिंह समझ रहे थे कि वे कैसी ख़तरनाक स्थिति में हैं परंतु एक सच्चे सैनिक की तरह शांत रहकर पूरी गरिमा से वे डटे रहे। उन्होंने आपातकालीन सहायता के लिये कई संदेश श्रीनगर भेजे परंतु कोई जवाब नहीं मिला। पहले तो लगता है कि उनका कोई संदेश वहां पहुंचा ही नहीं, क्योंकि गिलगित के तारघर का कामकाज एक मुसलमान अधिकारी देखता था और वायरलेस स्टेशन का नियंत्रण पेशावर रेडियो स्टेशन के हाथों में था। ऊपर से गवर्नर के पास बजट संबंधी और अन्य कार्यपालिका शक्तियां थीं ही नहीं और आवश्यक वस्तुओं का कोई भण्डार भी नहीं था जिसको उपलब्ध करवा कर वे स्थानीय समर्थन ख़रीद पाते।

## अंत समय

गवर्नर को समझने में देर नहीं लगी कि अंग्रेज़ अफ़सरों और बाबर ख़ान, दोनों के ही इरादे ठीक नहीं हैं। पर उनके पास सीमित विकल्प थे। वे बुन्जी से मुसलमान सैनिकों को नहीं बुला सकते थे क्योंकि उनकी वफ़ादारी संदिग्ध थी; और लेफ़्टिनेंट कर्नल अब्दुल मजीद ख़ान ने सिक्खों की दो कंपनियां भेजने का उनका निवेदन साफ़ ठुकरा दिया था, हालांकि ऐसा स्पष्टतः पेशेवर कारणों से किया गया था क्योंकि सिक्ख नये रंगरुट थे और युद्ध के लिये तैयार नहीं थे।

31 अक्तूबर और 1 नवंबर की मध्य रात्रि को मेजर ब्राउन, लेफ़्टिनेंट हैदर ख़ान और सूबेदार मेजर बाबर ख़ान के नेतृत्व में गिलगित स्काउट्स के लगभग 100 सैनिकों ने गवर्नर हाउस को घेर लिया। उनमें कुछ ने अंदर घुसने का प्रयत्न किया ताकि गवर्नर को नींद में ही गिरफ़्तार कर सकें। परंतु ब्रिगेडियर ऐसे जीवट वाले थे कि अपने ड्राइवर और अर्दली के साथ उन्होंने जो भी हथियार उपलब्ध थे उनका इस्तेमाल करके घुसपैठियों को खदेड़ दिया। गवर्नर ने अपनी पिस्तौल का इस्तेमाल किया, जबकि ड्राइवर और अर्दली ने क्रमशः बारह बोर की एक शॉटगन और स्पोर्ट्सगन का इस्तेमाल किया। इस गोलीबारी में दो स्काउट मारे गये। तब स्काउटों ने मशीनगन का इस्तेमाल किया जो सुबह होने तक जारी रहा। सुबह हुये काफी समय बीत गया तो मेजर ब्राउन ने कड़ा संदेश भेजा कि यदि गवर्नर ने आत्मसमर्पण न किया तो गिलगित में सभी ग़ैर–मुस्लिमों का क़त्लेआम किया जाएगा। ब्रिगेडियर घन्सारा सिंह के पास अब कुछ नहीं बचा था इसलिये उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया और तत्काल गिरफ़्तार कर लिये गये। लोगों को पता चला तो उनके झुंड के झुंड गिलगित चले आये और ज़बरदस्त प्रदर्शन किया। परंतु स्काउट्स के सैनिक अफ़सरों ने उन्हें शांत किया और वे चले गये। इतना निश्चित है कि जनभावना उनके पक्ष में होने के कारण ही गवर्नर और गिलगित के ग़ैर–मुसलमानों की जान बच पाई।

परंतु सिक्ख रंगरूट इतने भाग्यशाली नहीं थे। जन्गलोट चौकी पर तैनात सभी सिक्ख सिपाहियों को उनकी ही यूनिट के मुसलमान सिपाहियों ने घेर लिया और स्काउट्स के सिपहियों के साथ मिलकर उनकी नृशंस हत्या कर दी। उनमें से केवल एक बच पाया। वह सिन्धु नदी के बर्फीले पानी में कूद पड़ा और पानी में बह रहे लकड़ी के एक कुन्दे का सहारा लेकर पार निकल गया। बुन्जी में तैनात सिक्ख सैनिकों ने जंगलोट के नरसंहार के बारे में सुना तो वे अस्तर के रास्ते गुरेस की ओर निकलने के लिये चले। परंतु कैप्टन मैथ्यूसन ने चिलास में तैनात स्काउट्स को साथ लेकर घात लगाकर उनपर हमला किया और कईयों को मार डाला। जो सिपाही बच निकलने में सफ़ल रहे वे बिना खाये–पिये बर्फ से ढके वीरान पहाड़ों में बिना खाये–पिये कई दिनों तक भटकते रहे। अंततः वे भी या तो मारे गये या पकड़ लिये गये। इन घटनाओं के बाद लेफ़्टिनेंट कर्नल अब्दुल मजीद ख़ान को भी गिरफ़्तार कर लिया गया।

इस प्रकार नवम्बर 1947 के आरंभ में ही, गिलगित क्षेत्र पाकिस्तान के हाथों में चला गया। इसके बाद पाकिस्तान ने एक अल्पकालीन सरकार का गठन किया जिसमें मेजर ब्राउन, एहसान अली, मोहम्मद ख़ान, सईद (सभी कैप्टन), लेफ़्टिनेंट हैदर और सूबेदार मेजर बाबर ख़ान को शामिल किया गया। किसी भी राजा, अमीर, मेहतर या प्रमुख लोकप्रिय नेता को इस सरकार में शामिल नहीं किया गया। 3 नवंबर 1947 को मेजर ब्राउन ने स्काउट लाइन्स पर पाकिस्तानी झण्डा फहरा दिया।

## भाग –2
## स्कर्दू की घेराबंदी और पतन

स्कर्दू मात्र तहसील मुख्यालय था। इसका महत्त्व इस कारण से था कि ज़िलाधिकारी, सर्दी के मौसम में लेह की कड़ाके की ठंड से बचने के लिये यहां आ जाता था। यह तहसील विशाल क्षेत्र में फैली थी और इसके लगभग सभी निवासी मुसलमान थे। इसके अंतर्गर रोन्धू, शिगर, खपालू, खरमांग और स्कर्दू की जागीरें आती थीं। हर जागीर का एक राजा था जिसका लोगों पर बहुत प्रभाव था। चूंकि लोग अधिकतर अनपढ़, दुनिया से कटे हुये संकीर्ण रूढ़ियों से जकड़े हुये थे, किसी भी हंगामेबाज़ के लिये जिहाद के नाम पर उनको भड़काना आसान था। ले.कर्नल अब्दुल मजीद ख़ान की गिरफ़्तारी और गिलगित के विश्वासघात के बाद 6 जे एण्ड के इन्फेंट्री का नेतृत्व मेजर शेर जंग थापा को सौंपा गया , जिन्हें लेफ़्टिनेंट कर्नल की स्थानीय रैंक प्रदान की गई।

### मेजर शेरजंग थापा

मेजर शेरजंग थापा का जन्म 8 जून 1908 को एबटाबाद (पाकिस्तान में ओसामा बिन लादेन के विरुद्ध चलाये गये अमरीकी अभियान ऑपरेशन जेरिनोमो के कारण प्रसिद्ध) के एक गौरवशाली सैनिक परिवार में हुआ था। धर्मशाला के एक स्कूल में उनकी पढ़ाई हुई जहां वे असाधारण हॉकी खिलाड़ी के रूप में प्रसिद्ध हुये। वे कॉलेज की हॉकी टीम में लगातार खेलते रहे और अनेक स्थानीय स्पर्धाओं में भी भाग लिया। 1 गोरखा रेजिमंटल सेन्टर भी धर्मशाला में ही स्थित था और उनकी टीम भी स्पर्धाओं में जाती रहती थी। इस सैन्य केन्द्र का एड्जुटेंट जो एक अंग्रेज़ अफ़सर था थापा का प्रशंसक बन गया और उन्हें पारिवारिक परंपरा का निर्वाह करते हुये सेना में जाने के लिये प्रोत्साहित करने लगा। आगे जाकर यह अधिकारी युवा थापा का संरक्षक सा बन गया। जैसा कि होना ही था, थापा सेना में चले गये और उन्हें 1 सितंबर 1932 को जम्मू व कश्मीर राज्य की सेना में कमीशन की प्राप्ति हुई। अपने सैनिक जीवन में वायरलेस टेलीग्राफी यानी बेतार संचार का एक कोर्स करने का अवसर मिला जिसमें उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया। आगे जाकर वायरलेस संचार का उनका यह अनुभव बड़े काम का साबित हुआ।

### सैनिकों की संख्या

कर्गिल की तबाही के बाद 6 जे एण्ड के इन्फेंट्री के पास जो कुछ भी बचा था वह लेह और बुन्जी के बीच अनेक मुट्ठी भर तैनातियों के रूप में फैला हुआ था। लेह में एक कंपनी (एक प्लाटून कम) तैनात थी जो सीधे थापा के नेतृत्व में थी; कर्गिल में कैप्टन गंगा सिंह के नेतृत्व में दो कंपनियां थीं जिनमें सभी सिक्ख सैनिक थे। इनसे गतिशील बेड़े के रूप में कार्य करने की अपेक्षा की जाती थी जो कभी भी किसी भी जगह जा कर सक्रिय हो सकें। 6 जे एण्ड के इन्फेंट्री का एकमात्र वायरलेस ट्रांसमीटर सेट इन्हीं के पास था। स्कर्दू पर तो कैप्टन नेक आलम की दो प्लाटूनों का नियंत्रण था जिनमें सभी सिपाही मुसलमान थे। बटालियन का बाक़ी हिस्सा जो बुन्जी में था इसके दुश्मन के हाथों में पड़ जाने के बाद उसका कुछ अता पता न था।

### थापा के आगमन पर स्कर्दू की स्थिति

गिलगित हाथ से निकल गया तो स्कर्दू पर भारी ख़तरा मंडराने लगा। थापा को आदेश दिया गया कि लेह और कर्गिल से जितने सैनिक संभव हों लेकर स्कर्दू की ओर कूच करें। आदेश का पालन करते हुये वे 23 नवंबर 1947 को दो अधिकारियों, दो जूनियर कमीशंड अधिकारियों, और बहत्तर अन्य सिपाहियों को लेकर कर्गिल की ओर बढ़े। इन सिपाहियों में तीन मुसलमान भी थे जो उस वायरलेस ट्रांसमीटर का संचालन करते थे जो थापा कर्गिल से ही साथ लेकर चले थे। 2 दिसंबर को जब वे परकुट्टा से गोल की ओर बढ़ रहे थे तो एक हारवर्ड हवाई जहाज़ सैनिकों के इस समूह पर मंडराया और गिलगित की ओर चला गया। यद्यपि हवाई जहाज़ की इस हरकत से सभी सैनिकों को अच्छा नहीं लगा फिर भी उन्होंने उतनी गति बनाए रखी कि अगले दिन स्कर्दू पहुंच सकें। स्कर्दू पहुंचकर थापा को पहली बात यह अटपटी लगी कि स्थानीय लोग रूखे और नाराज़ लग रहे थे। उन्हें यह भी पता चला कि रोन्धू का राजा विरोधी हो

**गिलगित हाथ से निकल गया तो स्कर्दू पर भारी खतरा मंडराने लगा। थापा को आदेश दिया गया कि लेह और कर्गिल से जितने सैनिक संभव हों, लेकर स्कर्दू की ओर कूच करें**

## महावीर चक्र विजेता

# ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह

ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह, एमवीसी उन वीरतापूर्ण बलिदानों के पर्याय बन गए हैं जो भारतीय सैनिकों ने कश्मीर में 1947–48 के पाकिस्तानी हमले के दौरान दिए।

उनका जन्म 14 जून 1899 को हुआ था। वे अपने परिवार में चौथी पीढ़ी के सैनिक थे। उन्होंने प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज (अब जीजीएम साइंस कॉलेज), जम्मू से अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद सेना की नौकरी शुरू की। उन्हें एक सक्षम सैन्य अधिकारी की तरह सम्मान दिया जाता था। मई 1942 में राजिन्दर सिंह को तरक्की देकर ब्रिगेडियर बना दिया गया। बाद में उन्हें मेजर जनरल बनाने की मंजूरी दे दी गई। आखिरकार, 25 सितंबर 1947 को उन्हें जम्मू–कश्मीर का सेना प्रमुख (सीओएएस) बनाया गया। उन्होंने मेजर जनरल एचएल स्कॉट से कार्यभार संभाला। उस समय राज्य में गंभीर सैनिक और राजनीतिक अस्थिरता थी।

03 सितंबर 1947 को श्रीनगर पर कब्जे की कोशिशों में पाकिस्तान ने राज्य की सीमा पर एक बड़े ऑपरेशन की तैयारी की थी और राज्य की सीमा पर हमले हुए। राज्य प्रशासन पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों की अनंत धारा को रोकने में नाकाम था। इसके अलावा, राज्य की सेना में पूंछी और पंजाबी मुस्लिम अधिकारियों और सैनिकों के एक बड़े वर्ग ने बगावत कर दी थी। राज्य पर वास्तविक हमले की शुरुआत 22 अक्तूबर 1947 को हुई। हमला करने वाली सेना में करीब 6000 आदिवासी थे और इनमें ज्यादातर अफ्रीदी और मेहसुद, वजीर और स्वात थे। सामान्य पाकिस्तानी सैनिकों ने मिलकर हमालवरों को बढ़ा दिया। 6000 लोगों की मजबूत सेना को प्रत्येक 1000 सैनिक के छह लश्कर में बांट दिया गया जिसका नेतृत्व एक मलिक कर रहे थे और इन्हें पाकिस्तानी सेना से एक मेजर, एक कैप्टन और 10 जेसीओ दिए गए थे। पूरी सेना का नेतृत्व जम्मू कश्मीर के एक निवासी मेजर जनरल अकबर खान ने किया। उनकी सहायता ब्रिगेडियर शेर खान ने की।

आदिवासियों की मुख्य सेना का नेतृत्व खुर्शीद अनवर ने किया जो ब्रिटिश इंडियन आर्मी के पूर्व इमरजेंसी कमीशंड ऑफिसर थे। रिटायरमेंट के बाद उन्हें पाकिस्तान के मुस्लिम लीग नेशनल गार्ड्स का प्रमुख बनाया गया था। शुरू में छह लश्कर मुजफ्फराबाद, डोमेल, उरी और बारामूला के जरिए रावलपिंडी–श्रीनगर रोड पर बढ़े। बाद में दो लश्कर हाजीपीर होते हुए गुलमर्ग और फिर बांदीपुर तक बढ़े। अतिरिक्त सावधानी के रूप में पाकिस्तान सेना के सातवें डिविजन को तैयार रखा गया था ताकि मुर्री अब्बोटाबाद के जरिए बढ़कर पूरे राज्य पर अपना नियंत्रण सुदृढ़ कर सके। यह श्रीनगर पर लश्कर के कब्जे के बाद होना था।

21–22 दिसंबर 1947 के बीच की रात अकबर खान के तहत जो मुख्य सेना थी ,उसके पास बेहतर और सबसे परिष्कृत हथियार थे जो दूसरे राज्यों की सेना के हथियारों से अच्छे थे, ने 4 जेएके रेजीमेंट की दो कंपनियों से संपर्क स्थापित किया। इनमें मुजफ्फराबाद के करीबी पूंछी मुसलमान थे। ये लोग वर्दी वाले मुसलमानों को जिहाद के नाम पर अपने कुछ सैनिक साथियों के खिलाफ भड़काने में कामयाब रहे। 22 अक्तूबर (दशहरा) को तड़के शस्त्रागार से हथियार लेते हुए इन बागियों ने बैरकों में सो रहे सभी डोगरा पुरुषों व अधिकारियों को मार डाला। इनमें लेफ्टिनेंट कर्नल नारायण सिंह, उनके कमांडिंग अफसर और उनके एडजुटैंट कैप्टन राम सिंह शामिल थे। इसके बाद बागी हमलावरों से मिल गए और पाकिस्तान की पूरी सेना मुजफ्फराबाद नगर में घुस गई और शहर में तबाही मचा दी। लूटपाट और महिलाओं से बलात्कार के अलावा उनलोगों ने बच्चों और नागरिकों की बर्बरता से हत्या की। इन लुटेरों को आगे बढ़ने के लिए यह भरोसा दिलाना पड़ता था कि आगे और ज्यादा सामान तथा बहुत ज्यादा सुंदर कश्मीरी महिलाएं मिलेंगी।

हमलावरों द्वारा लूटपाट और डकैती के साथ हत्या की खबरें दोपहर बाद श्रीनगर पहुंचीं। इसलिए, महाराजा ने निजी तौर पर अपनी सेना का नेतृत्व करने का निर्णय किया। रवाना होने से पहले उन्होंने अपने सीओएएस, ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह को बुलाया ताकि वे उन्हें स्थिति से अवगत कराएं। हालांकि, उन्होंने महाराजा को सेना का नेतृत्व खुद करने से मना किया और उनकी जगह खुद नेतृत्व करने की पेशकश की। तद्नुसार ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह को आदेश दिया गया कि वे किसी भी कीमत पर दुश्मनों को रोकें और तब तक रोके रहें जब तक उन्हें अतिरिक्त सहायता न मिल जाए। रवाना होने से पहले उन्होंने बदामीबाग छावनी से 150 लोगों को इकट्ठा किया। इनके पास पुराने पड़ चुके उपकरण थे और इनके साथ तुरंत उरी की तरफ बढ़ निकले। सेना ने निजी परिवहन (बसों और ट्रकों) का उपयोग किया और शाम 6:30 बजे रवाना हो गई। बारिश, फिसलने वाली सड़क और पुराने वाहनों के कारण इनका आगे बढ़ना धीमा रहा। यह समूह 23 अक्तूबर 1947 को तड़के 2.00 बजे यह समूह उरी

पहुंच गया। उरी नाला पर एक प्लाटून छोड़कर ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह गढ़ी की ओर बढ़े।

गढ़ी में जमकर युद्ध हुआ। इसमें दुश्मनों का भारी नुकसान उठाना पड़ा। पर ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह ने सेना के स्तर और बचाव के लिए वहां मिलने वाली बेहतर स्थिति को समझते हुए अपने सैनिकों को उरी ले जाने का निर्णय किया। हालांकि, हमलावर उरी में प्रवेश करने में कामयाब रहे और वही सब किया जो उन्होंने मुजफ्फराबाद में किया था। इस पर ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह बारामूला भागे ताकि मुख्यालय को नाजुक स्थिति की सूचना दी जा सके। वहां उन्होंने सैनिकों और हथियार के रूप में अतिरिक्त सहायता की मांग की पर उन्हें ज्यादा से ज्यादा 70–80 लोगों की सहायता का वादा किया गया।

श्रीनगर में जब महाराजा को लगा कि स्थिति नियंत्रण से बाहर हो रही है तो उन्होंने श्रीनगर में सेना मुख्यालय का कब्जा संभाल लिया और 23 अक्तूबर 2017 को तत्काल ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह को कैप्टर ज्वाला सिंह के जरिए लिखित आदेश दिया। इसमें लिखा था :–

"ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह को किसी भी कीमत पर और अंतिम व्यक्ति तक उरी में दुश्मनों को रोकने का कमांड दिया गया है। कैप्टन ज्वाला सिंह के साथ अतिरिक्त बल भेजा रहा रहा है। अगर ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह से संपर्क नहीं होता है तो कैप्टन ज्वाला सिंह को हर कीमत पर और अंतिम व्यक्ति तक दुश्मन को रोकने का कमांड दिया गया है। ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह से संपर्क करने के लिए वे अपने स्तर पर सर्वश्रेष्ठ प्रयास करेंगे।"

कैप्टन ज्वाला सिंह 24 अक्तूबर को भोर में तीन बजे उरी पहुंचे। उनके साथ अतिरिक्त बल की छोटी टुकड़ी थी जिसे उन्होंने महाराजा के आदेश के साथ ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह को सौंप दिया। स्थिति को नाजुक समझते हुए और बचाव दल को हमलावरों की तुलना में काफी छोटा देखकर ब्रिगेडियर ने कैप्टन नसीब सिंह को आदेश दिया–उरी की धारा के ऊपर बने तीखे पुल को उड़ा दिया जाए। इससे हमलावरों को कुछ देर रुकना पड़ा। दोनों किनारों पर भारी गोलीबारी हुई। नतीजतन दुश्मनों को भारी नुकसान हुआ और वे वापस हो गए। कुछ देर बाद दुश्मनों ने फिर से हमला बोला और ऐसा लगा कि आदिवासी हमलावर हर जगह थे। बचाव दल को भागकर महुरा में शरण लेना पड़ा और उन्होंने बचाव की दूसरी स्थिति संभाल ली।

दुश्मनों ने 25 अक्तूबर को सवेरे 7.00 बजे फिर से हमला शुरू किया पर बचाव इतना प्रभावी था कि हमलावरों को कुछ टुकड़ियां झेलम के किनारे पैदल पुल पर भेजनी पड़ी। ताकि बचाव दल पर पीछे से हमला किया जा सके। ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह ने इस चाल का अनुमान लगा लिया था और पुल को उड़ा दिया था। यह काम शाम 4.30 बजे तक पूरा हो चुका था। पर उस समय तक दुश्मनों की कुछ टुकड़ियां नदी पार कर इस ओर आ चुकी थीं। इसके बाद ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह रामपुर पहुंच गए ताकि पाथर खंडहर के पास बचाव कर सकें। बिना किसी आराम या नीद पूरी किए सैनिकों ने जल्दी में खंदक खोदना शुरू कर दिया ताकि छिपने की कुछ जगह बनाई जा सके। 26 अक्तूबर को सुबह में इस मोर्चे पर भारी हमला हुआ पर एक बार फिर, हमलावर कामयाब नहीं हुए। इसके बाद इन लोगों ने सड़क रोकने की योजना बनाई ताकि चुतराई पूर्ण पश्चगमन को रोका जा सके। शाम के समय ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह ने बारामूला के ठीक पश्चिम सेरी पुल पर वापसी का आदेश दिया। वापस जा रहे वाहन 27 अक्तूबर को रात एक बजे दुश्मनों की हर ओर से हो रही भारी गोलाबारी के बीच चले। सड़क की पहली बाधा बगैर किसी नुकसान के खोल ली गई लेकिन दिवान मंदिर (बुनियान) पर दूसरी बाधा पर सबसे आगे के चालक पर निशाना लगा और वह मारा गया। इस तरह काफिला रुक गया। जब कैप्टन ज्वाला सिंह ब्लॉक को साफ करने के लिए नीचे उतरे तो पाया कि शुरू की तीन गाड़ियों के ड्राइवर मारे जा चुके थे। उन्होंने किसी तरह इन वाहनों को एक तरफ किया और सुनिश्चित किया कि बाकी की चार गाड़ियां जा सकें। हालांकि, वे इनमें से किसी में भी ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह को नहीं तलाश पाए। इसके बाद उन्होंने बारामूला वापस जाने का निर्णय किया।

असल में जो हुआ वह इस प्रकार है। दूसरे रोडब्लॉक पर ब्रिगेडियर के ड्राइवर की मौत हो गई थी और उन्होंने खुद अपनी गाड़ी की स्टीयरिंग संभाल ली। छोटे से काफिले में यह दूसरी गाड़ी थी। इसके थोड़ी देर बाद वे एक एमएमजी के हमले में गंभीर रूप से घायल हो गए। इस तरह योजना बदल गई। मरने से पहले उन्होंने अपने सैनिकों को आदेश दिया था कि उन्हें एक रिवाल्वर के साथ पुलिया के नीचे रख दें क्योंकि उन्होंने महाराजा से वादा किया था कि दुश्मन उनके शरीर पर पैर रखकर ही आगे बढ़ेंगे। इसके बाद उन्होंने अपने लोगों को अंतिम आदेश दिया कि वे तेजी से अगली योजना के अनुसार बचाव की स्थिति में चले जाएं ताकि दुश्मनों को श्रीनगर की ओर बढ़ने से रोका जा सके। इसके बाद उस बहादुर और निडर सैनिक के बारे में कुछ पता नहीं चला। 27 अक्तूबर 1947 को आधी रात के बाद कोई 2:00 बजे उन्होंने अंतिम सांस ली।

भारत में विलय की महाराजा की अपील स्वीकार कर ली गई और 26 अक्तूबर 1947 की शाम इसे सहमति दे दी गई। इस बहादुर सैनिक के सर्वोच्च बलिदान के कुछ ही घंटे बाद भारतीय सैनिकों ने राज्य में मोर्चा संभाल लिया तथा हमलावरों से इसकी रक्षा की।

ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह को मरणोपरांत भारत का दूसरा सबसे बड़ा वीरता पुरस्कार, महावीर चक्र दिया गया। भारतीय सेना के पहले भारतीय सीओएएस जनरल (बाद में फील्ड मार्शल) केएम करियप्पा ने 30 दिसंबर 1949 को ब्रिगेडियर राजिन्दर सिंह की विधवा राम देई को यह पुरस्कार सौंपा। ■

**–क. तिक्कू**

चुका था और कबाइलियों को उकसा रहा था कि तुरंत स्कर्दू पर हमला बोल दें। राजा ने दो डाकियों को भी गिरफ़्तार कर लिया था जिससे कि कोई राजकीय पत्र सही जगह पर न पहुंच सके। इस बीच स्कर्दू गैरिसन के कैप्टन नेक आलम ने 6 जे एण्ड के इन्फेंट्री के दुश्मनों के पाले में जा चुके कैप्टन हसन ख़ान का एक पत्र पकड़ा, जिसमें मुसलमान सैनिकों को विद्रोह के लिये उकसाया गया था। कैप्टन नेक आलम ने कर्तव्य का पालन करते हुये पत्र को श्रीनगर भेज दिया।

## ऐसा था स्कर्दू

स्कर्दू का सर्वेक्षण करने पर ले. कर्नल थापा ने पाया कि यह एक छोटी सी घाटी में बसा हुआ है जिसके बीच से होकर वेगवती सिन्धु नदी बहती है। इसका उत्तरी क्षेत्र लगभग 19 किलोमीटर के विस्तार में स्थित था जो अपने सबसे संकरे बिन्दु पर दो किलोमीटर और सबसे चौड़े बिन्दु पर छह किलोमीटर तक फैला था। सपाट और रेतीले नदी तल के बीचोंबीच एक छोटी पहाड़ी थी जिसे ब्लुक्रो कहते थे। शिगर नदी इसके नीचे से होकर निकलती थी और सिन्धु के साथ मिल जाती थी। 2285 मीटर की ऊंचाई पर स्थित स्कर्दू ख़ास घाटी के दक्षिणी कोने पर स्थित था और इसकी अधिकतम चौड़ाई 8 किलोमीटर थी। काफ़ी हरा भरा कस्बा था जो अनेक नागरिक सुविधाओं और सरकारी दफ़्तरों के कारण काफ़ी समृद्ध लगता था। एक 2700 मीटर ऊंची पहाड़ी जिसे प्वांइट 8853 कहते थे समूचे क़स्बे को ढकती हुई सी लगती थी। इस पहाड़ी का आधार अंडाकार था जिसकी परिधि लगभग 5 किलोमीटर थी। इसकी चोटी पर उत्तर या दक्षिण पश्चिम से पहुंचा जा सकता था क्योंकि अन्य दिशाओं में केवल ऊंचे चट्टानी टीले ही थे। स्कर्दू का किला इस क़स्बे का प्रमुख सीमा चिन्ह था जो पहाड़ी की पूर्वी ढलान पर स्थित था। प्वांइट 8853 से यह दिखाई नहीं देता था क्योंकि बीच में एक और पहाड़ी आ जाती थी। यह उत्तर–पश्चिम, पश्चिम और दक्षिण पूर्वमें सिन्धु नदी से घिरा था। परंतु इस नदी को घाटी में कहीं से भी लट्ठों के बेड़े से पार किया जा सकता था। स्कर्दू

**फरवरी के आरंभ में शत्रु के 600 सैनिक स्कर्दू को हथियाने के लिये बिल्कुल तैयार थे। इनमें क़बायली, चित्रली और जम्मू व कश्मीर की सेना के लगभग अस्सी भगोड़े सैनिक शामिल थे**

क़स्बा तीन तरफ़ से ऊंचे बर्फ़ीले पर्वतों से घिरा हुआ था। सर्दियों में भारी हिमपात से सभी रास्ते बन्द हो जाते थे। केवल सिन्धु नदी के साथ साथ चलने वाला रास्ता खुला रहता था जो गिलगित और कर्गिल तक जाता था।

## घेराबन्दी से पहले

3 दिसम्बर को थापा स्कर्दू पहुंचे तो, नेक आलम बाहर गया हुआ था. 4 दिसम्बर को वह लौटा तो अपने साथ चार ज़ख़्मी सिक्ख सिपाहियों को ले आया जो बुन्जी के नरसंहार से बच निकले था और किसी तरह स्कर्दू पहुंच गये थे जहां वे नेक आलम को बहुत ही बुरी हालत में मिले थे। वे घायल और बीमार थे इसलिये आगे की लड़ाइयों में उनके भाग लेने का प्रश्न ही नहीं उठता था। स्थिति कठिन थी और थापा अपने बचे खुचे सिपाहियों की यथासंभव प्रभावशाली तैनाती में जुट गये। पहला काम उन्होंने यह किया कि उन रास्तों को बन्द करने का फैसला किया जो हिमपात के कारण बंद नहीं हुये थे। उन्हें पता था कि उनकी चौकियों पर गिलगित से हमला किया जाएगा अतः उन्होंने सिन्धु नदी के साथ साथ वहां से जो रास्ता आता था इसे बन्द करने की सोची, जिससे कि आने वाले हमले के बारे में पता चल सके और जवाब देने के लिये पर्याप्त समय मिले। इसलिये उन्होंने सिन्धु नदी के दायें तट पर स्कर्दू से 32 किलोमीटर की दूरी पर त्सारी में कैप्टन नेक आलम के नेतृत्व में मुसलमान सैनिकों की एक प्लाटून तैनात कर दी, और नदी पार बायें तट पर कैप्टन कृष्ण सिंह के नेतृत्व में सिक्ख सैनिकों की एक प्लाटून लगा दी। थापा और उनकी चौकियों के बीच संचार का एकमात्र माध्यम दौड़ने वाले हरकारे थे, यद्यपि वे जानते थे कि आपात स्थिति में यह संचार माध्यम बिल्कुल भी विश्वसनीय नहीं हो सकता था। पर और कोई रास्ता नहीं था। अब स्कर्दू में कुल मिलाकर 71 सैनिक थे; 40 सिक्ख और 31 मुसलमान। थापा जो भी कर सकते थे उन्होंने किया, सुरक्षा को मज़बूत करने के लिये एड़ी चोटी का ज़ोर लगा दिया। परंतु इतने बड़े क़स्बे की इतने कम सैन्य संसाधनों से सुरक्षा करना असंभव सा काम था। इस बीच श्रीनगर से भी स्कर्दू के लिये यथासंभव अतिरिक्त सैन्यबल भेजने के प्रयत्न हो रहे थे। इसके परिणामस्वरूप राज्य की सेना की दो कंपनियों की पहली कुमुक 15जनवरी 1948 को श्रीनगर से निकली और 20 जनवरी को सोनामर्ग पहुंची। असाधारण साहस और दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रदर्शन करते हुये, लगभग मौत से खेलते हुये इन सैनिकों ने हाड़ कंपा देने वाली कड़ाके की सर्दी में 30 जनवरी 1948 को ज़ोजीला दर्रे को पार किया। इसके बाद मटियान और पिनद्रास की जमी हुई चोटियों को पार करते हुये भी अपनी गति बनाए रखी और द्रास से चलते हुये कर्गिल पहुंचे। रास्ते कठिन और संकरे थे और ज़ोजीला को पार करने के बाद तो कहीं सर छुपाने की जगह भी नहीं थी, इसलिये ये सैनिक विभिन्न दलों में बंट गये और परबत सिंह के नेतृत्व में पहला दल 7 फरवरी को बगीचा पहुंचा। अंतिम दल ने 10 फरवरी को स्कर्दू में पांव रखे। इन सैनिकों के पहुंचते ही वहां तैनात सैनिकों में खुशी की लहर दौड़ गई। अब थापा के पास 130 ग़ैर मुसलमान और और 31 मुसलमान सैनिक थे।

## घेराबन्दी शुरू

फरवरी के आरंभ में शत्रु के 600 सैनिक स्कर्दू को हथियाने के लिये बिल्कुल तैयार थे। इनमे क़बायली, चित्राली और जम्मू व कश्मीर की सेना के लगभग अस्सी भगोड़े सैनिक शामिल थे। सभी के पास उस समय की आधुनिकतम रायफलें और 2'' और 3' के मॉर्टर थे। उनका नेतृत्व करने वाले प्रमुख अधिकारी थे मेजर अहसान अली, कैप्टेन मोहम्मद ख़ान और लेफ़्टिनेंट बाबर ख़ान ( स्पष्ट है कि उसकी पदोन्नति की

गई थी)। इनमें से पहले दो जम्मू व कश्मीर की सेना के भगोड़े थे। यह सारा का सारा सैन्यबल जैसी कि थापा को सूचना मिली थी सिन्धु नदी के साथ वाले रास्ते पर आगे बढ़ रहा था। त्सारी में अपनी चौकियों से उन्हें अंति सूचना 9 फरवरी 1948 को मिली थी और इस सूचना के कुछ घण्टे बाद ही इस चौकी पर हमला हुआ। हमला ऐसी आश्चर्यजनक तेज़ी से हुआ कि चौकी ने अपनी सूचना में उस तबाही का इशारा तक नहीं दिया था जो उनपर टूट पड़ी थी। त्सारी में तैनात सिक्ख प्लाटून पर अचानक ही शत्रु ने भारी संख्या में हमला कर दिया। परंतु सिक्ख डटे रहे, उस स्थिति में जो भी कर सकते थे उन्होंने किया। परिणाम का तो पता ही था। जो बच गये पकड़कर गिलगित ले जाये गये। वहां कैप्टेन कृष्ण सिंह सहित सभी सिक्ख सिपाहियों की निर्मम हत्या कर दी गयी। कैप्टेन नेक आलम और उसके सैनिकों ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। वे चुपचाप दूसरी ओर जाकर अपने स्वधर्मियों से मिल गये। एक तरफ़ यह विनाश हो रहा था और दूसरी तरफ़ स्कर्दू में मौजूद सिपाही अपनी दो महत्त्वपूर्ण चौकियों के छिन जाने से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। इसके बाद हमलावर स्कर्दू की ओर बढ़े। इस बात में संदेह नहीं है कि स्कर्दू के रास्ते में पड़ने वाले गांवों के निवासियों को हमलावरों की गतिविधियों की पूरी ख़बर थी परन्तु वहां मौजूद सैन्यबल को इसकी भनक तक नहीं लगी।

11 फरवरी को सुबह की पहली किरण के साथ ही भारी गोलीबारी और भयानक शोरशराबे से समूचा सैन्यबल जाग गया। सैनिक समय रहते खंदकों में कूद पड़े और बंकरों में तैनात हो गये। वे उन हमलावरों को पीछे धकेलने में लग गये जिन्हें उस समय के बेहतरीन शस्त्रों 2" और 3" के मॉर्टरों के कवरिंग फायर का सहारा मिल रहा था। यद्यपि दुश्मन के तेज़ी से किये गये हमले से सैनिक भौंचक्के रह गये थे, फिर भी तुरंत ही संभलकर उन्होंने ऐसा जवाब दिया कि शत्रु उनके सुरक्षा कवच को भेद न सका। हमलावरों फिर से इकट्ठे हुये और उन्होंने दो बार फिर से हमला किया परंतु सैनिक भौंचक्के होने की स्थिति से निकल चुके थे और दोनों ही हमलों में दुश्मन को पीछे धकेल दिया गया। दुश्मन के सामने स्पष्ट हो गया कि उनका बिजली की तेज़ी से किया गया आक्रमण असफल हो गया था। अतः छह घण्टे के युद्ध के बाद वे अस्त–व्यस्त अवस्था में पीछे हट गये। पीछे हटते हुये उन्होंने इस छोटे से मामूली हथियार लिये हुये सैन्यबल के हाथों हुई पराजय का नपुंसक क्रोध स्कर्दू के क़स्बे पर उतारा। वे अपने दस मृत साथियों को पीछे छोड़ चुके थे। एक ज़िन्दा पकड़ लिया गया था। फिर भी पीछे हटते हुये सबक़ सिखाने के लिये उन्होंने वज़ीर अमरनाथ और क़स्बे में रहने वाले अनेक ग़ैर–मुसलमानों को क़त्ल कर डाला। रक्षक सेना के 7 जवान शहीद हुये तथा एक अधिकारी और पन्द्रह अन्य सिपाही घायल हुये। और सबसे बुरी घटना यह थी कि जो तीन मुसलमान सिपाही वायरलेस सेट का इस्तेमाल करना जानते थे वे भगोड़े होकर शत्रु से जा मिले। परंतु लेफ़्टिनेंट कर्नल थापा तो वायरलेस सेट के संचालन में उस्ताद थे। उन्होंने स्वयं ही इसे चलाने का फैसला किया।

युद्धबंदियों से पूछताछ की गयी तो पता चला कि कैप्टेन एहसान अली ने उपलब्ध 600 सैनिकों में से आधी संख्या को ही लड़ाई में उतारा था। इसके रणनीतिक कारण समझ में नहीं आ रहे थे। यह ग़लती तो थी ही ऊपर से जब ये सिपाही पीछे धकेल दिये गये तो उसने अपने सारे सैन्यबल को समूचे क्षेत्र से हट जाने को कहा। इससे लाभ यह हुआ कि कुमुक के दो और दल जो कुल मिलाकर 140 आदमी थे कैप्टेन अजीत सिंह के नेतृत्व में 13 और 15 फरवरी की रातों में किले में आकर रक्षक सैनिकों से मिल गये। अब लेफ़्टिनेंट कर्नल थापा के पास कुल मिलकर 285 सिपाही हो गये। यद्यपि थापा के पास उन सैनिकों से दुगुने सैनिक थे जिन्होंने 11 फरवरी को दुश्मनों के पहले हमले के बाद उन्हें खदेड़ा था फिर भी उस पहाड़ी क्षेत्र की सुरक्षा के लिये वे बिल्कुल भी पर्याप्त नहीं थे जिसके बारे में कहा जाता है कि आम तौर पर वह "रक्षक पक्ष के सैनिकों को निगल जाता था।" यदि थोडा सा भी रणनीतिक संतुलन बनाये रखना था तो अपने से कई गुना मज़बूत दुश्मन से क़िले को, चौकियों को, परिधि सुरक्षा यानी पेरिमीटर और उच्च स्थल यानी हाइ ग्राउंड को, प्वाइंट 8853 और क़िले की भारी भरकम दीवार को, यों समझ लो कि बांहों में भरकर, अपने शरीर की आड़ देकर बचाये रखना था। पर थापा के पास इतने सैनिक तो थे नहीं कि वे हर स्थान पर पर्याप्त शक्ति झोंक दें। वे सिर्फ इतना कर सकते थे कि जितना संभव हो सके अच्छी से अच्छी तैनाती करें। थापा ने क़िले मे क़स्बे की समूची ग़ैर–मुस्लिम जनता को शरण दे रखी थी जिनकी संख्या 229 थी। इसके साथ ही उनके पास 19 मुसलमान शरणार्थी और 22 मुसलमान नागरिक युद्धबंदी थे। इन सभी को सामान इधर उधर ले जाने के लिये इस्तेमाल किया जा सकता था।

14/15 फरवरी की रात को कबाइलियों ने नये उत्साह से हमला किया। सबसे पहले तो उन्होंने प्वाइंट 8853 तथा नानसोक और बलक्रो नाम के दो गांवों को क़ब्ज़े में ले लिया। इसके बाद उन्होंने इन जगहों पर लगभग 500 अतिरिक्त सैनिकों को तैनात करने का काम किया। इससे पास के गांवों सोन्दस, गोम्बा, स्कर्दू और कपाशना में इन सैनिकों की उपस्थिति को महसूस किया गया। दुश्मन उच्च स्थल पर था,जहां से उनकी नज़र क़िले पर थी विशेषकर 21 और 24 फरवरी को उन्होंने क़िले पर गोलाबारी और स्नाइपिंग अर्थात छिपकर गोलियां चलाना जारी रखा। यद्यपि दुश्मन सैनिकों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी, उन्होंने थापा से सुरक्षित दूरी बनाये रखने का फैसला किया और उनकी रक्षा पंक्ति को स्नाइपिंग और गोलाबारी से ढीला करने की रणनीति अपनाई। अपने सैनिकों का मनोबल ऊंचा रखने के लिये, अपने स्थान के इर्द गिर्द के क्षेत्र पर प्रभुत्व बनाए

**11 फरवरी को सुबह की पहली किरण के साथ ही भारी गोलीबारी और भयानक शोरशराबे से समूचा सैन्यबल जाग गया। सैनिक समय रहते खंदकों में कूद पड़े और बंकरों में तैनात हो गये**

रखने के लिये और सैनिकों की आक्रामकता को बनाए रखने के लिये थापा ने आक्रामक गश्त को प्रोत्साहित किया। उन्होंने अपने आक्रामक गश्ती दलों को अपने रक्षा वृत्त से आठ किलोमीटर दूर तक मारो और भागो अर्थात हिट एण्ड रन अभियानों के लिये भेजा। ऐसी गतिविधियों के नतीजे में कई झड़पें हुईं जिनमें सबसे गंभीर थी 24 फरवरी वाली झड़प, जब थापा की एक प्लाटून पर घात लगाकर हमला किया गया। लेकिन प्लाटून ने बिना घबराये, मुंहतोड़ जवाब दिया, और केवल दो जवानों के नुकसान के साथ घेरा तोड़कर निकल आई। अब आक्रमणकारियों की हिम्मत बढ़ गई थी। 4 और 6 मार्च के बीच उन्होंने पहले से अधिक बार, पहले से अधिक मात्रा में थापा की चौकियों पर गोलीबारी की। 6 मार्च को उन्होंने 70 सिपाहियों के एक दल को थापा की पिकेट पर हमला करने के लिये भेजा। परंतु वे खदेड़ दिये गये। उनका एक सैनिक मारा गया और थापा के सैनिकों को खरोंच तक नहीं आई। 14 मार्च को थापा के एक गश्ती दल ने घात लगाकर दुश्मन पर हमला किया और उन्हें भारी नुकसान पहुंचाया। यह तो प्वांइट 8853 पर उनकी एक मशीनगन तैनात थी जिसने समय रहते हस्तक्षेप किया, नहीं तो उनका एक भी सिपाही नहीं बचता। मशीनगन की गोलीबारी के बीच वे बच निकलने में सफल हो गये और अपने मृत साथियों के शरीरों के साथ घायलों को भी साथ ले गये।

## कुमुक पहुंच नहीं पाई

लेफ़्टिनेंट कर्नल थापा लगातार मांग करते रहे तो 17 फरवरी को राज्य की सेना की एक कम्पनी 2" और 3" के मोर्टारों के साथ भेजी गई। इस टुकड़ी का नाम 'बिस्किट टुकड़ी (बिस्किट कॉलम)' रखा गया। कर्गिल में ब्रिगेडियर फक़ीर सिंह के नेतृत्व में, जिनके साथ भारतीय सेना के मेजर कौट्स भी थे, एक और कंपनी बिस्किट टुकड़ी के साथ मिल गई। कर्गिल से वे पर्कुट्टा और गोल की तरफ़ चले। कड़ाके की ठंड थी जिसके कारण उनकी गति बहुत धीमी थी। स्थितियां ऐसी थीं कि किसी भी सैन्य गतिविधि को अधिक देर तक गुप्त नहीं रखा जा सकता था। दुश्मन को इस टुकड़ी के आने की ख़बर लग गई और स्कर्दू में इतने सिपाही छोड़ दिये गये जो थापा के सैनिकों पर लगातार गोलीबारी कर सकें। वहां से सौ सैनिकों की एक टुकड़ी भेजी गयी जिसने स्कर्दू से 32 किलोमीटर दूर गोल में घात लगाकर हमला किया। गोल तंग घाटी से गुज़रता हुआ संकरा रास्ता था जिसके दोनों ओर ऊंची और दुर्गम खड़ी चट्टानें थीं। थापा के पास सूचना थी कि ब्रिगेडियर फक़ीर सिंह की टुकड़ी 18 मार्च को उनके पास पहुंचने वाली थी, परंतु 15 मार्च को उन्हें सूचना मिली कि शत्रु अपनी रक्षा पंक्ति से सिपाहियों को निकालकर गोल की तरफ़ ले जा रहा है। थापा को समझते देर नहीं लगी कि बिस्किट टुकड़ी को रोकने के लिये ऐसा किया जा रहा है। उन्होंने तुरंत ही वायरलेस पर संपर्क साधने की कोशिश की परंतु यह संभव नहीं हो पाया क्योंकि बिस्किट टुकड़ी का वायरलेस सेट कर्गिल में ही ख़राब हो चुका था। निराश होकर थापा ने श्रीनगर बात की उर दुश्मन की टुकड़ी पर तुरंत हवाई हमला करने की प्रार्थना की ताकि ब्रिगेडियर फक़ीर सिंह की टुकड़ी सुरक्षित रहे। पर कोई हवाई हमला नहीं हुआ। इस बीच गोल और स्कर्दू के हालात से अनभिज्ञ फक़ीर सिंह की टुकड़ी जैसे स्वयं ही चल कर दुश्मन के जबड़े में आ गई। शत्रु तंग घाटी की चट्टानी ऊंचाइयों पर बिल्कुल तैयार बैठा था और नीचे चल रही कुमुक की टुकड़ी उसे देख ही नहीं पा रही थी। यह टुकड़ी तंग घाटी के बीचोंबीच पहुंची ही थी कि अचानक ही भारी गोलीबारी होने लगी। कई सिपाही हताहत हो गये और भगदड़ मच गई। ऊंचाइयों पर बैठा दुश्मन पूरी बेरहमी से गोलीबारी कर रहा था जिससे टुकड़ी का संयोजन ही बिगड़ गया। टुकड़ी बिखर गई और पीछे हट गई। 26 जवान मारे गये, 7 लापता (संभवतः मृत) थे और 18 घायलों में टुकड़ी के कमांडर ब्रिगेडियर फक़ीर सिंह भी थे। इससे भी बुरा तो यह हुआ कि दुश्मन के सिपाही घाटी में उतर आये और टुकड़ी का सारा साज़ो सामान जिसमें भारी मात्रा में हथियार, गोलियां और राशन थे लूट लिया। टुकड़ी किसी तरह कर्गिल पहुंच कर फिर से एकत्र हुई, जहां ब्रिगेडियर ने कौट्स को कार्यभार सौंपा और ज़ख्मी हालत में श्रीनगर निकल गये जहां वे 2 अप्रैल को पहुंचे।

इस बीच थापा को बिस्किट कॉलम पर आई विपत्ति का कोई ज्ञान नहीं था। उन्होंने दो प्लाटून तैहार किये और कुमुक की टुकड़ी की अगवानी करने के लिये अपनी रक्षा पंक्ति से बाहर आगये। परंतु वे कुछ किलोमीटर आगे गये तो ग्रमीणों ने उन्हें कुमुक की दुर्दशा के बारे में बताया। निराश और हतोत्साहित होकर थापा और उनके साथी वापस क़िले की ओर लौटे तो रास्ते में घात में बैठे दुश्मन ने हमला कर दिया। परंतु अनुभवी सैनिकों ने आठ किलोमीटर तक दौड़ते हुये दुश्मन से लड़ाई लड़ी और अंततः बिना किसी नुकसान के किले में घुसने में सफल रहे।

दुश्मन किसी भी भुलावे में न था। उसे पता था कि उसने कुमुक वाली टुकड़ी को तो परास्त कर दिया है, लेकिन श्रीनगर तुरंत ही स्कर्दू में ताक़त बढ़ाने के लिये कुमुक भेजने का प्रयत्न करेगा। इसलिये स्कर्दू को जल्द से जल्द क़ब्ज़े में लेना उनके लिये बहुत ज़रूरी था। थापा के सिपाहियों ने एक के बाद एक उनके कई हमलों को नाकाम कर दिया था। उनसे पार पाना टेढ़ी खीर थी। फिर भी जैसे भी हो सके हमला करना ही था क्योंकि इसके सिवा कोई चारा न था। 18 मार्च को 3 बजे सुबह उन्होंने एक सुनियोजित हमला

**निराश और हतोत्साहित होकर थापा और उनके साथी वापस किले की ओर लौटे तो रास्ते में घात में बैठे दुश्मन ने हमला कर दिया। परंतु अनुभवी सैनिकों ने आठ किलोमीटर तक दौड़ते हुये दुश्मन से लड़ाई लड़ी और अंततः बिना किसी नुकसान के किले में घुसने में सफल रहे**

किया। अधिकतर गोलीबारी उन्होंने छह नंबर वाली पिकेट पर केन्द्रित रखी। भारी संख्या में सिपाही गिरते गये तो बंदूकें भी कम होती चली गयीं फिर भी थापा के शेरों ने हमले को नाकाम बना दिया। दो घंटे बाद दुश्मन टिड्डी दल की तरह चारों तरफ़ से क़िले पर टूट पड़े। मशीनगन बेरोक चलती रही और थापा के सैनिकों पर उच्च विस्फोटकों वाले बम गिरते रहे। पर वे डटे रहे और दुश्मन के खदेड़ दिया। पर दुश्मन भी कहां मानने वाला था। वह हर बार वापस आया और उतनी ही ताक़त के साथ खदेड़ा जाता रहा। आमने सामने वाला भयंकर युद्ध कई दिनों तक चलता रहा। दक्षिणी चौकी पर तैनात कैप्टेन जीत सिंह और जत्थेदार प्यारा सिंह अत्यंत कठिन परिस्थितियों में भी डटे रहे। कैप्टेन अजीत सिंह तो 30 मार्च को ही गंभीर रूप से घायल हो चुके थे। उनके जवानों ने कई दिनों तक एक बूंद पानी नहीं पिया पर मोर्चा नहीं छोड़ा। 3 और 4 अप्रैल के बीच की रात में दो हरकारों की सहायता से लेफ़्टिनेंट कर्नल थापा कैप्टेन अजीत सिंह की चौकी से सम्पर्क साधने में सफल रहे। दुश्मन के सैनिक टिड्डियों की तरह पूरे क्षेत्र में फैले हुये थे। पर ये दो हरकारे,उनसे बचते हुये, रेंगते हुये अपने क्षेत्र में लौट आये और उनका बाल भी बांका न हुआ।

7 अप्रैल को दुश्मन ने स्कर्दू पर कब्ज़ा करने का एक और प्रयत्न किया पर थापा के मुस्तैद सैनिकों ने हमले को नाकाम करके फिर से उन्हें खदेड़ दिया। पर फिर भी शत्रु स्कूल पिकेट को काटने में सफल रहा। थापा जानते थे कि कुमुक के अभाव में जिस तरह से उन्होंने सुरक्षा की रणनीति बनाई थी उसके अनुसार स्कूल पिकेट का रणनीतिक महत्व ऐसा था कि उसके शत्रु के हाथ में चले जाने से समूचे स्कर्दू की सुरक्षा दांव पर लग जाती थी। किसी भी सूरत में पस पिकेट को हाथ से नहीं जाने देना था। उन्होंने श्रीनगर से तुरंत हवाई हमले की प्रार्थना की। स्थिति अत्यंत चिंताजनक थी।

10 अप्रैल को सुबह सवेरे 6 जम्मू व कश्मीर इन्फेंट्री के नायक छात्रू ने शत्रु की रक्षा पंक्तियों को भेदकर स्कूल पिकेट पर कब्ज़ा कर लिया। अब इस चौकी पर

**शत्रु की इस अद्भुत योजना ने असाधारण सफलता प्राप्त करते हुये बाज़ी ही पलट दी। जुलाई के आरंभ में ही कर्गिल और द्रास दुश्मन के कब्ज़े में आ गये**

कब्ज़ा करना शत्रु के लिये कठिन था। स्कूल पिकेट नाम की इस चौकी पर किये गय अनेक हमलों में उसके काफ़ी सैनिक मारे गये थे। इसलिये उसने पीछे हटने का फैसला किया।

## शत्रु की साहसिक और प्रगतिशील रणनीति

स्कर्दू की अत्यंत निराशाजनक स्थिति से दबा हुआ श्रीनगर अंदर ही अंदर घुट रहा था और फक़ीर सिंह की टुकड़ी की असफलता के बाद एक उपयुक्त सैन्यबल को तैयार करके जल्द से जल्द स्कर्दू भेजने के यथासंभव प्रयत्न हो रहे थे। 8 अप्रैल तक लगभग दो बटालियन सिपाही बंजर पहाड़ों को पार करक स्कर्दू पहुंचने का प्रयत्न कर रहे थे। 14 अप्रैल आते आते कई टुकड़ियां श्रीनगर, घुमरी, मटयान, द्रास और कर्गिल के बीच फैली हुई थीं। परन्तु तबाही अभी बाक़ी थी। कुमुक के सैन्यबल पर केन्द्रीय नियंत्रण के अभाव और हौसले की कमी का भरपूर फ़ायदा उठाया। उसने असाधारण कल्पनाशीलता का इस्तेमाल करते हुये प्रगतिशील रणनीति को अद्भुत तालमेल के साथ लागू किया और दुर्गम क्षेत्र में लंबी दूरियों तक तेज़ी से आगे बढ़ने की प्रतिबद्धता दिखाई। जब भी उन्होंने थापा की रक्षापंक्ति को तोड़ने की कोशिश की थी उन्हें मुंह की खानी पड़ी थी। वे अच्छी तरह जानते थे कि अतिरिक्त सिपाहियों की कुमुक स्कर्दू पहुंच गई तो उसपर क़ब्ज़ा करना असंभव हो जाएगा। इसलिये उन्होंने अत्यंत साहसिक और अद्भुत योजना बनाई। इस योजना के अनुसार कुमुक को हर तरह से मात देने से पहले महत्वपूर्ण संचार केन्द्रों पर उनके पहुंचने से पहले उन संचार केन्द्रों पर क़ब्ज़ा कर लेना था। स्पष्ट था कि इससे कर्गिल पर शत्रुओं का क़ब्ज़ा हो जायेगा और कुमुक स्कर्दू नहीं पहुंच पाएगी जिससे स्कर्दू के पतन को रोकना असंभव हो जाएगा। श्रीनगर से कर्गिल तक का रास्ता लड़ाई के क्षेत्र के समानांतर चलता था इसलिये अतिरिक्त सैनिकों की कुमुक के ठिकानों और स्कर्दू के बीच रणनीतिक दृष्टि से उपयुक्त स्थलों पर सैनिक हस्तक्षेप करना दुश्मन के लिये आसान था। उसकी योजना थी कि अलग अलग आत्मनिर्भर टुकड़ियों को अपने अपने उद्देश्यों के साथ आगे बढ़ाया जाए और ये सभी टुकड़ियां एक केन्द्रीय नियंत्रण से संचालित हों। पहली टुकड़ी को श्रीनगर और द्रास के बीच गुंड में तैनात होना था। दूसरी टुकड़ी को विराट हिमालय पर्वत श्रृंखला को काउबाली गली पर पार करके पिन्द्रास पहुंचना था। तीसरी और चौथी टुकड़ी को देवसाइ पठार पर चढ़कर नीचे शिंगो घाटी की ओर उतरकर गुलटारी पहुंचना था। यहां से तीसरी टुकड़ी द्रास पहुंचकर उसपर कब्ज़ा कर सकती थी और चौथी टुकड़ी जिसमें 250 लड़ाके थे शिंको नदी के साथ साथ चलते हुये कर्गिल पर अधिकार करना था। हर टुकड़ी को एक दूसरे के साथ तालमेल रखते हुये दस मई को अपना अपना काम पूरा करना था। कुमुक को चकमा देने के लिये परकुट्टा में तैनात शत्रु सैनिकों को धीरे धीरे और खुले आम वापस स्कर्दू की ओर मुड़ना था ताकि भारतीय टुकड़ियां उनके पीछे आयें और कर्गिल की ओर जा रही शत्रु टुकड़ियों से दूर चले जाएं।

शत्रु की इस अद्भुत योजना ने असाधारण सफलता प्राप्त करते हुये बाज़ी ही पलट दी। जुलाई के आरंभ में ही कर्गिल और द्रास दुश्मन के कब्ज़े में आ गये। इस अभियान के लिये शत्रु के सैनिक उसी सैन्यबल से लिये गये थे जो स्कर्दू पर घेरा डाले बैठा था। अप्रैल के मध्य से जुलाई के आरंभ तक थापा के सैनिकों को कुछ राहत मिली थी यद्यपि गोलीबारी और स्नाइपिंग लगातार जारी रहे। एक बार तो उनकी चौकी पर बहुत कही कम समय में 200 गोले बरसाये गये जिनसे से थापा के दो बेहतरीन सैनिक शहीद हो गये। स्कर्दू में भोजन और असलहा ख़तरनाक

हद तक कम हो रहा था। अनाज तो 70 से 80 लोगों के लिये था जबकि थापा को 600 पेट भरने थे जिनमें शरणार्थी भी थे। रसद सीमित करने के सिवा कोई चारा न था। 250 ग्राम आटा और 30 ग्राम दाल प्रति व्यक्ति की सीमा निश्चित कर दी गई। ज़ख्मी और बीमार बिना शिकायत किये चुपचाप सब कुछ सहते रहे क्योंकि घेराबन्दी काफ़ी समय से चल रही थी और दवाइयां ख़त्म हो रही थीं। अब क्या किया जा सकता था? सभी बीमारों और ज़ख़्मियों को खंदकों में बने रहने का आदेश दिया गया।

धीरे धीरे शत्रु ने क़िलेबन्दी पर घेरा कसना शुरू किया। थापा की क़िलेबन्दी 1350•550 मीटर तक सीमित होकर रह गई। जब शत्रु कर्गिल/द्रास सेक्टर में व्यस्त था, थापा ने उस दौरान अपनी सुरक्षा पंक्ति को बेहतर किया था, बंकरों के छेदों में से गोलियां चलाने के लिये बंदूकों को बेहतर स्थिति में तैनात किया था जिससे कि यथासंभव व्यापक क्षेत्र में गोलीबारी की जा सके। सैन्य शब्दावली में इसे आर्क ऑफ़ फायर कहा जाता है यानी प्रभावशाली गोलीबारी का वृत्त। उन्होंने बंकरों में तैनात संतरी के सर के ऊपर की छत को भी मज़बूत करवाया था और रक्षा गतिविधियों के सभी स्थलों को संचार बंकरों के माध्यम से एक दूसरे से जोड़ा था। इसके फलस्वरूप आगे जाकर कई क़ीमती जानें बचाई जा सकीं। इसके बावजूद एक एक दिन गुज़रने के साथ साथ उनकी स्थिति कमज़ोर होती जा रही थी।

# संयुक्त राष्ट्र संघ में जम्मू–कश्मीर

नवंबर 1947 में भारत के वायसराय लुई माउंटबैटन पाकिस्तान में मोहम्मद अली जिन्ना से मिले। माउंटबैटन ने सुझाव दिया कि कश्मीर में जनमत संग्रह करवाने के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ को आमंत्रित किया जाए। इसके एक माह बाद भारत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में चला गया। परंतु कश्मीर के विलय के मुद्दे को लेकर भारत कभी भी संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने नहीं गया अपितु पाकिस्तान प्रायोजित युद्ध और पाक अधिकृत क्षेत्र को छुड़ाने के मुद्दे को लेकर शिकायत ज़रूर की गई।

माउंटबैटन किसी भी तरह से संयुक्त राष्ट्र संघ तक जाना चाहते थे। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि जनमत संग्रह का सुझाव माउंटबैटन और जवाहरलाल नेहरू के बीच की बात थी। यहां तक कि सरदार वल्लभभाई पटेल को भी इस बात का पता न था कि भारत संयुक्त राष्ट्र संघ तक जाने की प्रक्रिया में है। 7 जनवरी, 1948 को नेहरू ने सरदार पटेल को एक पत्र लिखा, "आपकी अनुपस्थिति में, कश्मीर की स्थिति, विशेषकर संयुक्त राष्ट्र संघ के संदर्भ में, अलग ही मोड़ ले चुकी है और हमें अनेक फैसले करने पड़े हैं।"

संयुक्त राष्ट्र संघ में जाने के भारत सरकार के फैसले का कांग्रेस के भीतर और बाहर सभी ने विरोध किया। कुछ ही समय बाद महात्मा गांधी ने भविष्यवाणी की, "जिसे जम्मू–व–कश्मीर का प्रश्न होना चाहिये था उसे सुरक्षा परिषद ने भारत–पाक का प्रश्न बना दिया। ग्रेट ब्रिटेन, और उसकी देखादेखी संयुक्त राज्य अमरीका पाकिस्तान की तरफ़ हो गये। उन्होंने पाकिस्तान के आक्रमण को ध्यान में नहीं रखा और जैसा कि पाकिस्तान चाहता था, भारत के विरुद्ध उसकी सभी शिकायतों को अतिरिक्त बल देकर सामने रखा।"

अंततः 4 जून 1948 को सरदार पटेल ने भी इसकी पुष्टि की, "अत्यंत आश्चर्य और दुख के साथ मैंने कश्मीर को लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्रवाई पर पूरे ध्यान से नज़र रखी है...इस मामले में ब्रिटिश कूटनीति को समझना कठिन है। अब यह अच्छे के लिये है या बुरे के लिये, हम इसमें पड़ चुके हैं और हमसे जो हो सके हमें करना ही होगा।" जम्मू–व–कश्मीर आंतरिक मामला था परंतु नेहरू के लिये यह अंतर्राष्ट्रीय के साथ–साथ निजी भी होता जा रहा था। बाद में उन्होंने संसद में बताया, "मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि कश्मीर के मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ से वापस लेने को लेकर शोर क्यों हो रहा है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ से कश्मीर के मामले को वापस लेने की बात नही है। यह मामले को एक अदालत से निकालकर दूसरी अदालत में ले जाने का प्रश्न नहीं है। मामला संयुक्त राष्ट्र को एक अंतर्राष्ट्रीय मंच मानकर उसके सामने नहीं रखा गया है। यह मामला तो संसार के देशों के सामने है, चाहे वे एक हों या उनमें एकता न हो, वे एक मंच पर हों या न हों। कुल मिलाकर यह एक अंतर्राष्ट्रीय मामला है।"

21 अप्रैल 1948 को सुरक्षा परिषद ने भारत और पाकिस्तान से अपनी–अपनी सेनायें वापस लेने के लिये कहा। एक सप्ताह के बाद परिषद ने प्रस्तावित किया कि भारत और पाकिस्तान को निष्पक्ष जनमत संग्रह के लिये परिस्थितियां बनानी होंगी जिससे कि निर्णय हो सके कि जम्मू–व–कश्मीर भारत के साथ जाएगा या पाकिस्तान के साथ। परंतु जिस कुटिलता और कुनीति के लिये पाकिस्तान जाना जाता है उसके चलते जनमत संग्रह संभव नहीं हो पाया।

जनमत संग्रह न होने के बावजूद, जम्मू–व–कश्मीर के निवासियों ने भारत के साथ विलय की इच्छा प्रकट की। लद्दाख़ की बुद्धिस्ट एसोसिएशन के अध्यक्ष छेवांग रिग्ज़िम ने नेहरू को एक ज्ञापन देकर लद्दाख के भारत में विलय की पक्षधरता प्रकट की। ऐसा ही एक ज्ञापन जम्मू के लोगों ने भी भारत सरकार को दिया, परंतु जनमत की बात करने वाले नेहरू ने उनकी मांग पर ध्यान नहीं दिया। उस समय कश्मीर घाटी के शेख़ अब्दुल्ला भी जम्मू–व–कश्मीर के भारत का अभिन्न अंग होने के पक्षधर थे। ■

**–डी. खंडेलवाल**

कर्गिल के पतन से भारत को बड़ा धक्का लगा था और जनरल थिम्मैया किसी भी तरह से उसे फिर कब्ज़े में लेना चाहते थे। इसलिये उन्होंने थापा को आदेश दिया कि घेराबन्दी तोड़कर स्कर्दू से निकल जाएं और मरोल के पास ओल्थिंगथांग पहुंचें। परंतु थापा के सैनिक इस अभियान के लिये बहुत कमज़ोर थे, विशेषकर तब जब उनके साथ सैंकड़ों शरणार्थी, स्त्रियां , बच्चे, बूढ़े, बीमार और घायल थे। उनके कुछ अपने सिपाही भी गंभीर रूप से घायल थे और मुश्किल से चल पाते थे। थापा ने अपनी स्थिति बताई तो थिमैय्या जैसे सेनापति को अधिक तर्क की आवश्यकता नहीं थी। वे तुरंत समझ गये और अपना आदेश निरस्त कर दिया।

थापा ने बार–बार हवाई जहाज़ के माध्यम से आवश्यक वस्तुयें गिराने की प्रार्थना की। परंतु यह संभव नहीं था क्योंकि तत्कालीन वायुसेना के पास ऐसे अभियान के लिये डकोटा हवाई जहाज़ थे जो 4670 मीटर की ऊंचाई पर उड़ने में सक्षम नहीं थे। निराशा तो पहले ही से थी परंतु जून के मध्य में अतिरिक्त सिपाहियों की कुमुक की त्रासदी के बारे में पता चला तो समूचे सैन्यबल को अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देने लगा।

17 जून को चित्राल के मेहतर के बेटे कर्नल शाहज़ादा मताउल मुल्क ने, 5 जम्मू व कश्मीर इन्फेंट्री के एक गिरफ़्तार युद्ध बंदी अमरनाथ के माध्यम से एक संदेश भेजा जिसमें उनसे आत्मसमर्पण करने को कहा गया था और आश्वस्त किया गया था कि सभी युद्धबंदियों के साथ उचित व्यवहार किया जाएगा। संदेश यों थाः–

सेवा में.

कश्मीर स्टेट की फौज के अफ़सर और सिपाही, स्कर्दू गैरिसन

कर्नल शाहज़ादा एम. मताउल मुल्क, कमांडर, आज़ाद चित्राल बल, स्कर्दू की तरफ़ से(.)

एक (.) आप लोगों को राहत पहुंचाने की जो भी कोशिशें ब्रिगेडियर फ़क़ीर सिंह, लेफ़्टिनेंट कर्नल कृपाल सिंह और लेफ़्टिनेंट कर्नल संपूर्ण बचन सिंह ने की हैं पूरी तरह नाकामयाब हो गयी हैं और इन कोशिशों में काफ़ी सिपाही मारे गये हैं और अनेक बंदी बना लिये गये हैं(.) आज़ाद फौजेम अब कंगन–सोनामर्ग और बांडीपुर के इलाक़ों से कार्रवाई कर रही हैं और कहीं–कहीं श्रीनगर से 15 मील की दूरी क अंदर तक पहंच गई हैं(.)

दो(.) आप लोगों ने सिपाही की तरह अपना फर्ज़ निभाया है (.) अब यह साफ़ हो गया है कि इस पहाड़ी इलाक़े में आप लोगों को कोई राहत नहीं पहुंच सकती और इसमें कोई शक़ भी नहीं है (.) अब लड़ाई से कोई फायदा नहीं है क्योंकि उससे आप सबको अपनी जानें गंवानी पड़ सकती हैं(.)

तीन(.) इसलिये आपको मेरी सलाह है कि अपने हथियार डाल दें और मैं पूरी ज़िम्मेदारी लेता हूं कि आप सभी की पूरी हिफ़ाज़त होगी(.) आप लोगों को मुझपर पूरा यक़ीन होना चाहिये क्योंकि मैं सिर्फ़ एक सिपाही नहीं हूं, मुझमे शाही खून भी है(.) मैंने अपने अफ़सरों को ताक़ीद की है कि जो कोई भी सफ़ेद झण्डा लेकर सामने आये कोई गोली न चलाई जाए और उसे हिफ़ाज़त के साथ हिरासत में ले लिया जाए।

चार(.) आख़रि में अपनी ख़ैरख़्वाही के सबूत के तौर पर मैं आपको बताना चाहूंगा कि चित्राल में रहने वाले एक भी हिन्दू या सिक्ख को खरोंच तक नहीं आई है और किसी भी ग़ैर मुस्लिम जायदाद को नुकसान नहीं पहुंचाया गया है(.) अभी तक वे सभी अपना कारोबार ऐसे कर रहे हैं जैसे कुछ हुआ ही नहीं है(.) इसलिये मेरी सलाह है कि हथियार डाल दें और अपनी ज़िन्दगियां बचाएं (.) आपको मेरे लफ़्ज़ों की ईमानदारी और सचाई पर भरोसा है तो किसी अफ़सर को सफ़ेद झण्डे के साथ भेज दें(.)

थापा पर कोई असर नहीं हुआ और उन्होंने हरकारे अमरनाथ के हाथों जवाब भेज दिया। घेराबंदी बनी रही।

19 जून को तत्कालीन भारतीय वायुसेना के दो टेम्पेस्ट हवाई जहाज़ों ने ओल्थिंग और सोन्दस पर उड़कर रॉकेट और गोले बरसाये जिससे शत्रु के कुछ सिपाही मारे गये। हवाई हमला अगले दिन भी किया गया। 28 जून और 1 जुलाई को टेम्पेस्ट हवाई जहाज़ों ने थापा के गैरिसन पर कुछ रसद गिराई। परंतु इस काम के लिये ये हवाई जहाज़ नहीं बने थे इसलिये गैरिसन को कोई लाभ नहीं हुआ। असल में हालात बदतर होते जा रहे थे। रसद और असलाह की कमी ख़तरनाक हदों को छू रही थी, और दोनों का ही इस्तेमाल अत्यंत किफ़ायत से किया जाना था। 8 जुलाई को रसद की अंतिम बोरी ख़त्म हो गयी।थापा के सैनिकों ने छह में से चार कंटेनर कब्ज़े में ले लिये, जबकि बाक़ी दो नदी में गिर गये। अगले दिन प्वाइंट 8853 पर मौजूद दुश्मन पर तीन टेम्पेस्टों ने हमला किया।

16 और सत्रह जुलाई को हमले फिर से किये गये और रसद भी गिराई गयी। परन्तु इससे मोर्चे पर गैरिसन के बने रहने की क्षमता में विशेष अंतर नहीं आया। थापा को तो बहुत सारे असलहा और रसद की आवश्यकता थी और छोटे से हवाई जहाज़ टेम्पेस्ट की क्षमता बहुत कम थी विशेषकर तब जब उन्हें दुश्मन पर बरसाने के लिये रॉकेटों और गोलों का अपना प्राथमिक भार भी उठाना होता था। असलहे के बिना हवाई जहाज़ भेजने का प्रश्न ही नहीं उठता था। जैसी कि कहावत है बहुत देर से बहुत ही कम किया जा रहा था। गैरिसन पर अंधेरा छाता जा रहा था। घेराबन्दी जारी थी।

अगस्त के आरंभ में घाटी में चेरी के पेड़ फलों से लदे हुये थे और अनेक बाग़ों में हरी हरी नरम टहनियां फल फूल रही थीं। विडम्बना यह थी कि घाटी पर नये जीवन का प्रकाश फैल रहा था और गैरिसन मे निराशा का अंधेरा सब की आंखों में उतर रहा था। हर सुबह लोग एक ख़तरनाक आशंका के साथ जागते थे। घेरा तोड़ना तो असंभव था, क्योंकि अपने सैनिकों की जो चौकी सबसे निकट थी वह देवसाई

**थापा ने बार-बार हवाई जहाज़ के माध्यम से आवश्यक वस्तुयें गिराने की प्रार्थना की। परंतु यह संभव नहीं था क्योंकि तत्कालीन वायुसेना के पास ऐसे अभियान के लिये डकोटा हवाई जहाज़ थे जो 4670 मीटर की ऊंचाई पर उड़ने में सक्षम नहीं थे**

पठार के पार 240 किलोमीटर की दूरी पर गुरेस में थी और वीच वाला क्षेत्र दुश्मन के सैनिकों से भरा हुआ था। गैरिसन में मौजूद उन स्त्री–पुरुषों से क्या उम्मीद की जा सकती थी जो हड्डियों और चमड़ी के पिंजर भर रह गये थे और दो क़दम चलने पर भी प्रेत की तरह लड़खड़ा जाते थे। हफ़्तों से वे पेट भरने के लिये जानवरों के लिये रखा हुआ जौ खा रहे थे। उनमें से 90 प्रतिशत बीमार थे, लगातार कुपोषण से उनकी प्रतिरोध क्षमता उतनी कम हो गयी थी कि उन्हें आसानी से मलेरिया, पेचिश और बुख़ार हो रहे थे।

सैनिक घेरे में बन्द थे और लगातार गोलाबारी और स्नाइपिंग से मरते हुये साथियों को देख रहे थे।

## घेराबंदी जारी

7 अगस्त को टेम्पेस्ट फिर से स्कर्दू के आकाश में दिखाई दिये। उन्होंने दुश्मन की चौकियों पर हमला किया और गैरिसन के लिये रसद के दो कंटेनर गिराए। पर उससे क्या होना था! 9 अगस्त को पहली बार पाकिस्तानियों ने 3.7" के हॉविट्ज़र का इस्तेमाल किया।यद्यपि हाविट्ज़र के गोलों की ज़बरदस्त आवाज़ और लगातार गोलाबारी से आरंभ में कुछ परेशानी हुई परन्तु जब थापा द्वारा मज़बूत करवाई गई बंकरों की छतों को इतने बड़े गोलों से भी कोई नुकसान न पहुंचा तो सैनिकों में जैसे नई जान आ गई। 12 अगस्त को फिर से गोले बरसाये गये मगर इस बार उनका निशाना केवल एक पिकेट थी। गोलाबारी के कुछ देर बाद ही पिकेट पर 200 सेनिकों की एक पलटन ने हमला कर दिया। थापा के आदमी ज़ख़्मी शेरों की तरह लड़े। उनका असलहा ख़त्म हो गया। तब थापा ने गोलियों का अंतिम बक्सा भेज दिया। हमला इतना तेज़ था कि शत्रु सिपाहियों सर पर ही आ गया था। अब हाथों से लड़ाई हो रही थी। चार घण्टे तक ऐसा ही चलता रहा और अंततः शत्रु पीछे हटने के लिये मजबूर हो गया। पिकेट के इर्द गिर्द उसके कई सिपाही मरे पड़े थे। यह गैरिसन की अंतिम विजय थी। तुरंत गोलियों का हिसाब किया गया और पता चला कि हर राइफलधारी सैनिक के लिये केवल 10 गोलियां बाकी थीं। सैनिक अनुभवी थे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि खेल ख़त्म हो चुका है।

**इसीलिये अग्रेंज जनरल ने कड़े निर्देश दिये होंगे कि थापा को कोई शारीरिक हानि न पहुंचाई जाए और उनके साथ युद्धबंदियों की पूरी औपचारिकताएं बरती जाएं। ऐसे आदेश का किसी भी तरह से उल्लंघन नहीं किया जा सकता था**

13 अगस्त को थापा के सामने स्पष्ट था कि किसी भी प्रकार की वीरता, जीवट या साहस से उस कमज़ोरी को दूर नहीं किया जा सकता था जो उनके सामने मुंह बाये खड़ी थी। रात हुई तो सिपाही दो–दो,तीन–तीन की संख्या में जैसे भी हो सके, बच निकलने की कोशिश करने लगे। उनके आत्मसमर्पण के बाद जो नरसंहार होता उसकी प्रतीक्षा करने से अच्छा था कि वे अपनी जान पर खेलकर बच निकलने का प्रयत्न करें। थापा ने थिमैय्या को अंतिम सूचना भेजी की आत्मसमर्पण के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है।

14 अगस्त की सुबह लेफ़्टिनेंट कर्नल थापा, चार अफ़सरों, एक जेसीओ और 35 अन्य सैनिकों के साथ बाहर निकले। शरणार्थी गठरियों की तरह एक कोने में सिमट गये। स्कर्दू ने आत्मसमर्पण कर दिया था।

"घेराबंदी छह महीने तक जारी रही। यह जानते हुये भी कि उनके साथ क्या होने वाला है शरणार्थी स्त्री,पुरुष और बच्चे इतने समय तक सभी ख़तरे और मुश्किलें खुशी– खुशी सहते रहे। सिपाही सच्चे वीरों की तरह लड़े थे और अब पूरी शांति से नियति के सामने समर्पण करने का समय आ गया था।"[20] इस आत्मसमर्पण ने गैरिसन के अफसरों और सैनिकों की क़िस्मत का फ़ैसला कर दिया था। मुसलमानों को अलग निकाल लिया गया और कई ग़ैर–मुस्लिम बेरहमी से मार डाले गये। शरणार्थी पुरुषों के साथ भी यही किया गया। "सभी जानते थे कि औरतों को क्यों छोड़ दिया गया है। बटालियन के एड्जुटेंट कैप्टेन गंगा सिंह को ज़मीन के साथ बांध कर गोली मार दी गयी। केवल लेफ़्टिनेंट कर्नल थापा और उनके अर्दली सिपाही कल्याण सिंह ही बच पाये।"[21]

## असाधारण सैनिक लेफ़्टिनेंट कर्नल थापा

सिपाहियों की कमी और शस्त्रों की कमीकृ दोनों ही घातक कमियों के बावजूद यह लेफ़्टिनेंट कर्नल शेरजंग थापा के असाधारण और अडिग नेतृतव का ही कमाल था कि उनके सैनिक असीम कठिनाइयों के बावजूद, छह महीने तक एक के बाद एक हमलों को नाकाम करते हुये अंत तक डटे रहे। दुश्मन ने साहसिक और कल्पनाशील रणनीति से थापा की सहायता को भेजी जाने वाली हर कुमुक को नष्ट कर दिया नहीं तो युद्ध के अंत तक स्कर्दू का बाल भी बांका न होता। यदि कुमुक में भेजी जाने वाली एक बटालियन भी थापा तक पहुंच पाती तो आज देश के उत्तरी क्षेत्रों की स्थिति कुछ और होती।

शत्रु के असंख्य हमलों को पीछे धकेल कर लेफ़्टिनेंट कर्नल थापा ने उसे कहीं का नहीं रखा था। फिर भी कैप्टेन गंगा सिंह और अन्य सैनिकों की तरह उन्हें मौत के घाट नहीं उतारा गया। अनुमान लगाया जाये तो इसका एक ही कारण हो सकता है जिसकी व्याख्या गहरी जांच के बाद ही की जा सकती है।

1947–48 के युद्ध में पाकिस्तानी सेना की कमान जनरल सर डगलस ग्रेसी के हाथ में थी। सेनापति के लिये स्वाभाविक था कि वह उत्तरी मोर्चे पर अपनी सेना की हर गतिविधि से अवगत रहे। जनरल को जब पता चला कि स्कर्दू गैरिसन छह महीनों तक डटा रहा तो उसे जानने की उत्सुकता हुई कि वह कौन कमांडर होगा और किस मिट्टी का बना होगा जिसने छह महीनों तक अपने सिपाहियों की हिम्मत को बनाए रखा। तब उसे पता चला कि यह तो उसका धर्मशाला का हॉकी का पुराना साथी है जिसे 1 गोरखा राइफल्स के रेजिमंटल केन्द्र के एड्जुटेंट के रूप में उसने सेना में जाने के लिये प्रेरित किया था। अंग्रेज़ जनरल थापा को अच्छी तरह से जानता था इसलिये उसे हैरानी

नहीं हुई कि क्यों छह महीनों तक थापा के सैनिक उसके हर दृष्टि से बेहतर सैनिकों को बार बार खदेडते रहे थे। सेनाध्यक्ष के रूप में जनरल को दुख तो होना ही था एक गुरु के रूप में यह निस्संदेह गर्व का विषय था। इसीलिये जनरल ने कड़े निर्देश दिये होंगे कि थापा को कोई शारीरिक हानि न पहुंचाई जाए और उनके साथ युद्धबंदियों की पूरी औपचारिकताएं बरती जाएं। ऐसे आदेश का किसी भी तरह से उल्लंघन नहीं किया जा सकता था। "भाग्य ने साथ दिया और थापा एक ऐसी स्थिति से बच निकले जहां उनकी मृत्यु निश्चित थी।"[22]

युद्ध के कुछ सप्ताह बाद लेफ़्टिनेंट कर्नल थापा पाकिस्तान से भारत लौटे और उन्हें उनके असाधारण शौर्य के लिये महावीर चक्र से सम्मानित किया गया और पदोन्नति देकर ब्रिगेडियर बना दिया गया। 1961 में वे सेवानिवृत्त हुये और धर्मशाला में ही रहने लग गये जहां से उन्होंने अपने सैनिक जीवन का आरंभ किया था। अगस्त 1999 में उनका देहांत हुआ पर किसी ने भी इस महान सैनिक को न तो याद किया और न किसी की आंख ही नम हुई। ■

*संपर्क - 9899656400*
*tk.tikoo@gmail.com*

**संदर्भ संकेत**

1. मध्य एशिया और पूर्वी तुर्कमीनिस्तान (वर्तमान ज़िन्जियांग) पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये ब्रिटेन और रूस के बीच जो प्रतिद्वंद्विता रही उसे सामरिक विमर्श में ग्रेट गेम के नाम से जाना जाता है। अनेक प्रख्यात अन्वेषकों/यात्रियों/भूगर्भशास्त्रियों ने संसार के इस भाग में नये–नये स्थानों की खोज की, उनपर व्यापक शोध किया और विश्व के मानचित्र पर उन्हें अंकित किया। इन सभी अन्वेषकों को ब्रिटिश या रूसी साम्राज्यों का संरक्षण प्राप्त था। इनमें एम. एम. स्टाइन, स्वेन हेडिन, सर फ्रांसिस यंगहसबैंड और निकालाई प्र्ज़ेव्लस्की प्रमुख हैं। इन सभी ने इन वर्जित क्षेत्रों में अपने अन्वेषण अभियान चलाए जो इन दोनों ही साम्राज्यों की तीव्र प्रतिद्वंद्विता का हिस्सा बने।
2. थ्रेट इन बीइंग का अर्थ है वह संकट जो बिना तैयारी और चेतावनी के कभी भी सामने आ जाए।
3. http://kashmirtimes.com से साभार। प्रो. पी. स्तोब्दन जम्मू विश्वविद्यालय के सामरिक मामलों और क्षेत्रीय अध्ययन केन्द्र के निदेशक हैं।
4. डोगरा शासकों के सबसे पुराने सरकारी दस्तावेज़ों में महाराजा गुलाब सिंह द्वारा अपने अधिकार में लिये गये क्षेत्रों को नाम दिया गया है रियासते जम्मू–व–कश्मीर–व–लद्दाख़–व–तिब्बत हा। हा शब्द फ़ारसी भाषा में बहुवचन बोधक है। अतः यह अनेक तिब्बतों का अर्थ देता है, जिन्हें आज गिलगित और बल्तिस्तान कहते हैं
5. अली इंजीनियर रिंचन पायोनियर, जुलाई 26, 2010
6. जोसेफ़ कोर्बेल द्वारा डेंजर इन कश्मीर (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1954) में उद्धृत
7. खुर्शीद हसन खुर्शीद, मेमॉयर्स ऑफ़ जिन्ना (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कराची,1990) और नवंबर 25, 1999 को बी बी सी पर प्रसारित परिचर्चा श्रृंखला "कन्फ्लिक्टिंग ओपीनियन इन कश्मीर" की ध्वनि रिकार्डिंग। इसमें भाग लिया था 'कश्मीरः ए डिस्प्यूटिड लीगेसी' के लेखक प्रोफेसर एलिस्टेयर लैम्ब, सर मार्क टुली और बी बी सी की उर्दू सेवा के डॉ. वक़ार अहमद।
8. एन्ड्रयू व्हाइटहेड, हाउ कश्मीर क्राइसिस बिगेन–मिशन इन कश्मीर (पेंगुइन, 2007).
9. मेजर जनरल वी. के. सिंह (सेवानिवृत्त), यू एस आइ जर्नल, जुलाई–सितंबर 2008.
10. व्हाइट पेपर ऑन कश्मीर, गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया, 26 फरवरी 1948, नई दिल्ली, हिस्ट्री डिवीजन, एम ओ डी फाइल नं. 601/14189/एच. पृ 47.
11. व्हाइट पेपर ऑन कश्मीर, गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया, 26 फरवरी 1948, नई दिल्ली, हिस्ट्री डिवीजन, एम ओ डी फाइल नं. 601/14189/एच. पृ 87.
12. वही, पृ. 55.
13. वही पृ.115.
14. परिशिष्ट 'ए', जे एण्ड के डिव आइ एस यू एम (इंटेलीजेंस समरी), सं. 43, 29 अगस्त से 8 सितंबर की अवधि हेतु, (यू एस आइ जर्नल जुलाई–सितंबर, 2008).
15. वही पृ. 237.
16. *ब्ल्ज* अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है जिसका इस्तेमाल सैनिक शब्दावली में होता है। सामरिक दृष्टि से यह रणभूमि की एक ऐसी स्थिति है जहां भूमि का एक हिस्सा उभर कर शत्रु के क्षेत्र के अंदर तक फैला होता है। यह तीन तरफ़ से घिरा होता है जिससे इस क्षेत्र में तैनात सैनिकों पर हमले का ख़तरा बना रहता है।
17. सितंबर 10, 2010 को सिक्खनेट से डाउनलोड किया गयाः स्रोत *www.dnaindia.com*
18. इम्पीरियल गैज़िटियर ऑफ़ इण्डिया, प्रॉविन्शियल सीरीज़, कश्मीर एण्ड जम्मू, पृ. 15.
19. पायोनियर, जुलाई 26, 2010. Pioneer, श्रनसल 26, 2010.
20. रक्षक सैनिकों की तैनाती की एक ऐसी स्थिति जहां से इर्द गिर्द के समूचे क्षेत्र को देखा जा सकता है और उस दिखाई देने वाले क्षेत्र में किसी भी जगह पर गोलियां दागी जा सकती हैं।
21. एस. एन. प्रसाद (डी. फिल) और धर्म पाल (पीएच. डी), ऑपरेशन्स इन जम्मू एण्ड कश्मीर, 1947–48, हिस्ट्री डिविजन,रक्षा मंत्रालय भारत सरकारः नटराज पब्लिशर्स, देहरादून, 1987.
22. लेफ़्टिनेंट जनरल एम. एस. शेरगिलः, ए हीरो फॉरगॉटन; ब्रिगेडियर शेरजंग थापा (महावीरचक्र) यू एस आइ जर्नल, जुलाई–सितंबर 2007. पृ.437.

पी. स्तोब्दन

# लद्दाख का भू-सामरिक महत्व

26 अक्टूबर, 1947 को महाराजा हरि सिंह द्वारा हस्ताक्षरित किए गए विलय के दस्तावेजों ने जम्मू और कश्मीर रियासत के पूरे भूभाग (222, 236 वर्ग किमी) पर भारत का पूर्ण नियंत्रण सुनिश्चित कर दिया था. जम्मू और कश्मीर संविधान की धारा 4 ने राज्य के भूभाग में उन सभी क्षेत्रों को सम्मिलित किया जो 15 अगस्त 1947 को राज्य के शासक की संप्रभु सत्ता के अधीन थे।[1]

इसके परिणामस्वरूप, जम्मू और कश्मीर की भौगोलिक सीमा में वे भी क्षेत्र सम्मिलित हैं, जो वर्तमान में पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्र में हैं और इसके साथ ही ट्रांस काराकोम ट्रैक्ट या शक्शगम घाटी, अक्साई चीन पठार और वे सभी जागीरें भी सम्मिलित हैं जो मानसरोवर झील के किनारे स्थित पवित्र कैलाश पर्वत के चरणों में चीनी भूभाग के 296 किलोमीटर अन्दर तक स्थित मेन्सेर में गावों के समूह का निर्माण करती हैं। एक कारण जिसमें महाराजा हरि सिंह के विलय के दस्तावेज[2] में उन्हें "श्रीमान इंद्र महिंद्र राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री हरि सिंह जी, जम्मू और कश्मीर नरेश, तथा तिब्बत आदि देशाधिपति" के रूप में संदर्भित किया गया है" यह कि वे जोर देते हैं कि वे मात्र जम्मू और कश्मीर के ही शासक नहीं हैं, बल्कि वे पूर्वी लद्दाख के क्षेत्रों के भी शासक हैं, जिनमें अक्साईं चीन और तिब्बत के अन्दर उनके द्वारा नियंत्रित होने वाला भूभाग भी सम्मिलित हैं।

हालांकि यह बहुत ही असुविधाजनक तथ्य है कि भारत में महाराजा के राज्य का केवल 46.6 प्रतिशत[3] हिस्सा ही वर्तमान में है, जो भारत को अक्टूबर 1947 में विरासत में राजा हरि सिंह से प्राप्त हुआ। दुर्भाग्य से राज्य का 55 प्रतिशत हिस्सा या तो चीन या फिर पाकिस्तान के अवैध आधिपत्य में है।

एक और क्षेत्रीय वास्तविकता यह है कि जम्मू और कश्मीर का 82 प्रतिशत हिस्सा लद्दाख और गिलगिट–बाल्टिस्तान है। दूसरे शब्दों में कहें कथित जम्मू और कश्मीर राज्य के भौगोलिक क्षेत्र का मात्र 18 प्रतिशत हिस्सा ही हैं। यहाँ तक कि आज भी भारत के पास जम्मू और कश्मीर का जो क्षेत्र है उसमें भी 67 प्रतिशत भूभाग लद्दाख है। वास्तविकता तो यह है कि यह स्थान विषयक वास्तविकता ही जम्मू और कश्मीर की वर्तमान न सुलझने वाली और रहस्यमयी प्रवृत्ति की समस्या के लिए सबसे प्रमुख कारक बन गई है। यदि मुख्य हितधारकों के द्वारा इस पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया तो यह समस्या और विकराल रूप धारण करेगी।

वास्तविकता में, जम्मू और कश्मीर का कोई भी संबंध लद्दाख से नहीं है। राज्य में इसकी स्थिति अंग्रेजों और जम्मू के शासक गुलाब सिंह के बीच हुई अमृतसर की मार्च 1846 संधि के कारण उत्पन्न राजनीतिक विरोधाभास की रही है। इसका दर्जा केवल महाराजा के साथ अधीनता वाले संयोग को छोड़कर किसी भी तर्कसंगत भूराजनीतिक विशेषता से रहित है, जिनका शासन 26 अक्टूबर 1947 को समाप्त हो गया

## एक हिमालयी राज्य की क्षति

अपने भूभागीय आकार के अतिरिक्त लद्दाख के ऐतिहासिक और राजनीतिक रूपरंग की तुलना हिमालय के अन्य राज्यों जैसे नेपाल, मस्तांग, भूटान, सिक्किम और मोन्युल (अरुणाचल प्रदेश) से की गयी थी। जबकि वास्तविकता में, जम्मू और कश्मीर का कोई भी संबंध लद्दाख से नहीं है। राज्य में इसकी स्थिति अंग्रेजों और जम्मू के शासक गुलाब सिंह के बीच हुई अमृतसर की मार्च 1846 संधि के कारण उत्पन्न राजनीतिक विरोधाभास की रही है। इसका दर्जा केवल महाराजा के साथ अधीनता वाले संयोग[4] को छोड़कर किसी भी तर्कसंगत भूराजनीतिक विशेषता से रहित है, जिनका शासन 26 अक्टूबर 1947 को समाप्त हो गया।

स्वतंत्रता के उपरांत जब लद्दाख को अपनी बात रखने का अवसर प्राप्त हुआ तो लद्दाख बौद्ध संघ (लद्दाख बुद्धिस्ट एसोसिएशन)[5] ने एक ज्ञापन[6] के माध्यम से महाराजा हरि सिंह और भारत के प्रधानमंत्री से 4 मई 1949 को प्रस्तावित

जनमत संग्रह के विरुद्ध अपील की और इसके स्थान पर यह मांग की कि क) लद्दाख का शासन या तो महाराजा के द्वारा कश्मीर को साथ जोड़े बिना किया जाए, ख) इसे एक स्वतंत्र प्रांत का निर्माण करने के लिए जम्मू के साथ मिलाया जाए और ग) पूर्वी पंजाब (वर्तमान में हिमाचल प्रदेश) के साथ जुड़ने की अनुमति दी जाए।

अपने ज्ञापन में बौद्ध संघ ने यह स्पष्ट किया कि जम्मू के साथ लद्दाख का संबंध केवल 1834 में डोगरा शासक के द्वारा सैन्य विजय के कारण है, जबकि कश्मीर डोगरा–लद्दाख के स्वामित्व में 12 वर्ष के उपरान्त 1846 में आया। 1947 में एकीकृत जम्मू और कश्मीर की स्थापना के शेख अब्दुल्ला के मामले के पीछे यह तर्क दिया गया कि इसे केवल अमृतसर की संधि के ही संदर्भ में देखा जाए, जो केवल घाटी पर ही लागू होता था। मगर तो महाराजा हरि सिंह और न ही जवाहर लाल नेहरू ने बौद्ध संघ की इस अपील पर कोई भी ध्यान दिया।

जवाहर लाल नेहरू ने लद्दाख की न केवल एक पृथक राजनीतिक स्थिति की एवं एक एकीकृत जम्मू और कश्मीर राज्य की लोकप्रिय मांग या पूर्वी पंजाब के रूप में भारत में उनके पूर्ण विलय की मांग को पूर्णतया अनदेखा कर दिया।[7] बल्कि इसके स्थान पर नेहरू ने लद्दाख के भाग्य को शेख अब्दुल्ला के रहमोकरम पर छोड़ दिया, जिनसे लद्दाख राज्य का कोई दूर–दूर तक संबंध नहीं था। इसके परिणाम स्वरूप अब्दुल्ला ने इस मामले को धूर्तता पूर्वक हल करते हुए कुशक बकुला को वर्ष 1951 में जम्मू और कश्मीर विधानसभा में स्थान दिया। लद्दाख को कश्मीर के साथ जोड़ना नेहरू की सबसे बड़ी गलती थी और इसी प्रकार लद्दाख के भाग्य पर मोहर लग गयी और उसके उपरान्त जो हुआ वह सब इतिहास के पन्नों में दर्ज है।

स्वतंत्रता उपरान्त भी भारत में लद्दाख के संबंध में एक राजनीतिक अरुचि ही रही। और वास्तविकता तो यह है कि देश ने लद्दाख की स्वतंत्र और सुस्पष्ट राजनीतिक पहचान को हिमालय राज्य की एक पहचान के रूप में गंभीरता से लिया ही नहीं। इसके स्थान पर भारत ने न केवल इस पूरे क्षेत्र को शेख अब्दुल्ला की दया के हवाले कर दिया बल्कि इसके साथ ही इसके सीमावर्ती क्षेत्रों पर भी ध्यान नहीं दिया गया, जिन पर भारत के शत्रु कभी भी आक्रमण कर सकते थे। यह निश्चित ही एक अच्छी रणनीति नहीं थी। इस प्रकार वर्तमान में लद्दाख का जम्मू और कश्मीर के साथ राजनीतिक रूप से जोड़े जाने की क्रूर विडंबना न ही इसके वैभवशाली इतिहास के अनुकूल और न ही इसके भूराजनीतिक महत्ता के ही अनुकूल है। यह 21वीं शताब्दी में बहुत ही गंभीर समस्या बनती जा रही है।

## कश्मीरी धूर्तता

लद्दाख को कश्मीर द्वारा घायल करने वाली और अहंकारी नीति सर्वज्ञात है। श्रीनगर ने आरंभ से ही लद्दाख के नेताओं की सदाशयता का दोहन किया है। जोसेफ कोर्बेल[8] (कश्मीर में तत्कालीन संयुक्त राष्ट्र प्रतिनिधि और अमेरिका के पूर्व विदेश मंत्री मेडेलीन अल्ब्राईट के पिता) ने अपनी पुस्तक "डेंजर कश्मीर" (1951) में यह विस्तार पूर्वक लिखा है कि किस प्रकार शेख अब्दुल्ला ने कुशक बकुला की राजनीतिक अज्ञानता का फायदा उठाया। इसके परिणामस्वरूप शेख ने वर्ष 1952 में लद्दाख का प्रतिनिधित्व करने के लिए कुशक बकुला का प्रयोग किया। मसौदा संविधान में बकुला के हस्ताक्षर, जो घाटी में सत्ता के साथ एक एकीकृत राज्य की व्याख्या करता है, एक बहुत बड़ी राजनीतिक गलती थी और एक ऐसी ऐतिहासिक त्रासदी जिसने जम्मू और कश्मीर में लद्दाख का भाग्य तय कर दिया।

दशकों तक घाटी ने वही चिरपरिचित चालें चलीं, जिसमें लद्दाख को अपने अंगूठे के नीचे रखने के लिए क्षेत्र की सरलता, और भंगुरता का दोहन किया और उसके साथ ही स्थानीय चूकों पर दांव खेला। स्थानीय अपेक्षाओं को उठाने संबंधी लद्दाख के हर प्रयास को बहुत ही क्रूरता से कुचल दिया गया। और इस प्रकार का मुखर आर्थिक और प्रशासनिक भेदभाव कई राज्य आयोग की रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया गया है, जैसे गजेन्द्रगडकर (1967–68), सीकरी (1979–80), वजीर (1982–83), और सिंघल (1998) आदि।[9]

इसके साथ यह भी ध्यान दिया जाना महत्वपूर्ण है कि लद्दाख पर ये अत्याचार भारतीय राज्य के नाक के ठीक नीचे होते रहे। श्रीनगर दिल्ली की छत्रछाया में सहयोग लेता रहा और इसने इस उत्पीड़न को रोकने का कोई प्रयास भी नहीं किया। इस प्रकार की प्रवृत्तियों ने अन्य (बाहरियों) को भी लद्दाख के सामाजिक ताने बाने में वैमनस्य लाने के लिए, उन्हें प्रभावित करने के लिए और उनके साथ छेड़छाड़ करने के लिए प्रेरित किया।

यदि नई दिल्ली ने लद्दाख की राजनीति को कश्मीर के खिलाफ उसके गुस्से को स्थानांतरित कर थोड़ा बहुत प्रबंधित करने का प्रयास किया, तो वहीं तिब्बत में चीन द्वारा बौद्ध धर्म का आक्रामक विध्वंस लद्दाख की अनदेखी करने लिए एक अतिरिक्त लाभ और औचित्य के रूप में आया। परंतु क्या ये दृष्टिकोण अभी भी प्रभावी हैं?

## नई दिल्ली की दुविधा

नई दिल्ली द्वारा लद्दाख के प्रति उदासीनता[10] के कारण कई हो सकते हैं, परन्तु सबसे सुविधाजनक बहाना लद्दाख की जनसांख्यकीय कमी (चुनावी राजनीति में कम महत्व) को बताया गया है। इस प्रकार की अत्यधिक संकीर्ण सोच ने जम्मू और कश्मीर में लद्दाख की भूमिका को कमजोर बनाने में योगदान दिया, हालांकि वह कुल राज्य का 60 प्रतिशत हिस्सा है। संसद में एकमात्र सांसद की आवाज कोई अधिक प्रभाव नहीं उत्पन्न कर सकती है। लद्दाख द्वारा अपनी मांगों के लिए अन्य हिंसक समूहों जैसे बोडो आदि

**स्वतंत्रता उपरान्त भी भारत में लद्दाख के संबंध में एक राजनीतिक अरुचि ही रही। और वास्तविकता तो यह है कि देश ने लद्दाख की स्वतंत्र और सुस्पष्ट राजनीतिक पहचान को हिमालय राज्य की एक पहचान के रूप में गंभीरता से लिया ही नहीं**

जैसा कोई कदम न उठाना भी एक अन्य कारण हो सकता है।

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में लद्दाख की महत्ता राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कुछ भी नहीं है। लद्दाख के विपुल जल संसाधनों का लाभ केवल पाकिस्तान ही ले रहा है। सिंधु जल विभाजन भी अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है और यह भी एक रणनीतिक गलती है। और इसके साथ ही धारा 370 भी लद्दाख की तरफ बहने वाले निवेश के मार्ग में आती है। पर्यटन उद्योग भी अपेक्षित सड़क नेटवर्क अथवा आवश्यक भू–संपर्क न होने के कारण अस्थाई रहा है।

नई दिल्ली लद्दाख के भाग्य को कश्मीर विवाद के जटिल पहलू के साथ जोड़कर देखती रही है। नई दिल्ली जानबूझ कर कश्मीर द्वारा लद्दाख के साथ खेले जा रहे खेल और लद्दाख की संस्कृति के साथ की जा रही तलवारबाजी के खिलाफ आँखें मूँद कर बैठी हुई है। फिर भी भारतीय नेतृत्व कश्मीर घाटी के ही तुष्टिकरण में लगा हुआ है।

अब तक लद्दाख द्वारा कश्मीर की आजादी के प्रति दुराग्रह को नई दिल्ली के दृष्टिकोण से कश्मीरी मांगों को कमजोर करने के लिए विरोधाभासी मामला प्रदान करने के उद्देश्य के रूप में देखा जाता रहा है। यह एक उचित आंकलन नहीं हो सकता है और इसके लिए और गहन विश्लेषण की आवश्यकता है, हालांकि अभी तक लद्दाख में कश्मीर की आजादी के समर्थन में कोई आवाज या समर्थन नहीं आया है। नई दिल्ली को लद्दाख के गुस्से को कश्मीर की तरफ स्थानांतरित करने से लाभ हो सकता है, कम से कम आजादी की मांग को कमजोर करने वाले विपरीत दृष्टिकोण को प्रदर्शित कर। लद्दाख को अनदेखा करने का एक और कारण चीन द्वारा पड़ोसी तिब्बत में लम्बे समय से चला आ रहा उत्पीड़न और अत्याचार भी हो सकता है।[11]

लद्दाख को अनदेखा करना भारत के लिए स्वयं को हानि पहुंचाने वाला रहा है, विशेष रूप से भू–रणनीतिक महत्ता के रूप में, जो भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। वस्तुतः, यह एक संयोग ही है कि पड़ोसी तिब्बत में विकास भी उतना संतोषजनक नहीं रहा है कि लद्दाख के लोग जम्मू और कश्मीर में बने रहने के स्थान पर किसी अन्य विकल्प के विषय में विचार कर सकें। जबकि लद्दाख के एकमात्र नेता कुशक बकुला ने वर्ष 1952 में यह वक्तव्य दिया था कि यदि इस क्षेत्र की इसी तरह उपेक्षा और अनदेखी होती रही तो लद्दाख को तिब्बत के साथ मिलने की अनुमति होनी चाहिए।[12]

यह भी साझी नियति ही है कि उस क्षेत्र के नागरिकों ने भारतीय संघ का ही एक हिस्सा बने रहने के पक्ष में निर्णय दिया, बजाय तिब्बत के साथ जुड़ने के विचार के, जो चीनी साम्यवाद के प्रभाव के अंतर्गत आता है। यदि ऐसा न होता तो लद्दाख चीन का हिस्सा होता और पीपल्स लिबरेशन आर्मी भारत से कश्मीर छीनने के लिए पाकिस्तानी सेना की मदद करने के लिए दक्षिण हिमालय की पहाड़ियों पर बैठी होती। इसकी एकीकृत महत्ता के अतिरिक्त, देश तारिम घाटी और तिब्बती पठार तक प्रत्यक्ष पहुँच का लाभ प्राप्त करने के लिए लद्दाख के रणनीतिक मूल्य को समझने में पूर्णतया विफल रहा है।

और फिर भी, लद्दाख के नागरिकों ने भारत की रक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा में असंदिग्ध भूमिका का निर्वाह किया है, विशेष रूप से तीनों युद्धों में उनका योगदान अतुलनीय रहा है, जिनमें शत्रुओं के खिलाफ लड़ा गया कारगिल का युद्ध भी सम्मिलित है।

यह तो निश्चित है कि लद्दाख के नागरिकों ने कभी भी देश के प्रति किसी भी प्रकार के दुराग्रह या वैमनस्य की प्रवृत्ति का प्रदर्शन नहीं किया है, हालांकि उनके द्वारा एक पृथक पहचान की मांग कश्मीर के द्वारा उठाई गयी मांग से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। भारत के साथ बने रहने के उनके निर्णय पर आज तक उन्हें कोई पछतावा नहीं है, मगर यह भारत है जो उस क्षेत्र की निरंतर उपेक्षा कर रहा है। भारतीय सेना की सबसे सुंदर विंग लद्दाख स्काउट के सैनिक बुद्ध और धर्म की भूमि[13] की रक्षा करने के संघर्ष में अपना योगदान दे रहे हैं। लद्दाख क्षेत्र की इतने लम्बे समय से की जा रही उपेक्षा का उत्तर देना हालांकि काफी कठिन है, परंतु यह एक परिपक्व

**राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में लद्दाख की महत्ता राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कुछ भी नहीं है। लद्दाख के विपुल जल संसाधनों का लाभ केवल पाकिस्तान ही ले रहा है। सिंधु जल विभाजन भी अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है और यह भी एक रणनीतिक गलती है**

लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है और यह बहुत ही शीघ्र सबको अपनी चपेट में लेने वाला है।

## कश्मीर से अलग होने की मांग

कश्मीर से अलग होने के लिए लद्दाख के बौद्धों के द्वारा बार–बार किए जाने वाले आन्दोलनों को जबरन बल प्रयोग से कुचला जा रहा है। इनमें 1950 में 'वृहत्तर स्वायत्तता' की मांग से लेकर, 1960 में "नेफा–प्रकार' प्रशासन, 1970 में 'केन्द्रीय प्रशासन', 1980 में 'फ्री कश्मीर फ्रॉम कश्मीर' और 1990 में संघ शासित क्षेत्र की मांग तक कई आंदोलन रहे हैं। यह बात भी सत्य है कि लद्दाख के लोग अपने भाग्य को स्वीकार कर चुके हैं। नई दिल्ली ने भी लद्दाख के साथ अपने प्रत्यक्ष संवाद को स्थापित करने के लिए कदम उठाए हैं। हालांकि चीन की वजह से हमेशा ही केंद्र लद्दाख के साथ संपर्क में रहने के लिए बाध्य रहा है। फिर श्रीनगर के खिलाफ स्थानीय नेताओं द्वारा आवाज उठाने की भी प्रवृत्ति रही है।

सरकार ने लद्दाख को संघ शासित राज्य घोषित करने की मांग को काफी लम्बे समय से अनदेखा किया है। यह मांग तेलंगाना आंदोलन के उपरान्त और उग्र हुई है। हालांकि संघ शासित क्षेत्र की मांग को पूरा होने का भरोसा तब हुआ जब वर्ष 2014 में भाजपा ने अपने एजेंडे में इसे पूरा करने का वादा किया, परंतु प्रश्न है कि क्या नरेंद्र मोदी सरकार इस मामले में गंभीर है?

अतीत में और संभवतया वर्ष 1989 में एक साम्प्रदायिक मुद्दे पर एक हिंसक आन्दोलन होने के कारण केंद्र सरकार दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल के पदचिन्हों पर अक्टूबर 1993 में लेह के लिए एक स्वायत्त पहाड़ विकास परिषद (ऑटोनोमस हिल डेवलपमेंट काउंसिल) की स्थापना पर सहमत हुई।[14] यह परिषद अक्टूबर 1995 से प्रभाव में आई। जम्मू और कश्मीर सरकार ने आनन फानन में लद्दाख ऑटोनॉमस हिल डेवलपमेंट काउंसिल एक्ट 1997 में पारित कर दिया परंतु बड़े ही शातिराना तरीके से लेह और कारगिल के लिए दो अलग–अलग पहाड़ी परिषदों का निर्माण कर लद्दाख की क्षेत्रीय एकता को तोड़ दिया। इससे पूर्व 1979 में शेख अब्दुल्ला भी ईरानी क्रांति के तुरंत बाद एक पृथक प्रशासनिक जिला बनाने के लिए कारगिल को लेह से अलग कर चुके थे।

**जहां एक तरफ घाटी के सामने पूरा देश अपने घुटने टेके बैठा हुआ है, तो वहीं लद्दाख में अब स्थितियां बहुत ही तेजी से बदल रही हैं। इस क्षेत्र के साथ पूर्व में जिस तरह का बर्ताव किया गया, वह अब आगे चलने वाला नहीं है**

लद्दाख ऑटोनोमस हिल डेवलपमेंट काउंसिल एक्ट सही तरह से काम कर रहा है और लद्दाख के सांस्कृतिक सम्मिश्रण के कारण अनुकरणीय रूप से कार्य कर रहा है। इसने निश्चित ही लोगों के बीच कश्मीर विरोधी भावनाओं को कम करने में सहायता की है, मगर इस अवधारणा के राष्ट्रीय हितों को हल करने के लिए एक जादूई विकल्प के रूप में रहने की संभावना बहुत कम है।

लद्दाख ऑटोनोमस हिल डेवलपमेंट काउंसिल एक्ट एक तात्कालिक हल था और वह लम्बे समय तक शायद ही टिके। जिन लोगों ने पहाड़ परिषद के लिए संघर्ष किया है और जो इस पर सहमत हुए हैं, वे जानते हैं कि इसे एक वृहद परिवर्तन लाने के एक माध्यम के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। लद्दाख ऑटोनॉमस हिल डेवलपमेंट काउंसिल के गठन का एक और कारण है कि उसके बाद वर्ष 1997 में लद्दाख यूनियन टेरिटरी फ्रंट (एलयूटीएफ)[15] नामक एक अधिक सक्षम मंच का अस्तित्व में आना। परंतु जैसा अनुमानित था, नई दिल्ली और श्रीनगर में राजनीतिक नेतृत्व ने छल पूर्वक एलयूटीएफ के विघटन के लिए कार्य किया, जो लद्दाख आंदोलन की असमय मृत्यु का कारण बना।

एलयूटीएफ की असमय मृत्यु के साथ ही, संघ शासित राज्य की मांग अपने आप ही कहीं गहरे दब गयी थी, मगर फिर आशा की किरण वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव के दौरान भाजपा नेतृत्व से नजर आई, जिसने लद्दाख को संघ शासित राज्य का दर्जा देने के लिए धारा 370 में बदलाव की बात की। परंतु शायद इस पर यकीन संभव नहीं था, शायद यही कारण रहा कि भाजपा नवम्बर 2014 में हुए विधानसभा चुनावों में चारों की चारों सीटों पर पराजित हुई। जम्मू और कश्मीर में संवैधानिक परिवर्तन की भाजपा की इच्छा असंभव सी प्रतीत होती है और इसी ने लद्दाख के लिए संघ शासित राज्य के दर्जे को अधर में लटका दिया है। चूंकि इस मामले को कश्मीर से जुड़ा हुआ मुद्दा मानते हैं, तो न ही श्रीनगर और न ही नई दिल्ली लद्दाख पर कोई कड़ा निर्णय लेने की स्थिति में है।

यह तो तय है कि लद्दाख में राजनीतिक जोड़तोड़ का अभाव है और इसी का लाभ राज्य और केंद्र में बैठे कुटिल राजनेताओं ने उठाया। पड़ोसी कश्मीर की तुलना में लद्दाख के साथ की गयी लम्बे समय तक खोखली शब्दबाजी, लद्दाख को कश्मीर के खिलाफ खड़ा करना नई दिल्ली के लिए भी काफी मुनाफे में रहा। कश्मीर के खिलाफ "फ्री लद्दाख फ्रॉम कश्मीर"[16] का नारा लगाने वाले लोगों की मेहनत राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की बलि चढ़ गई। अब इस नीति का परिणाम हमारी आँखों के सामने है। इस तरह का परिदृश्य अब उपलब्ध नहीं हो सकता है।

## असंतोष की सुगबुगाहट

जहां एक तरफ घाटी के सामने पूरा देश अपने घुटने टेके बैठा हुआ है, तो वहीं लद्दाख में अब स्थितियां बहुत ही तेजी से बदल रही हैं। इस क्षेत्र के साथ पूर्व में जिस तरह का बर्ताव किया गया, वह अब आगे चलने वाला नहीं है। जिस प्रकार चीजें सामने आ रही हैं और तथ्य सामने आ रहे हैं, उसमें पहचान की राजनीति भी आवश्यक रूप से उभर सकती है। हालांकि अभी तक यह परिलक्षित नहीं हो रहा है, परंतु लद्दाख असंतोष की आग में प्रवेश कर रहा है। शांति के आभास को असली शान्ति नहीं समझा जाना चाहिए। एक विध्वंसक निराशा की सुगबुगाहट हो सकती है,

आतंरिक मतभेदों का लाभ लेने के लिए विभाजक तत्व पहले से ही कार्य में लगे हुए हैं, परम्परागत सामाजिक तानाबाना कमजोर हो रहा है और लोगों के बीच भ्रम अब स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। भय इस बात का है कि लद्दाख भी जल्द ही अनावश्यक असंतोष, सामाजिक उथलपुथल और अराजकता की गोद में जा सकता है।

पहचान की राजनीति के संकेत एक वैकल्पिक राजनीतिक सोच की बढ़ती तलाश में दिखाई देने लगे हैं, जो सच्चे अर्थों में लद्दाख की अपेक्षाओं का प्रतिबिम्ब हो। यह युवा पीढ़ी में अधिक स्पष्ट रूप में दिखता है। वे नए परिप्रेक्ष्य चाहते हैं, वे अपनी जमीन पर खड़ा होना चाहते हैं, वे स्थानीय रूप से सोचना और काम करना चाहते है, मगर इसके साथ ही वे चाहते हैं कि उन्हें राष्ट्रीय मंच पर सुना जाए।

इसी के साथ कश्मीर के खिलाफ स्थानीय गुस्सा भी घातक हो सकता है, गैर स्थानीय और खास तौर पर पर्यटकों पर पत्थरबाजी की घटनाओं में हर साल वृद्धि हो रही है।[17] स्थानीय नागरिकों और सेना के बीच में छिपा हुआ तनाव भी और क्षेत्रों में अपना प्रभाव डाल सकता है।

लद्दाख में कश्मीरी नेतृत्व एजेंडा के विस्तार के भी विभिन्न संकेत प्राप्त हो रहे हैं, विशेष रूप से बुरहान वानी जैसी घटनाओं के बाद से ही। जनसांख्यकीय पलायन के अतिरिक्त, आजादी चाहने वाले आंदोलन, हड़ताल और शटडाउन राज्य के अन्य हिस्सों में भी बहुत ही तेजी से फैलते जा रहे हैं।[18]

## अन्य कारक

लद्दाख की समस्या किसी पाकिस्तानी एजेंडे का हिस्सा नहीं है, अपितु वह चीन के एजेंडे का हिस्सा है। चीन पहले ही अक्साई–चीन के 38,000 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र और लद्दाख के सक्शगाम में 5000 वर्ग किलोमीटर पर कब्जा जमा कर बैठा हुआ है। श्याम सरन के द्वारा लिखी गयी वर्ष 2013 की एक रिपोर्ट के अनुसार, हाल की दशकों में पीएलए ने लद्दाख के राकी नल्लाह, पांगोंग सो और स्काक्जंग क्षेत्र से 645 किलोमीटर के क्षेत्र को छीन लिया है,[19] हालांकि इस रिपोर्ट को सार्वजनिक नहीं किया गया है। इसके परिणामस्वरुप वर्ष 1959 में परिभाषित लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल पश्चिम की तरफ मुड़ गयी है, और भारत द्वारा नियंत्रित क्षेत्र बहुत सिकुड़ गया है। देप्संग, त्रिग हाईट, हॉट स्प्रिंग, स्पन्गुर, देमचोक और चुमुर में चीन का अतिक्रमण जारी है।

**जम्मू और कश्मीर से लद्दाख के अलग होने का मामला अन्य राज्यों के गठन होने से पहले का है। इस मुद्दे को कश्मीर समस्या के संदर्भ में हमेशा के लिए अनदेखा नहीं किया जा सकता है**

अधिक महत्वपूर्ण रूप से, लद्दाख में मुख्य भारतीय मठ पहले ही उच्च पदेन तिब्बती (शरणार्थी) लामाओं के हाथों में चले गए हैं, जो भारत के लिए दीर्घ कालिक दुष्प्रभावों और जोखिमों को जन्म दे रहे हैं।[20] हालिया दशकों में लद्दाख का तेजी से होता हुआ तिब्बतीकरण भारत के लिए खतरे की घंटी है। तिब्बतियों के हाथों में मठों का स्वामित्व जाने से लद्दाख चीन–तिब्बत राजनीति के लिए एक खेल का मैदान बनता जा रहा है। इसे किस प्रकार सुधारा जाए, यह एक चुनौती ही है।

महत्वपूर्ण रूप से, भारत को चीन द्वारा लद्दाख में कुछ स्थानों पर संभावित दावा किए जाने को लेकर भी सावधान रहना होगा, क्योंकि चीन यह दावा कर सकता है कि इस समय लामा स्ताक्संग रेपा, हेमिस मठ के एकमात्र कानूनी स्वामी या देखभालकर्ता है, वे एक चीनी नागरिक हैं और ल्हासा में रह रहे हैं। हेमिस का लद्दाख की कृषि भूमि के एक बड़े हिस्से पर कानूनी स्वामित्व है। यह मामला बहुत ही महत्वपूर्ण है और इसे भारत में ही लामा स्ताक्संग रेपा के अगले अवतार को खोजने से हल करना होगा।[21]

इसके अतिरिक्त लद्दाख में चीन के पक्ष में बनता हुआ जनमत भी कइयों के संज्ञान में आया है। यह देपसंग में 2013 में पीएलए के आक्रमण के समय पूर्णतया शांति से और उसके परिणामस्वरूप चुमुर में 2014 में होने वाली घटनाओं पर रहस्यमयी शांति से प्रमाणित होता है।

इस संवेदनशील क्षेत्र की निरंतर होती उपेक्षा और अनदेखी का अंत होना चाहिए। इसके साथ अब यदि और भेदभाव या छल किया गया तो अब राजनीतिक असंतोष का वह विस्फोट होगा, जो हिमालय की शान्ति को भंग करने के लिए पर्याप्त होगा। इसे अतिरिक्त नई दिल्ली को भी आखिर इस सवाल का जबाव देना ही होगा कि आखिर लद्दाख ही क्यों?

## लद्दाख के लिए एक पृथक राज्य का मामला[22]

जम्मू और कश्मीर से लद्दाख के अलग होने का मामला अन्य राज्यों के गठन होने से पहले का है। इस मुद्दे को कश्मीर समस्या के संदर्भ में हमेशा के लिए अनदेखा नहीं किया जा सकता है। जम्मू और कश्मीर राज्य को पुनर्व्यवस्थित करना एक विकल्प न होकर आवश्यकता है, क्योंकि इसे अनदेखा करने से भारत के लिए हिमालय की सीमा से परे वृहद समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। भारत के लिए यह आवश्यकता हिमालय की सीमाओं से परे हित के विस्तार की है।

घरेलू आवश्यकता से परे, भारत को निम्न रणनीतिक समस्याओं पर लद्दाख के विषय में गंभीरता से विचार किए जाने की आवश्यकता है।

सबसे पहले, भारत की रणनीतिक सोच लद्दाख की महत्ता को पहचानने में और क्षेत्र पर इसके विशाल प्रभुत्व को पहचानने में विफल रही है। इसका राजनीतिक इतिहास कभी भी चीन के साथ समीकरण परिभाषित करने की वजह नहीं रहा।

जैसा पहले बताया गया है, एक महत्वपूर्ण कारक जिसे आम तौर पर अनदेखा किया जाता है, वह है कि महाराजा हरि सिंह का शासन मानसरोवर झील के तट पर स्थित पवित्र कैलाश पर्वत के पैरों में स्थित चीनी क्षेत्रों के अन्दर काफी बड़े भूभाग पर था। हालांकि दुर्भाग्यवश, भारत की प्राथमिकता चीन से तिब्बत को अलग और तटस्थ करने में रही, बजाय इसके कि वह पूर्वी लद्दाख के

विशाल पथ को सुरक्षित करता जो पुरंग तक विस्तारित हैं और जिसमें रुदोक, गुज और कैलाश तक सम्मिलित हैं, जिन्हें सत्रहवीं शताब्दी में पांचवे दलाई लामा की सेना ने अपने कब्जे में ले लिया था।[23]

विलय के दस्तावेजों के परिणामस्वरूप यदि भारत आक्रमणकारियों से जम्मू और कश्मीर क्षेत्रों को दोबारा हासिल करना चाहता है तो केवल पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर पर दोबारा दावा करना ही पाखंड माना जाएगा। हमें चीन से भी अपने क्षेत्रों को वापस लाने का दावा करना चाहिए। वास्तविकता में, ल्हासा पर किसका नियंत्रण है, यह भारत के लिए चिंता का विषय नहीं होना चाहिए, बल्कि भारत की प्राथमिकता पूर्वी लद्दाख को वापस लाना होनी चाहिए, जिसे अब तिब्बत में पश्चिमी तिब्बत कहते हैं।

हालांकि, भारत ने आरंभ से ही एक गलत नीति का पालन किया है वास्तव में ल्हासा पर किसका नियंत्रण है, यह भारत के लिए चिंता का विषय नहीं होना चाहिए, बल्कि भारत की प्राथमिकता पूर्वी लद्दाख को वापस लाना होनी चाहिए, जिसे अब तिब्बत में पश्चिमी तिब्बत कहते हैं। (दोहराव है)। यहाँ पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में कटु वास्तविकता यह है कि तिब्बत का मामला भी चीन से तिब्बत की आजादी का मामला नहीं है, बल्कि भारत की अपनी भूमि को वापस लेने का है, जैसे चीनी–तिब्बती अधिकार से अक्साई–चीन और कैलाश मानसरोवर। यह भी तथ्य है कि हालिया डोकलाम घटना से भारत और भूटान को न केवल अब तक अनदेखे किए गए मेनेसर और दार्चेन लाबरांग को पुनर्स्थापित करने के विषय में पुनः विचार करना होगा बल्कि उन्हें अपनी हिमालय सुरक्षा रणनीति को पुनः बनाए जाने की आवश्यकता है। भारत को एक तिब्बत नीति बनाने के स्थान पर मजबूत लद्दाख नीति के निर्माण की आवश्यकता है।

दूसरा, लद्दाख और गिलगिट बाल्टिस्तान मिलकर जम्मू और कश्मीर क्षेत्र के 82 प्रतिशत क्षेत्र का निर्माण करते हैं। फिर भी यह महत्वपूर्ण बिंदु कभी भी पकिस्तान के साथ वार्ता करते समय नहीं गिना गया। यदि भारत ने लद्दाख के लिए एक छोटी सी नीति की संकल्पना की होती तो, कश्मीर की समस्या इतनी विस्फोटक नहीं होती, जितनी वह वर्तमान में है।

तीसरा, गिलगिट–बाल्टिस्तान में चीनी प्रवेश, चीन पाकिस्तान इकोनोमिक कोरिडोर (सीपीईसी) पर दावे का बहाना तंग वंश पर उसके ऐतिहासिक दावे के बिना नहीं हो सकता है। पाक अधिकृत कश्मीर और लद्दाख में चीन की योजना के लिए आर्थिक कारण भी हो सकता है, विशेष रूप से विपुल यूरेनियम और अन्य संसाधनों के आधार पर, जो पूरे बाल्टिस्तान में और लद्दाख में पाए जाते हैं। पाक अधिकृत कश्मीर पर चीन का नियंत्रण लद्दाख पर भी उसका प्रत्यक्ष प्रभाव डालेगा। तो जम्मू और कश्मीर को त्रिकोणीय समस्या होने देने में क्या लाभ होगा? भारत सीपीईसी परियोजना में अवरोध उत्पन्न करने के लिए थोडा बहुत तो कुछ कर ही सकता है।

चौथा, पाकिस्तान और अफगानिस्तान से बाहर होने वाला चरमपंथ पश्चिमी लद्दाख सहित अन्य क्षेत्रों में अपने पैर फैला सकता है। चेचेन्या, फरघाना से लेकर क्सिन्जिंग तक विस्तारित होते नए उभरते हुए इस्लामिक क्षेत्र लद्दाख के बहुत ही नजदीक स्थित हैं। इन परिस्थितियों में, भारत की यूरेशिया क्षेत्र के साथ संलग्नता बहुत ही महत्वपूर्ण हो गयी है। भारत के शंघाई को–ऑपरेशन ऑर्गनाइजेशन के सदस्य होने के साथ ही अफगानिस्तान के समीपस्थ अगले उभरने वाले मुस्लिम क्षेत्र–मध्य एशिया में सक्रियता से अपने हितों में वृद्धि होगी। कश्मीर में चल रही वर्तमान अस्तव्यस्तता से यूरेशिया में अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में भारत सफल नहीं हो पाएगा।

पांचवां, इन सभी का डटकर सामना करने के लिए, भारत को एशिया के पहाडी क्षेत्रों में लद्दाख को सबसे बड़ा मुख्य रणनीतिक घटक मानना होगा। लद्दाख की राजनीतिक और आर्थिक मजबूती चीन, यूरेशिया और यूरोप और उनसे भी कहीं अधिक देशों में बाजारों के साथ भौतिक रूप से जुड़ने के लिए एक ऐतिहासिक अवसर प्रदान कर सकती है। पूर्व में, कश्मीर और लद्दाख ने परम्परागत रूप से भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लिए अवरोधक के स्थान पर सेतुओं के रूप में अधिक कार्य किया है। यह क्षेत्र सिल्क रूट के साथ खोए हुए व्यापारिक संपर्कों को पुनर्स्थापित कर सकता है, जो न केवल वृहद परिवर्तन का कारक हो सकता है, साथ ही उत्तर में भारत की रणनीतिक पहुँच के लिए लाभकारी हो सकता है।

लद्दाख की विशिष्ट जैवभौगोलिक स्थिति यूरेशिया क्षेत्र और चीन में मुख्य बाजारों और संसाधनों के साथ भारत के संपर्क को और तेज कर सकती है। सीपीईसी को कुंद या अवरोधित करने के लिए जो सर्वश्रेष्ठ तरीका है वह है भारत को स्वयं "बेल्ट एंड रोड"[24] विचार के विषय में सोचना। मोदी को शी जिंगपिंग को एक ऐसा वैकल्पिक ऊर्जा कोरिडोर देना होगा जो भारतीय बंदरगाह से आरंभ होकर लद्दाख से चीन तक जाए। तो क्यों नहीं अक्साई–चीन राजमार्ग को मिलकर प्रयोग किया जाए?

यह प्रस्ताव कई प्रकार के लाभों को ला सकता है, जिनमें चीनी निवेश को आकर्षित करना और भारत पर निर्भर रहने के लिए बीजिंग से एक पारगमन शुल्क के रूप में बिलियन डॉलर कमाना आदि हो सकते हैं। चीन एक अधिक विश्वसनीय आर्थिक कोरिडोर से लाभ हासिल करना चाहेगा, बजाय इसके कि वह आतंकवाद से भरे हुए पाकिस्तान में जोखिमपूर्ण निवेश करे।

**लद्दाख की विशिष्ट जैवभौगोलिक स्थिति यूरेशिया क्षेत्र और चीन में मुख्य बाजारों और संसाधनों के साथ भारत के संपर्क को और तेज कर सकती है। सीपीईसी को कुंद या अवरोधित करने के लिए जो सर्वश्रेष्ठ तरीका है वह है भारत को स्वयं 'बेल्ट एंड रोड' के विषय में सोचना**

## आगे के कदम

हालांकि एक नई सोच को आरंभ करने के लिए, सबसे पहला कदम है जम्मू और कश्मीर राज्य को पुनर्निर्धारित करना। अब

तक जटिल जम्मू और कश्मीर के बंधन को बांधे रख पाना भारत के लिए अपने आधिकारिक, सैन्य और आर्थिक प्रयासों के बावजूद समस्या से भरा होता जा रहा है। अब एकमात्र मार्ग यह बचा है कि इतिहास की विकृतियों को छोड़ दिया जाए। यही संभव लगता है कि भारत आगे बढ़कर अब लद्दाख के लिए एक मजबूत कदम उठाए, और उसे अरुणाचल प्रदेश की तर्ज पर एक पृथक राज्य बनाए। यही एकमात्र तरीका है जिसके माध्यम से भारत अंततः आतंरिक अवरोधों और बाहरी चुनौतियों से पार पा पाएगा।

लद्दाख राज्य का प्रस्ताव एक नई विस्तारित चीनी विदेश नीति, आतंकवाद को प्रायोजित करने वाली पाकिस्तानी डिजाइन, उत्तरी लद्दाख के नए उभरते इस्लामी क्षेत्र और यूरेशिया क्षेत्र में भारत की संलग्नता और संपर्क के लिए बढ़ते अवसरों के आधार पर लिखा जाना चाहिए।

लद्दाख के नागरिक जब हाल ही में केन्द्रीय गृह मंत्री श्री राजनाथ सिंह से मिले तो संघ शासित राज्य की मांग करने में एक स्वर थे।[25] लद्दाख को जम्मू और कश्मीर से अलग करना भारत की दीर्घकालीन गृह और विदेश नीति दोनों ही के लिए यदि एक मास्टर स्ट्रोक नहीं तो कम से कम आधार तो हो ही सकता है। यह कई चुनौतियों का सामना करने के लिए एक कदम हो सकता है।

यह निश्चित ही एक कुशल शासन व्यवस्था नहीं है कि किसी भी क्षेत्र की जनसांख्यकीय कमी एक ऐसी बाध्यता बन जाए जो हमारी विशाल सीमाओं को शत्रुओं के अतिक्रमण के प्रति संवेदनशील बना दें,

इसी प्रकार, लद्दाख की आर्थिक क्षमता पर भी विचार नहीं किया गया है। जन्क्सुर, सुरु, द्रास, श्योक नदी पर इसके विपुल जल संसाधनों से पाकिस्तान में पंजाब और सिंध के किसानों को ही लाभ होता है जबकि लद्दाख की केवल 5 प्रतिशत ही भूमि की सिंचाई हो पाती है।

धारा 370 लद्दाख में निवेश को बाहर ही रोक देती है। अर्थव्यवस्था का एकमात्र स्रोत पर्यटन भी खराब सडक और संपर्क का बंधक बन गया है। स्पष्ट है कि अब कश्मीर कुछ न करने का बहाना नहीं बना

**लद्दाख के एक पृथक राज्य के मामले को केवल रणनीतिक आधार पर लिया जाना चाहिए, खास तौर पर कश्मीर संकट के लिए एक दीर्घकालिक समाधान के लिए एक आधार स्थापित करते हुए**

सकता है।

वर्तमान सरकार को इस तरह से कार्य करना चाहिए कि वह लद्दाख को जम्मू और कश्मीर से स्वेच्छा से अलग करा सके। यह वाकई में आवश्यक है और कई ऐसी संवैधानिक बाधाओं को हल किए बिना संभव नहीं है, जिनका प्रबंधन बहुत ही सरलता से किया जा सकता है। हालांकि इसे न किए जाने पर घरेलू मोर्चे पर जहां असंतोष में वृद्धि होगी तो वहीं शत्रुओं से आक्रमण का खतरा बढेगा।

साथ ही लद्दाख को राज्य का दर्जा देने के लिए रणनीतिक विचारों से परे, कोई भी अंतिम विचार इतिहास के तटस्थ आंकलन और वास्तविक प्रमाण पर आधारित होना चाहिए, राष्ट्र के हित सबसे ऊपर होने चाहिए और वह शब्दों के जाल, बयानबाजी और पूर्वाग्रहों से मुक्त होना चाहिए।

ऐसा करते समय लद्दाख और कश्मीर को अपने नजदीकी पड़ोसी संबंधों को एक बार फिर से हासिल करना चाहिए, जो उसकी एक अन्योन्याश्रित विशेषता है। वास्तव में, इन दोनों ही क्षेत्रों का इतिहास एक दूसरे से लाभ हासिल करने का रहा है। एक मजबूत लद्दाख हमेशा ही कश्मीर के हित में है क्योंकि इसी ने किसी भी ऐसे आक्रमण के खिलाफ पहली रक्षा रेखा प्रदान की थी, जो कश्मीर में इस्लाम के लिए खतरा हो सकता है, जिंजियांग में इस्लाम के भाग्य को देखते हुए यह असंभव नहीं है। लद्दाख के लिए कश्मीर तिब्बत से किसी भी प्रभुत्व संबंधी दबाव के विरुद्ध प्रतिसंतुलन कारक का कार्य करता है। घाटी ने भी कच्ची सामग्री (कृषि और वन्य उत्पाद) आपूर्ति के रूप में आवश्यक आर्थिक समर्थन प्रदान किया है जिसका लद्दाख में अभाव रहा था। दो या तीन तरफ से पूरी दुनिया से कटे लद्दाख के लिए कश्मीर ही वह खिड़की है जिसके माध्यम से वह शेष भारत से और बाकी विश्व से संवाद स्थापित कर पाता है।

## निष्कर्ष

जम्मू और कश्मीर की विविधता एक राजनीतिक वास्तविकता है, क्योंकि वर्तमान स्थिति एक तो अपरिवर्तनीय है और लोगों की लोकतांत्रिक अपेक्षाओं के विरुद्ध है। लद्दाख आज अतीत में गर्व की भावना के साथ पहचान के संकट से और वर्तमान स्थिति में असहजता से बचना चाहता है। हालांकि नई दिल्ली को किसी भी विस्फोटक स्थिति से पहले कोई न कोई कदम उठाना चाहिए और स्थिति के गंभीर होने तक प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि लद्दाख के पास आवश्यक राजनीतिक ताकत और संख्या नहीं है। इसमें आर्थिक रूप से मोलभाव करने की भी ताकत नहीं है। और विडंबना यह भी है कि आतंरिक और बाहरी किसी भी प्रकार की बौद्धिक लॉबी की आँख का तारा भी यह क्षेत्र नहीं है और इसके साथ ही इस क्षेत्र के लोग किसी भी हिंसक पथ के समर्थक नहीं हैं और न ही हिंसक मार्ग अपनाना चाहते हैं।

लद्दाख के एक पृथक राज्य के मामले को केवल रणनीतिक आधार पर लिया जाना चाहिए, खास तौर पर कश्मीर संकट के लिए एक दीर्घकालिक समाधान के लिए एक आधार स्थापित करते हुए और इसके साथ ही भारत के राष्ट्रीय हित के लिए लद्दाख की रणनीतिक उपयोगिता का पोषण करते हुए कोई भी निर्णय लिया जाना चाहिए।

अब तक लद्दाख को पूर्वोत्तर और कश्मीर की तुलना में बहुत ही कम राजनीतिक महत्व प्राप्त हुआ है। लद्दाख के लिए भारत के हित और नीतिगत कार्य मुख्य रूप से सुरक्षा कारणों से रहे हैं और इन्हें केवल रक्षा की ही तैयारी के साथ हल किया गया है। मगर केवल एक मजबूत रक्षा तैयारी और प्रतिक्रिया तन्त्र स्थाई शांति का निर्माण नहीं कर सकता है और न ही यह सुनिश्चित कर सकता है। केवल

सेना ही तिब्बत और जिंजियांग में चीन के लिए रामबाण नहीं रही है। चीन ने अपने सीमावर्ती क्षेत्रों के लिए न केवल आर्थिक और संपर्क संबंधी नीति अपनाई बल्कि अब यह पाकिस्तान को भी पाक अधिकृत कश्मीर में उसकी नीतियों का पालन करने की सलाह दे रहा है।

भारतीय राजनीतिक और बौद्धिक वर्ग को भी लद्दाख को शंग्रीला और लॉस्ट होराइजंस या केवल पर्यटकों के दृष्टिकोण से देखने की अपनी प्रवृत्ति का त्याग करना होगा। राष्ट्र को अपनी जम्मू और कश्मीर नीति को इस वास्तविक तरीके से दोबारा सोचना होगा जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह बदली हुई परिस्थिति के अनुसार ही हो। लद्दाख के बिना भारत की कल्पना कीजिए, जब चीन की पीएलए हिमालय की दक्षिण पहाड़ियों पर बैठी होती। ■

*संपर्क - 9999776127*
*pstobdan@gmail.com*

**संदर्भ संकेत**

1 दि कांस्टीट्यूशन ऑफ जम्मू एंड कश्मीर, सेक्शन 4, http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/32675/10/10_chapter%206.pdf (4 फरवरी 2008)
2 इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन ऑफ जम्मू एंड कश्मीर दिनांक 26 अक्टूबर, 1947 लीगल डाक्यूमेंट संख्या 113, http://www.centralexcisehyderabad4.gov.in/documents/history/1947_2.PDF (23 फरवरी 2018)
3 पी.स्तोब्दन."कश्मीरः द की इश्यूज" स्ट्रेटजिक एनालिसिस अप्रैल 1996, पृष्ठ.114
4 गुलाब सिंह की डोगरा सेना ने अपने सेनापति जोरावर सिंह कहलुरिया के नेतृत्व में लद्दाख को दो अभियानों में जीत लिया था, जम्मू एंड कश्मीर" इम्पीरियल गैजिटीर ऑफ इंडिया, खंड 15, पृ. 95.
5 एलबीए की स्थापना वर्ष 1933 में राजा जिग्मेट दादुल नांज्ञाल, कलोन त्स्वांग रिग्जिन, कलोन बंकप मोरुप ग्याल्टसन और मुँशी सोनम त्स्वांग ने लद्दाख के सामाजिक और धार्मिक हितों की रक्षा के लिए की थी
6 वी. राघवन द्वारा उद्धृत, 'कान्फ्लिक्ट्स इन जम्मू एंड कश्मीरः इंपैक्ट ऑन पॉलिटी, सोसाइटी एंड इकोनॉमी', विज बुक्स प्रा. लिमिटेड, 2012, पृ. 164–165
7 पी. स्तोब्दन "व्हाइ शुड इंडिया टेक लद्दाख सीरियसली?" रीच लद्दाख, 2 नवम्बर 2015.
8 जोसेफ कोर्बेल, "डेंजर इन कश्मीर'', प्रिंसटन यूनिवर्सिटी, प्रथम प्रकाशित 1954.
9 बलराज पुरी, "सिमरिंग वॉल्कैनोः जम्मूज़ रिलेशन विद कश्मीर" (1983)। यह भी देखें http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/32675/11/11_chapter%207.pdf
10 पी. स्तोब्दन "व्हाई शुड इंडिया टेक लद्दाख सीरियसली?" रीच लद्दाख, 2 नवम्बर 2015.
11 एच.एन. कौल "रीडिस्कवरी ऑफ लद्दाख" इंडस प्रकाशन 1998, पृ. 219
12 http://news.statetimes.in/dy-cm-inaugurates-19th-kushok-bakula-rinpoches-birth-centenary-celebrations/ (20 मई, 2017)
13 पी. स्तोब्दन "इंडिया नीड्स अ रोबस्ट लद्दाख पालिसीः केस फॉर अ सेपरेट स्टेट ऑफ लद्दाख", जर्नल ऑफ इंडियन रिसर्च,ए क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ मल्टीडिस्प्लिनरी रिसर्च, संस्करण 3, नवंबर 2, अप्रैल–जून, 2015
14 लद्दाख ऑटोनॉमस हिल डेवलपमेंट काउंसिल, लेह की आधिकारिक वेबसाईट, http://leh.gov.in/pages/lahdc.html
15 https://www.crwflags.com/fotw/flags/in%7Dlutf.html
16 हरी ओम "लद्दाखीज डिमांड फ्रीडम फ्रॉम कश्मीर, ट्रिफर्केशन द ओनली वे आउट", http://www.vijayvaani.com/ArticleDisplay.aspx?aid=1497 (16नवंबर, 2010)
17 कबीर शर्मा "पीस ऑफ़ लेह शैटर्ड, शॉकिंग अटैक ऑन अ टूरिस्ट कांवॉय बाइ लोकल टैक्सी यूनियन काट ऑन टेप" https://www.indiatimes.com/news/india/peace-of-leh-shattered-shocking-attack-on-a-tourist-convoy-by-local-taxi-union-caught-on-tape-243421.html (25 जुलाई, 2015)
18 पी. स्तोब्दन "ऑप्टिमाइज़िंग लद्दाख्स स्ट्रेटजिक एडवांटेज" ट्रिब्यून दिसंबर21,2016, http://www.tribuneindia.com/news/comment/optimising-ladakh-s-strategic-advantage/339439.html
19 शिव अरूर "चीनी सेना ने लद्दाख के तीन सेक्टर में 640 वर्ग किमी क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है, इंडिया टुडे, सितंबर 5, 2014
20 पी. स्तोब्दन "इमर्जिंग फ्लैशप्वाइंट्स इन द हिमालयाज", https://idsa.in/issuebrief/emerging-flashpoints-in-the-himalayas (18, मई 2016)
21 पी. स्तोब्दन, "रीसिच्युएटिंग मेंसर एंड दरचें–लेब्रंग इन द बाउंड्री नेगोसिएशंस विद चाइना" https://idsa.in/policybrief/resituating-menser-darchen-labrang-in-boundary-negotiations-china-pstobdan-160218 (फरवरी 16, 2018)
22 पी. स्तोब्दन, "रीसेट जेएंडके, सेपरेट लद्दाख" सन्डे गार्जियन दिसंबर 17, 2016
23 पी. स्तोब्दन, "रीसिच्युएटिंग मेंसर एंड दरचें–लेब्रंग इन द बाउंड्री नेगोसिएशंस विद चाइना" https://idsa.in/policybrief/resituating-menser-darchen-labrang-in-boundary-negotiations-china-pstobdan-160218 (फरवरी 16, 2018)
24 पी. स्तोब्दन "कार्विंग आउट अ पाथ ऑन चाइनाज़ रोड" द हिन्दू, अक्टूबर 29, 2015
25 "राजनाथ सिंह को ज्ञापनः लेह ने लद्दाख के लिए संघीय क्षेत्र का दर्जा हासिल करने को एकता प्रदर्शित की" द स्टेट टाइम्स, (अक्टूबर 4, 2016) http://news.statetimes.in/memorandum-rajnath-singhleh-shows-unity-seeking-ut-status-ladakh/

# हरियाणा सरकार का अभियान

# जन-जन का कल्याण

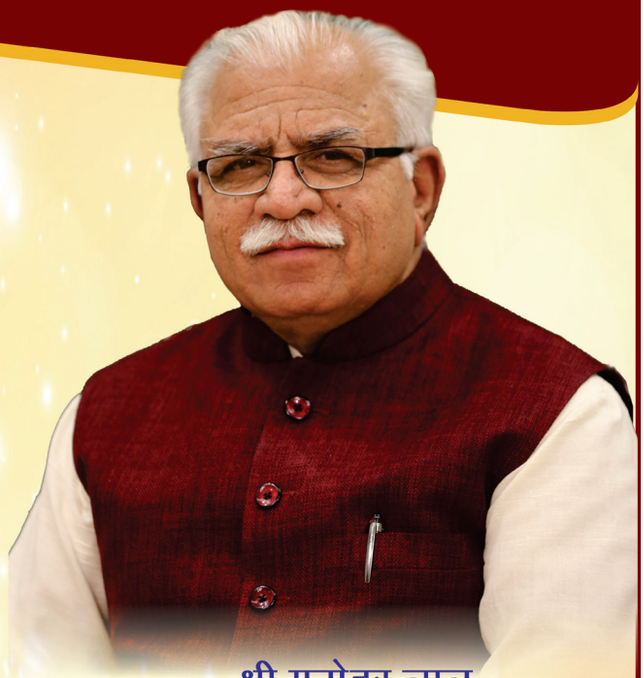

श्री मनोहर लाल
मुख्यमंत्री, हरियाणा

Ease of Doing Business
देश में पहला स्थान

भावान्तर भरपाई योजना लागू करने वाला हरियाणा देश का पहला राज्य

देश का पहला कैरोसिन मुक्त राज्य

सरकारी नौकरियों में ग्रुप 'सी' व 'डी' में साक्षात्कार समाप्त

विकास को रफ्तार हर पल सुधार ...

शहीद सैनिकों के 213 आश्रितों को अनुकम्पा के आधार पर नौकरी

सभी ग्रामीण व शहरी क्षेत्र हुए खुले में शौचमुक्त

सक्षम युवा योजना के तहत युवा शक्ति को 9000 रुपये तक मासिक मानदेय

गरीब कन्याओं की शादी में 51,000 रुपये शगुन राशि

सूचना, जन सम्पर्क एवं भाषा विभाग, हरियाणा | www.prharyana.gov.in

*With Best*

*Compliments from*

# NEXT GEN MEDICAL DEVICES

**SALES, ON SITE REPAIR, MAINTENANCE (AMC/CMC) of MEDICAL & LABORATORY EQUIPMENT**

**Head Office:-**
A5-A6, Pragati Chamber, Ranjit Nagar Commercial Complex, New Delhi-110 008, Ph.: 91-11-25704962, 25287380

**Himachal Pradesh Head Quarter:-**
Laxmi Building, North Oak, Sanjouli, Shimla - 171-006 (H.P.), Ph.: 9811058085
E-mail: nxgnmed@gmail.com

प्रो. काशीनाथ पंडित

# कश्मीर: एक विकृत इतिहास की कहानी

(गतांक से जारी...)

कश्मीरी मुस्लिम इतिहासकार साम्प्रदायिक आवेग के अंतर्गत लिख रहे थे। उन्होंने स्थानीय हिन्दू जनसंख्या के इस्लाम धर्म में जबरन और अपमानजनक मतांतरण के पूरे पक्ष को दबाने का प्रयास किया है। सबसे बुरा तो यह है कि उन्होंने न केवल तथ्यों को तोड़ामरोड़ा और दबाया है बल्कि उन्होंने हर उस उपलब्ध प्रमाण को नष्ट किया है, जो भी तत्कालीन भाषा में उपलब्ध था, चाहे वह संस्कृत हो, शारदा या पाली में हो, जो मध्ययुगीन कश्मीर के सच्चे इतिहास के विषय में कुछ भी संकेत और प्रमाण बन सकता था

मध्ययुगीन कश्मीर में मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार मुस्लिम धर्म, आराधना और जीवन शैली के प्रचार, प्रसार और विस्तार के लिए स्थितियां अनुकूल होने लगी थीं। दुर्भाग्य से कश्मीरी मुस्लिम इतिहासकार साम्प्रदायिक आवेग के अंतर्गत लिख रहे थे। उन्होंने स्थानीय हिन्दू जनसंख्या के इस्लाम धर्म में जबरन और अपमानजनक मतांतरण के पूरे पक्ष को दबाने का प्रयास किया है। सबसे बुरा तो यह है कि उन्होंने न केवल तथ्यों को तोड़ामरोड़ा और दबाया है बल्कि उन्होंने हर उस उपलब्ध प्रमाण[1] को नष्ट किया है, जो भी तत्कालीन भाषा में उपलब्ध था, चाहे वह संस्कृत हो, शारदा या पाली में हो, जो मध्ययुगीन कश्मीर[2] के सच्चे इतिहास के विषय में कुछ भी संकेत और प्रमाण बन सकता था। मुस्लिमों ने कब इतिहास लिखना शुरू किया? इस प्रश्न का उत्तर बाद के इतिहास के अभिलेख में वर्णित तीन प्रारम्भिक फारसी इतिहास ग्रंथों के लुप्त हो जाने के कारण नहीं दिया जा सकता। हमें बताया गया कि सुलतान जैनुल–आबिदीन के दरबार में रहने वाला मुल्ला नादेरी (सन 1450) एक दरबारी इतिहासकार था और उसने अपने संरक्षक का इतिहास लिखा। उसका कार्य अब उपलब्ध नहीं है। इसी तरह जैनुल–आबिदीन के शासन काल के दौरान राजतरंगिणी का अनुवाद भी हमारे पास नहीं है।[3]

महमूद गजनी के आक्रमण के साथ कश्मीर के हिन्दू राज्य में राजनीतिक और सैन्य विफलताएं राजतंत्र का हिस्सा बन गईं। 13वीं और 14वीं सदी के प्रारम्भ के बाद जो पतन हुआ है, उसके कारण आर्थिक हैं। उत्तरी हिमालय के निचले क्षेत्रों के साथ एक पहचान योग्य सभ्यतागत सत्ता के रूप में प्राचीन कश्मीर के हिन्दू इतिहास की सत्ता और प्रभाव का पतन तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मध्य एशिया में घूमंतू से सैनिक बने मंगोलों के एकाएक उदय और प्रभुत्व के साथ ही तय हो गया था। तत्कालीन मध्य एशियाई शक्तिशाली तूरानियन खान वंश ख्वाजा या खिवा के पतन से प्रसिद्ध सिल्क रोड के साथ समृद्ध व्यापारियों की व्यापारिक गतिविधियों पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। उस समय तक कश्मीर दो मुख्य मार्गों के द्वारा इस पूर्व–पश्चिम व्यापारिक मार्ग का एकीकृत हिस्सा था। कराकोरम श्रंखला से यारकंद, काश्घर और खोतान तक पूर्वोत्तर में और मध्य एशिया में हिन्दुकुश और बादाक्षण से मर्व तक। दोनों ही मार्ग आज वर्तमान में मध्य एशिया के उजबेकिस्तान में मिलते हैं। सोवियत भाषाई विद्वानों ने भी बुखारा में विहारों को भ्रष्ट किए जाने से इनकार नहीं किया है। पेंजिकेंत (तजाकिस्तान) में बुद्ध की सबसे बड़ी चूने की मूर्ति खुदाई में मिलना, बादाकशन क्षेत्र में याग्नबी बोली में संस्कृत भाषा के प्रभाव को ताजिक विज्ञान अकादमी द्वारा खोजा जाना, समरकंद में मदरसा शेर–दर के मुख चित्र पर मिथ्रा–मेहर (सूर्य देव) का निशान, और वर्तमान में बुखारा के मध्य में बुद्ध विहार के अवशेषों पर मदरसा और मीर अरब मस्जिद, सभी इस विशाल क्षेत्र में सूर्य पूजन और बौद्ध प्रभाव की तरफ संकेत करते हैं।

चंगेज खान और उसके उत्तराधिकारियों, विशेष रूप से मध्य 13वीं शताब्दी में हुलागु आदि मंगोलों के आक्रमण से रेशम मार्ग के द्वारा होने वाले कश्मीर व्यापार की सुरक्षा अत्यधिक बाधित हुई। यह सैन्य रूप से सुसज्जित मंगोल खानाबदोशों के अभूतपूर्व आक्रमण का युग था और उसके परिणातः पूरे मध्य और यूरेशियाई क्षेत्र में उथलपुथल व्याप्त हो गई। कश्मीर की वाणिज्यिक गतिविधि के सबसे बड़े आधार केसर का निर्यात एकदम बंद हो गया। इस स्थिति ने कश्मीर की आर्थिक स्थिति को डावांडोल कर

दिया और हिन्दू शासन के त्वरित पतन में योगदान दिया। अतः कोई भी योद्धा या वंश जो भी सत्ता हथिया सकता था, उसके लिए यह बहुत ही अनुकूल समय था। एक मजबूत और निर्भीक व्यक्तित्व वाले राजा की अनुपस्थिति के अतिरिक्त लगातार आतंरिक असंतोष और मुख्य दरबारियों के बीच विवादों ने भी एक समय के शक्तिशाली और प्रभावशाली हिन्दू राज्य के पतन को और तेज किया।

14 वीं शताब्दी की पहली तिमाही में, कश्मीर में शमसुद्दीन शाहमीर ने आक्रमण किया और कश्मीर में सबसे पहले इस्लामिक वंश की नींव डाली। परंतु धर्मपरिवर्तन के विवरण को स्पष्ट करने के लिए हम उसके आक्रमण से पूर्व की कुछ घटनाओं को भी दोबारा देखेंगे।

बहारिस्तान हमें पीरपांचाल[4] से गुजरते हुए कट्टर तत्वों के द्वारा जुल्चु की लूटपाट, उसकी बर्बादी और उसकी सेना के विनाश को बताता है। कश्मीरियों ने हर परगना में इन हिंसक आक्रमणकारियों के द्वारा अपने नागरिकों और उनकी सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए सशस्त्र समूहों का निर्माण किया। इसमें एक तिब्बती/लद्दाखी सेनापति जिसका नाम रिन्चिन था (रिंच्तो या रिन्चिन शाह), का उल्लेख आता है, जिसने लार के परगना गगनगीर में धोखेबाजी से रामचंद के किले पर कब्जा कर लिया था और उसके परिवार को कैद कर लिया था। वर्ष 1324 में, रिन्चिन ने अंद्कोट[5], कश्मीर हिन्दू राजवंश पर कब्जा कर लिया था और स्वयं को कश्मीर का राजा घोषित कर दिया।[6]

रिन्चिन द्वारा उस व्यक्ति का धर्म स्वीकार करने की कहानी बहारिस्तान पुस्तक के लेखक सहित कश्मीर के लगभग सभी फारसी इतिहासकारों के द्वारा कही गयी है, जिसका अभिवादन रिन्चिन ने एकदम अगली सुबह किया था, और वह था एक इस्लामी संत बुलबुल शाह। उन्होंने बुलबुल शाह की इस्लाम की सेवा करने के लिए मुक्त कंठ से प्रशंसा की है, कि बुलबुल शाह ने रिन्चिन को इस्लाम में मतांतरित कराया और रिन्चिन ने श्रीनगर शहर में एक मस्जिद और एक खानकाह बनाने का आदेश दिया।

## 14 वीं शताब्दी की पहली तिमाही में, कश्मीर में शमसुद्दीन शाहमीर ने आक्रमण किया और कश्मीर में सबसे पहले इस्लामिक वंश की नींव डाली

यह कहानी भरोसे से अधिक भ्रामक तब हो जाती है, जब इसके विषय में और भी शोध किया जाता है। बहारिस्तान में यह वक्तव्य कि रिन्चिन किसी भी धर्म या समुदाय से सम्बन्धित नहीं था[7], हसन के एकदम विरोध में है जो लिखते हैं कि रिन्चन एक बौद्ध[8] था। यहाँ तक कि बहारिस्तान का लेखक कुछ ही आगे जाकर अपने ही लिखे का विरोध करता है, और लिखता है कि रिन्चिन का दिल एक झूठे समुदाय के विश्वासों के द्वारा काला हो चुका था।"[9] हैदर मलिक चदोरा एक और कदम आगे जाता है और लिखता है कि रिन्चिन ब्राह्मण को धर्म अपनाने के लिए तैयार था।[10] हैदर मलिक, जो खुद को नगरकोट के राजा सुश्रम चंद का वंशज कहलाने में गर्व महसूस करता था, ने घटनाओं का वर्णन बहुत ही सावधानी और सजगता से किया है। उसने इस सन्दर्भ में बहुत ही यथार्थपूर्ण टिप्पणी की है। वह कहता है कि रिन्चिन के इस प्रश्न के उत्तर में कि वह कौन था, बुलबुल शाह ने कहा "गरीबम" अर्थात मैं एक अजनबी हूँ। फारसी में इस उपाधि को एक साधारण व्यक्ति के भाव को व्यक्त करने के लिए बहुत ही खूबसूरती से प्रयोग किया गया है। इसलिए उसके लिए असाधारण शक्तियों और चमत्कारों की कहानियों को जोड़ा जाना बहुत ही हास्यास्पद है। वकत–ए–कश्मीर के लेखक का कहना है "उसने (बुलबुल शाह) ने कहा था कि प्रभु ने उसे खाना खाए बिना या जीवन की मूलभूत जरूरतों को पूरा किए बिना ही जीवित रहने की शक्ति दी है। मैं अपने शरीर को अपनी आत्मा से अलग किए बिना दूसरे संसार में ले जा सकता हूँ और इसे अनंत काल तक रख सकता हूँ। हालांकि ये तीनों ही प्रक्रियाएं मुहम्मद साहब की शिक्षाओं के खिलाफ हैं, तो मैं स्वयं को इससे अलग करता हूँ।"[11] बुलबुल शाह की काल्पनिक उत्कृष्टता को सत्यापित करने के लिए वकत के लेखक न केवल उसकी शिक्षाओं के कारण उसे महान बनाने में शामिल हो गए बल्कि वे सूफी संत शेख सहाबुद्दीन सुहारवार्दी के गोद लिए हुए पुत्र की प्रशंसा करने में भी संलग्न हो गए।

कश्मीर में आरंभिक इस्लामिक काल के नीरस धार्मिक शिक्षक को इस्लामिक जगत के शानदार आध्यात्मिक व्यक्तित्व से जोड़ना कश्मीर के मुस्लिम इतिहासकारों की बहुत ही आम प्रक्रिया है। उनके पास उन मतांतरित लोगों के सामने उस विदेशी धर्म और संस्कृति को उचित ठहराने की बाध्यता थी, जिनके सामने उनके पांच हजार साल पुराने धर्म से स्वयं को दूर करना एक कठिन प्रश्न था। इस प्रकार मीर सैय्यद हमदानी को अली अबू तालिब और शाहमीर से जोड़ा गया, जिन्हें पांडवों का वंशज बताया गया। इस दृष्टिकोण की उत्पत्ति को कश्मीर की ऋषि परम्परा और सूफीवाद के प्रसार ने और प्रभावी बनाया।

दो प्रमाणों के आधार पर रिन्चिन के इस्लाम में बुलबुल शाह नामक एक रहस्यमयी भिक्षुक के हाथों मतांतरण की कहानी, (बहारिस्तान के शब्दों में कलंदर) जिसे वकत–ए–कश्मीर का लेखक "इस्लाम धर्म का प्रचारक और मूर्तिभंजक"[12] कहता है, को खंडित किया जा सकता है। पहला कथन अबुल फजल का है कि रिन्चिन ने इस्लाम को शाहमीर[13] के कारण अपनाया। दूसरा जोनाराजा ने रिन्चिन की धार्मिक शिक्षाओं के बारे में यह कहते हुए टिप्पणी की कि एक देवस्वामी को रिन्चन को शैव मत में मतांतरित करने में असफलता का सामना करना पड़ा था। यह अस्वीकृति इसलिए हुई क्योंकि रिन्चन जन्म से भौटिया था।"[14]

यह रोचक बहस कुछ ऐसे तथ्यों पर प्रकाश डालती है जिन्हें बाद में इस लेख में बताया गया है। इन सभी इतिहासकारों में जोनाराजा सबसे पहला था। उसकी मृत्यु सन 1359 में हुई जबकि रिन्चिन की मृत्यु 1326 में हो चुकी थी। इसका अर्थ था कि जोनाराजा ने रिन्चिन की मृत्यु के लगभग छत्तीस साल बाद लिखा था।

उसके अभिलेख उसके बाद के किसी भी इतिहासकार से अधिक प्रमाणिक है। उसने यह नहीं लिखा कि रिन्चिन ने अपना धर्म छोड़ दिया गया था और वह बुलबुल शाह के धर्म का हिस्सा बन गया था। यह बात कि रिन्चिन की विभिन्न धर्मावलम्बियों से बहस होती थी, इस तथ्य को स्थापित करता है कि उसने शैव मत अपनाने से इनकार कर दिया था क्योंकि वह एक बौद्ध था और यह इस्लाम सहित किसी भी अन्य धर्म को अपनाने की उसकी अनिच्छा को दिखाता है। तो इस विषय पर कश्मीर के फारसी इतिहासकारों के द्वारा उत्पन्न किए गए विवाद रिन्चिन की मतांतरण की कहानी के विषय में झूठ बताते हैं। यहाँ तक कि श्रीवर जिसने अपने 1359 में गुरु जोनाराजा की मृत्यु से लेकर अपने समय तक राजतरंगिणी लिखना चालू रखा, वह भी रिन्चन के मतांतरण के विवाद के विषय में कुछ नहीं कहते हैं। कश्मीरी इतिहासकार जो फारसी में लिख रहे थे उन्होंने बुलबुल कलंदर को ऐसा पहला इस्लामिक व्यक्तित्व बनाया जिसे वे कश्मीर में इस्लाम के आदर्श के रूप में स्थापित कर सकें। अतीत को "अन्धेरे युग"[15] के रूप में स्थापित करना और एक आयातित अरब धर्म के अति साधारण फकीरों का आध्यात्मिक शिखर पुरुष के रूप में महिमा मंडन करना इन इतिहासकारों का काम हो गया था। इस प्रकार इस कहानी के अंतिम विश्लेषण में, बुलबुल कलंदर नामक फकीर के अस्तित्व और उसके हाथों रिन्चन के मतान्तरण की कहानी पर उठाए गए प्रश्नों के आधार पर बहस होनी चाहिए।

## शाहमीर

फारसी लिखने वाले कश्मीरी इतिहासकारों ने शाहमीर के जन्म और कारनामों के विषय में खूब कहानियां लिखी हैं। उन्होंने अधिकतर कहानियां तारीख–ए फरिश्ता[16] से ली हैं और फिर उन्होंने इस पूरे विवरण को कहीं न कहीं परालौकिक या किवदंती बना दिया है। हसन लिखता है कि कश्मीर में राजा सह देव (सन 1305–24) के समय तीन मुख्य लोग कश्मीर में आए। उनमें से एक था शाह मिर्जा, शाह ताहिर का बेटा और जो वकार शाह का बेटा था। वह स्वाद्गिर में अपनी जनजाति का सबसे विख्यात नेता था। एक बच्चे के रूप में उसके फकीर पिता ने जब उसे अपनी गोद में बैठाया था तो उसने कहा था कि उसे एक दैवीय अनुभूति हो रही है कि यह बच्चा एक दिन कश्मीर का शासक बनेगा और कई पीढियां उसके उत्तराधिकारी के रूप में शासन करेंगी। जब शाहमीर बड़ा हुआ तो वह अपने परिवार के साथ यह देखने के लिए कश्मीर आया कि क्या उसके दादा की भविष्यवाणी सच होगी?[17] हालांकि हैदर मलिक शाहमीर के दादा वाले किसी भी सपने की बात से इनकार करते हैं जिसमें उन्होंने शाहमीर को कश्मीर का राजा बनाने की बात की थी।

अपने शोध और विश्लेषण को आगे बढाने से पूर्व, यह कहे जाने की आवश्यकता है कि कश्मीरी मुस्लिम इतिहासकारों ने छोटे–मोटे धार्मिक फकीरों, पाखंडपूर्ण सूफियों, जाली दरवेशों और बनावटी मिशनरियों के लिए एक परालौकिक महानता का भ्रम उत्पन्न किया। वे इसे बरगलाने के लिए इस्तेमाल करते थे जिससे मतांतरित लोगों को यह यकीन हो जाए कि वे एक महान आध्यात्मिक धर्म में आए हैं। बिना किसी प्रमाण के वे अपने पारलौकिक महान कामों और चालों को बस यही कहकर सत्यापित करते थे कि "ऐसा कहा गया है" या इतिहास के अनुसार या ऐसा किसी ने कहा है, मगर उन्होंने कभी भी कोई ठोस स्रोत या प्रमाण नहीं दिया। यह असामान्यता फॉक के द्वारा स्पष्ट रूप से परिलक्षित की गयी है, जो उर्दू के एक विख्यात लेखक थे और जिन्होंने जैनुल आबिदीन बुदशाह के जीवन और उपलब्धियों पर शानदार काम[18] किया है। इन पक्षपात पूर्ण इतिहासकारों की एक और विशेषता है कि आयत को खत्म करने के बाद उन्होंने पैगम्बर, उसके साथियों, इमामों, फकीरों और इस्लाम के दरवेशों की तारीफ की है जिन्होनें लेखक को यह लिखने की ताकत दी कि कैसे उनके आशीर्वाद से कश्मीर में अधर्म, बर्बरता, मूर्तिपूजा, दुराचरण, अंधेरे और दुर्दशा की समाप्ति हुई और जीवन को सही दिशा देने वाले इस्लाम की स्थापना हुई। उन्होंने काफिरों के इस्लाम में बलात धर्मपरिवर्तन का महिमामंडन करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी है और उसके साथ ही उनकी मूर्तियों को तोड़ने का भी महिमामंडन किया है।

कश्मीरी इतिहासकारों के इस वक्तव्य, कि शाहमीर स्वात में एक शासक परिवार का वंशज था, को गंभीर शोधकर्ताओं के द्वारा अस्वीकृत किया जाता है। यह पूरी तरह से स्थापित हो चुका है कि वह पंचगहवारा घाटी का खाशा था। आर.के. शर्मा कहते हैं कि जोनाराजा सह देव के राज्य (सन 1301–20) की दो घटनाओं के विषय में लिखते हैं, जो बहुत महत्वपूर्ण हैं और जिन्होंने कश्मीर के इतिहास को एकदम से बदल कर रख दिया। एक तो वर्ष 1313 में शाह मीर का आना। वह पंचगहवारा[19] के सीमावर्ती क्षेत्र के मुस्लिम सैन्यदल का नेता था। यह क्षेत्र चेनाब की सहायक नदी अनस की घाटी में दिवसर परगना के दक्षिण में था।

कुछ विद्वान कहते हैं कि पंजगब्बर घाटी खाशों[20] द्वारा बसाई गयी थी और यही कारण है कि वे खाशा के मूल को शाह मीर के साथ जोड़ते है।" इस बात का भरोसा करने का कोई भी अभिलेखित प्रमाण नहीं है कि वह स्वादगिर से था, यह स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है कि स्वादगिर एक लिखने की त्रुटि है। स्वात उस घाटी का नाम है जो पाकिस्तान के फ्रंटियर प्रांत पर कुनार के क्षेत्र तक है। आम बोलचाल में इस क्षेत्र में स्वात–ए–कुनार नामक कोई भी स्थापित सीमा रेखा नहीं थी। अरबी लिपि में कुनार और गिर एकदम एक ही तरीके से लिखी जाती है, केवल एक ही अंतर है कि क अक्षर के नीचे दो बिंदु होते हैं। इसलिए इस दावे को एकदम से खारिज किया जा सकता है कि शाहमीर का स्वादगीर के सत्ताधारी परिवार से कोई

**कश्मीरी इतिहासकार जो फारसी में लिख रहे थे उन्होंने बुलबुल कलंदर को ऐसा पहला इस्लामिक व्यक्तित्व बनाया जिसे वे कश्मीर में इस्लाम के आदर्श के रूप में स्थापित कर सकें**

संबंध है। ऐसे में उसके या उसके दादा की इस प्रेरणा की कहानी कि वह एक दिन कश्मीर का शासक बनेगा, एकदम बकवास है। कश्मीरी इतिहासकार अपनी खुद की कल्पना में महानायक पैदा करते रहे। वे अपने खुद के झूठों पर यकीन करने की हद तक पाखंडी थे।

**कश्मीरी इतिहासकार अपनी खुद की कल्पना में महानायक पैदा करते रहे। वे अपने खुद के झूठों पर यकीन करने की हद तक पाखंडी थे**

जैसा पहले कहा गया है कि शाहमीर मूल रूप से एक खाशा था। यह डाकू और लूटपाट करने वाली वह जनजाति थी जो असहाय लोगों को लूटती थी। वे ग्रामीण इलाकों सहित उरी और चकोथी में नीचे की तरफ वितस्ता घाटी में भी फैले थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने सजातीय खाशा डाकुओं के एक समूह का नेतृत्व किया होगा, जिसे उसके क्षेत्र में ही और अधिक शक्तिशाली गुटों ने हराया और भगाया होगा। और पूरा यह भगोड़ा समूह उरी बारामुल्ला क्षेत्र में सुरक्षा हासिल करने के लिए चला गया हो। फारसी इतिहासकारों का यह कहना कि कश्मीर के राजा सहदेव ने अपनी आधिकारिक टीम को शाहमीर की आगवानी के लिए भेजा और उसे उस शहर में रहने की पूरी सुविधा आदि प्रदान की, यह सब एक झूठ से अधिक कुछ नहीं है।

राजा ने कभी भी उसके लिए औपचारिक भोज नहीं दिया और न ही उसका स्वागत करने के लिए किसी दरबारी दूत को भेजा। लेकिन कश्मीर के राजा की परम्परा के अनुसार कश्मीर में एक शरणार्थी या फकीर के रूप में उसके प्रवेश पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया।

शाहमीर का बारामूला शहर के साथ क्या सम्बन्ध था, इसे स्टीन ने अपने इस नोट के द्वारा बताया हैः– "वितस्ता घाटी में बारामूला के नीचे खाशा लोग रहा करते थे। इसे खाशाओं के स्थान के रूप में विरानक के सन्दर्भ द्वारा साबित भी किया जा चुका है। (खंड 8, फुटनोट 409)[21] यह इस बात को बताती है कि राजौरी बदली क्षेत्र में कुछ स्थानों पर एक भगोड़ा होने के बाद, शाहमीर को उसके परिवार के साथ बुलिसा के पास द्वारबिदी द्वार के शासक के यहां सुरक्षा प्राप्त हुई। वह घाटी में उस समय प्रवेश का मार्ग था और अपने जातीय साथियों को वहां पर सुरक्षित रूप से पहुंचाने के बाद, उसने कश्मीर में अपनी अगली योजना बनानी आरम्भ कर दी थी और वह थी सत्ता से विश्वासघात और कश्मीर में पहला इस्लामी शासन स्थापित करना। कश्मीरी इतिहासकार जो उसे पांडवों का वंशज बताते हैं, वे केवल ऐसा इसलिए करते हैं जिससे उसे दान देने वाली रानी कोटा रानी के साथ उसके द्रोह के विश्वासघात को सही स्थापित किया जा सके।

शाहमीर शाही दरबार तक कैसे पहुंचा यह एक बहुत ही सरल इतिहास है। वर्ष 1331 में एक तुर्की सैनिक ओर्दन ने दक्षिण कश्मीर में हीरपुर से गुजरते हुए आक्रमण किया था। उदयन देव तिब्बत की तरफ भाग गया मगर उसकी रानी कोटा रानी ने साहस दिखाया और अपने भाई रावण रैना, शाहमीर और अपने सेनापति भिक्षाना भट्ट काकापुरी में ऊर्जा का संचार किया।[22] कश्मीरी सैनिकों ने तुर्क सैनिकों को अपने कदम पीछे करने पर विवश कर दिया और उन्हें संधि करने पर विवश किया। संधि की शर्तों को शाहमीर[23] ने ही निर्धारित किया। धीरे–धीरे शाहमीर का शाही दरबार में प्रभाव बढ़ता गया और उसे अशांत क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने के लिए सेनापति बना दिया गया।[24] यह कश्मीर के सिंहासन के लिए उसकी इच्छा की शुरुआत थी।

बहारिस्तान शाहमीर के विश्वासघाती कृत्यों के विषय में कुछ नहीं कहता है। लेखक केवल यही कहता है कि उसकी पद और प्रतिष्ठा में और वृद्धि हुई और उसके राज्य के अधिकतर हिस्से उसके खाते में आए। मगर बहारिस्तान द्वारा किया गया यह कम बयानी का कृत्य लगभग सभी फारसी इतिहासकारों के कामों में परिलक्षित होता है, और इसकी काट जोनाराजा ही करता है जो कहता है "उसने (शाहमीर) ने बहुरपा[25] (आधुनिक बीरू) और शामला (हमाल) के सरदारों को अपने अधीन किया। उसने भट्ट भिक्षाना के मजबूत क्षेत्र विजयेशा (विजेश्वारा=वेजेब्रोर) और चक्रधर (तस्कधर) को जलाया।

मैं यहाँ पर थोडा सा विषयांतर करना चाहूंगा और अपने पाठकों को दो स्थानों अर्थात विजयेशा और चक्रधर के बारे में कुछ बताना चाहूंगा।

स्टीन द्वारा किया गया राजतरंगिणी के अनुवाद की प्रथम पुस्तक का श्लोक 38 कहता है कि इस देश में, जिसमें केशव (विष्णु) और इशाना (शिव) का सिंगार चक्रभ्रत और विजयेशा साथ–साथ कई अन्य रूपों में भी होता है।" इस दोहे पर स्टीन की टिप्पणी बहुत महत्वपूर्ण है। वह लिखता है–

उपरोक्त दोहा विशेष रूप से विष्णु– चक्रधर और शिव विजयेशा को बताता है क्योंकि इन दो देवों की तस्वीरें एक दूसरे के नजदीक स्थित हैं। विष्णु–चक्रधर वुदार या जलोढ़ पठार पर एक प्राचीन मंदिर है, जो वितस्ता के बाएँ किनारे पर है। यह वेजेब्रोर शहर से एक मील की दूरी पर है। इस पठार को अब तस्कदर उदर के नाम से जाना जाता है। कल्हण चक्रधर के मंदिर और पहाड़ियों को बार–बार कहते हैं, जहां उन्होंने अपने संकट का समय काटा। नीलमाता चक्रधर को विष्णु रूपों में प्रथम स्थान में रखती है और इस पूजा स्थान के विषय में कुछ अपुष्ट विवरण देती हैं। यह पूजा स्थल अब तीर्थ का स्थान नहीं रह गया है।

उदयन देव (सहदेव के भाई और कोटा रानी के भगोड़े पति) ने शाहमीर को कामराज की उपाधि देकर सम्मानित किया और उसे उसके बेटों जयामिसरा (जमशेद) और अल्लेसरा (अलीशेरा)[26] को कुछ जिलों में संपत्ति के अधिकार भी दिए।

कश्मीर हिन्दू शासकों की इतनी उदारताओं के खिलाफ, शाहमीर ने खाशा की अपनी परम्परागत विश्वासघाती प्रवृत्तियों को प्रदर्शित किया और उसने धोखे से भिक्षाना भट्ट, जो कि कोटा रानी का भाई था,[27] और उसकी सेना का सेनापति, का कत्ल कर दिया।[28] इस कत्ल की कहानी को हसन और हैदर मलिक चदुरा ने भी बताया है।

बहारिस्तान के शब्दों में शाहमीर का जो

दूसरा सबसे विश्वासघाती कदम था यह था, "उसने कोटा रानी से छुट्टी ली और वह श्रीनगर शहर में जाकर बस गया। उसने भिखाना भट्ट काकापुरी की हत्या करवाई क्योंकि उसने शाहमीर का साथ देने से इनकार कर दिया था। हालांकि जोनाराजा ने इस धोखे से पर्दा उठाया है और वह कहता है कि शाहमीर ने अपनी बीमारी का झूठा प्रचार कराया और भट्ट भिक्षाना उसके पास उसके हालचाल पूछने आया। जैसे ही वह आया, शाहमीर ने उसे मारने की अपनी पूर्वनिर्धारित योजना के साथ उसे मौत के घाट उतार दिया।[29] फिर उसने सभी सरदारों को इकट्ठा किया और अंदरकोट में कोटा रानी को अपदस्थ कर दिया[30] और खुद को सन 1341 में राजा घोषित कर दिया और उसने सुलतान शमसुद्दीन की उपाधि धारण की। (जिसका अर्थ है विश्वास का सूरज)

कश्मीर के फारसी इतिहासकारों ने एक स्वर में कहा है कि अंदरकोट में कोटा रानी को अपदस्थ करने के बाद, कोटा रानी को तक्षकों के द्वारा (शायद कैद करने वालों) कैद कर लिया गया और साथ ही उसके दोनों बेटों को कैदी बना दिया गया।[31] बहारिस्तान हमें बताता है कि उसे सत्ताच्युत करने के बाद, शाहमीर ने उसे किसी न किसी कीमत पर शादी के लिए तैयार कर लिया। फारसी इतिहासकार कहते हैं कि जैसे ही कोटा रानी ने सुलतान शमसुद्दीन के कक्ष में कदम रखा, उसने अपने पेट में खंजर भोंक लिया और जब उसकी अंतड़ियां बाहर आ गईं तो उसने कहा "यह मेरी स्वीकृति है।"

यह कहानी उस समय के इतिहास में कई रूपों में पाई जाती है। बहारिस्तान के लेखक के अनुसार कि कोटा रानी शादी के प्रस्ताव के लिए तैयार नहीं हुई थी, और वह शादी उनकी इच्छा के विरुद्ध हुई थी। लेखक संकेत देता है कि कोटा रानी की शादी कुछ समय तक चली थी। मगर इस तथ्य को कई तत्कालीन इतिहासकार ही अस्वीकार कर देते हैं। चदोरा का मलिक हैदर कहता है कि कोटा रानी ने उसके शादी के प्रस्ताव को मना कर दिया था क्योंकि वह अपने अधीनस्थ से विवाह नहीं करना चाहती थी। उसने उसे रिन्चिन से

**"भारी संख्या में अभी भी कश्मीर में विधर्मी छूट गए थे। कई बुतखाने अभी भी वहां थे। सुलतान ने उनमें से अधिकतर का विधवंस कर दिया और भारी संख्या में काफिरों को इस्लाम का हिस्सा बनाया। जो इतने सौभाग्यशाली नहीं थे कि वे पवित्र इस्लाम का हिस्सा बन सकें, उन्हें जजिया कर देना पड़ा"**

पैदा हुए अपने बेटे हैदर के अतालिक (शिक्षक) के रूप में नियुक्त किया था।[32] परन्तु जब रानी अपने अधीनस्थ के द्वारा पराजित हो गयी तो उसने अपने पेट में खंजर भौंक कर आत्महत्या कर ली थी।[33] हसन इस कहानी को कुछ अलग तरीके से लिखता है। वह लिखता है "उसे (कोटारानी) को परिस्थितियों ने शाहमीर का प्रस्ताव स्वीकार करने पर विवश किया गया था। अपने विवाह के दिन, उसने खुद को बहुत ही खूबसूरत वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित किया और मगर उसने शाहमीर से यह कहते हुए खुद को खंजर भौंक लिया कि यही मेरी स्वीकृति है।[34] हालांकि कोटा रानी के समय के सबसे नजदीकी इतिहासकार जोनाराजा का एक और अलग ही संस्करण है। वह शादी की कोई बात नहीं करता है, वह केवल यही कहता है कि शाहमीर ने उसे एक रात के लिए हमबिस्तर किया और फिर उसे कैद में डाल दिया।[35]

इन सभी कहानियों में एक बात सबसे आम है कि कोटा रानी ने शाहमीर के प्रस्ताव को स्वीकृत कर दिया था मगर चूंकि वह सत्ता में था तो उसने रानी को वह प्रस्ताव स्वीकारने के लिए विवश किया। इस विकट परिस्थिति से बाहर आने का कोई मार्ग न देखते हुए बहादुर कोटा रानी ने या तो आत्महत्या कर ली होगी या फिर उसे उसके बंदी बनाने वाले ने कैद कर दिया होगा। मुस्लिम अपने धर्म के अनुसार स्त्री से विवाह से पहले अनुमति लेते हैं और यदि अनुमति उपलब्ध नहीं होती है तो यह विवाह मान्य नहीं होता है। जिस व्यक्ति ने धोखे से और जबरन कोटा रानी को विवाह के लिए मजबूर किया, वह वही व्यक्ति है जिसे कश्मीर के फारसी इतिहासकार विश्वास के सूर्य जैसा प्रखर बताते हैं। वक्त–ए– कश्मीर का लेखक कहता है "वह कश्मीर के सुलतान का पूर्वज था, जिसने कश्मीर पर पूरी आजादी के साथ शासन किया और वह राज्य में कुशल प्रशासन देने में और धर्म का प्रचार और प्रसार करने में और इस्लाम के अनुयाइयों की सेवा करने में दो सौ से अधिक वर्षों तक सफल रहा।" इस प्रकार कश्मीर से हिन्दू शासन खत्म हुआ और मुसलमानों का शासन स्थापित हुआ जिनका धर्म यहाँ से हजारों मील दूर अरब से शुरू हुआ।

## मूर्तिभंजक सिकंदर

वह सुलतान जिसने कश्मीरी हिंदू और बौद्ध मंदिरों, मठों और विहारों का सबसे अधिक विध्वंस किया, और जिसने इस्लाम में जबरन मतांतरण कराए और जिसने इनको ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था, वह था सुलतान सिकंदर, शाहमीर का एक वंशज। उसके इस अभियान की प्रशंसा करते हुए वक्त–ए–कश्मीर के लेखक ने उसे हामी उल इस्लाम, वल मुस्लिमीन, सुलतान सिकंदर बुशिखान की उपाधि दी, जिसका अर्थ है इस्लाम और मुसलमान के समर्थक, मूर्तिभंजक सुलतान सिकंदर। वह उसे सुलतान कुतुबुद्दीन का पवित्र बेटा कहता है जिसने इस्लाम के सच्चे धर्म की स्थापना की और उसका प्रचार किया। यहाँ हम वक्त के लेखक के कुछ वाक्य दे रहे हैं, जो सिकंदर के वर्णन के साथ आरम्भ होते हैं:

"भारी संख्या में अभी भी कश्मीर में विधर्मी छूट गए थे। कई बुतखाने अभी भी वहां थे। सुलतान ने उनमें से अधिकतर का विध्वंस कर दिया और भारी संख्या में काफिरों को इस्लाम का हिस्सा बनाया। जो इतने सौभाग्यशाली नहीं थे कि वे पवित्र इस्लाम का हिस्सा बन सकें, उन्हें जजिया कर देना पड़ा। मुसलमानों के लिए उसने बहुत कुछ किया। उसके दिनों के दौरान भारी संख्या

में धार्मिक विद्वान् (उलेमा) और सैय्यद कश्मीर आए।"[36]

कश्मीर के अधिकतर फारसी इतिहासकार सिकंदर के मतांतरित मंत्री सह भट्ट को इतनी भारी संख्या में मंदिरों के विध्वंस और बलात धर्मांतरण के लिए दोषी ठहराते हैं। यह तथ्यों के साथ बहुत ही बड़ा छेड़छाड़ है। यह बहुत ही अजीब लगता है कि सुहा भट्ट जिसने बेहद ही व्यक्तिगत कारणों से अपने पूर्वजों का धर्म छोड़कर इस्लाम अपना लिया, वह किसी न किसी कारण वश अपने मूल समुदाय से इतना खफा हो जाएगा कि वह मंदिरों और मठों का विध्वंस करने लगेगा और अपने ही लोगों का बलात धर्मपरिवर्तन कराने लगेगा।

तोह्फतु–अल–अहबाब ने सिकंदर के द्वारा हिन्दू समुदाय के मंदिरों के विध्वंस को लिखा है, और उसने कहीं भी सुहा भट्ट (मलिक सैफुद्दीन) उसके मतांतरित वजीर का नाम नहीं लिया है, कि उसकी भी इन सबमें कोई भूमिका रही होगी। यहाँ पर हम तोह्फतु–अल–अहबाब के लेखक के विचार लेते हैं:[37]

अमीर सैय्यद अली हमदानी की यात्रा के समय सुलतान सिकंदर कश्मीर का शासक था। शासक ने अमीर–ए–कबीर के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी, और वह अमीर–ए–कबीर के निर्देशों और दिशानिर्देश के अनुपालन के साथ उसका शिष्य और अनुयायी बन गया था, यह धार्मिक शासक उस क्षेत्र में इस्लाम को मजबूत करने और मुस्तफा समुदाय को सुदृढ़ करने के लिए एक उपकरण बन गया था। वह मुहम्मद के अनुयाइयों के लिए समृद्धि लाया। उसने देश के सभी मन्दिरों को तोड़ दिया। काफिरों की मूर्तियाँ और उनके मंदिर नष्ट किए गए। उसने इस भूमि को काफिरों की पूजापाठ से आजादी दिलाई और साथ ही कश्मीर की भूमि को जैंदिक[38] (विधर्मियों) की विकृतियों, उत्पीडन और विचलन से मुक्ति दिलाई। उसने विधर्मियों और बहुदेववादियों को अपना देश छोड़कर जाने के लिए कहा। मंदिरों, मूर्तिघरों, और मूर्तियों को तोड़ने के कारण उसे सिकंदर, मूर्तिभंजक की उपाधि मिली।

उपरोक्त अभिलेखों को सही दृष्टि से देखने पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि हिन्दू मंदिरों और धार्मिक स्थलों का विध्वंस और हिन्दुओं का इस्लाम धर्म में जबरन मतांतरण या उनका उन्मूलन सब कुछ ईरानी मिशनरी मीर सैय्यद के निर्देशों पर किया गया, जो कश्मीर में सूफी के पहनावे में सन 1381 में आया था।[39] खुलासतु–ए–मनाकिब हमें बताता है:

"शेख महमूद मुज्दाकानी के निर्देशों के अनुसार आमिर (सैय्यद अली) ने आलूद दोवलेह सिमानी के नजदीकी साथी की सलाह के अनुसार रहस्यवाद का मार्ग अपना लिया था और उसने चौंतीस प्रमुख शेखों के फतवे का जबाव दिया था कि इस्लाम का प्रचार करने और आध्यात्मिकता चाहने वालों को ज्ञान देने के लिए लम्बी यात्राओं पर जाना है।"[40]

फतवा जारी होना यह साबित करता है कि सैय्यद ने अपना मूल स्थान तैमूर के भय के कारण नहीं छोड़ा था जैसा कुछ कश्मीरी इतिहासकार कहते हैं। तोह्फतु–अल–अहबाब के लेखक की टिप्पणी है "हमने खुलासतु–ए–मनागिब और मजलिसू–मोमीन से यह सीखा है कि मीर का क्रोधी स्वभाव सुदूर भूमि पर उसके लम्बे समय तक रुकने के रास्ते में बाधा था। कुछ लेखकों ने कहा है कि ट्रांस–ओक्सियाना में तैमूर के द्वारा सभा बुलाए जाने पर मीर अली अपने गुस्से को नियंत्रित करने में विफल रहा था और यही कारण था कि वह हमेशा ही सुलतान के गुस्से से डरता था।[41]

वह कश्मीर केवल और केवल एक ही उद्देश्य के साथ आया था और वह था इस्लाम और उसकी शिक्षाओं का प्रचार–प्रसार न कि सूफीवाद। हालांकि यह भी कहा जाता है कि तैमूर के द्वारा तजाकिस्तान में बुलाई इस्लामिक विद्वानों (उलेमाओं) की सभा में, मीर सैय्यद ने कुछ कठोर शब्द कहे थे, जिसने श्रोताओं को आक्रोशित कर दिया और उसके लिए नफरत भी पैदा हुई। यहाँ पर इस बात का कोई भी उल्लेख नहीं है कि जब वह कश्मीर की तरफ बढ़ा तो उसके साथ सात सौ सैय्यद थे।

हमने मन्दिरों और तीर्थस्थानों के विध्वंस और सुलतान सिकंदर के द्वारा बलात मतांतरण का जोर दिए जाने के पूरे के पूरे सिद्धांत को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि वह सुभाता[42] नामक हिन्दू माँ की कोख से जन्मा था और उसकी दोनों पत्नियां प्रतिष्ठित हिन्दू परिवार से आई थीं, और उसने अपनी दोनों ही बेटियों का विवाह हिन्दुओं में किया था। इन सभी सम्बन्धों के साथ कोई भी राजा अपनी हिन्दू प्रजा पर इतना अत्याचार नहीं कर सकता है। हिन्दुओं के खिलाफ ये सभी जघन्य अपराध केवल अली हमदानी के आदेश पर हुए थे। कश्मीरी इतिहासकारों ने हिन्दुओं के साथ किए गए इतने सारे जघन्य अपराधों के लिए सिकंदर को दोषी ठहराया और उसे नए धर्म का रक्षक बनाकर स्थापित किया और हमदानी को वास्तविक अपराध से मुक्त कर दिया। सिकंदर पर ये सारे आरोप लगाने के लिए उन्होंने उसके लिए बुतशिकन की उपाधि दी, और वह भी केवल उसे बदनाम करने के लिए। मीर सैय्यद अली हमदानी से लोगों का ध्यान भटकाने के लिए यहाँ यह कहा जाना चाहिए कि दोनों ही बहारिस्तान और तोह्फतु–अल–अहबाब में मीर सैय्यद अली हमदानी को इस तरीके से बताया गया है कि वह शिया धर्म का पालन करने वाला था।

फारसी में लिखने वाले कश्मीरी इतिहासकारों और आत्मकथाकारों ने एक स्वर में मीर सैय्यद पर तारीफों की वर्षा की है और उसे इतना महान और श्रेष्ठ मुस्लिम संत बताया है जिसने कश्मीर की भूमि से विधर्मियों और मूर्तिपूजन करने वालों को खदेड़ा और नष्ट किया और कश्मीर की जमीन को इस्लाम की रोशनी से अभिभूत किया। शायद तोह्फतु–अल–अहबाब एकमात्र ऐसा ग्रन्थ

**अभिलेखों को सही दृष्टि से देखने पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि हिन्दू मंदिरों और धार्मिक स्थलों का विध्वंस और हिन्दुओं का इस्लाम धर्म में जबरन मतांतरण या उनका उन्मूलन सब कुछ ईरानी मिशनरी मीर सैय्यद के निर्देशों पर किया गया**

है जो सैय्यद के स्थानीय उलेमा के साथ हुए विवादों को प्रदर्शित करता है। यह कहता है कि कश्मीरी उलमा की सैय्यद के साथ इतनी शत्रुता थी कि उन्होंने एक बार उसे जहर भी दिया था मगर वह जहर से बच गया।[43] यह प्रश्न कि उलेमा कौन थे और उनके बीच वैचारिक अंतर का कारण क्या था? इस सन्दर्भ में नुरू दिन जफर बादाक्शी, जिन्होनें सैय्यद की आत्मकथा लिखी है, खुलासतु–ए–मनाकिब में लिखते हैं कि–"मुझे उलेमा और वेदान्तियों के हाथों कई षड्यंत्रों का सामना करना पड़ा। उनके क्रोध और असंतोष की हद यह थी कि उन्होंने एक बार मुझे जहर भी देने का प्रयास किया, मगर खुदा ने मुझे अपनी शरण में लिया। हालांकि मेरे शरीर में अभी तक उस जहर का असर बना हुआ है। साल में एक बार मैं बहुत ही बेचैन हो जाता हूँ और मेरा शरीर पीला पड़ने लगता है और फिर छाले अपने आप सूख जाते हैं। यह कहानी इस तरह हुई। मैं मुल्लाओं की एक सभा में बैठा हुआ था, जहां पर मैंने कुछ कहा तो वह लोगों को पसंद नहीं आया। उलेमा मेरी कही गयी सच बातों को लेकर खुश नहीं थे और एक दूसरे से यह कह रहे थे कि अगर किसी ने भी सैय्यद की बातों पर यकीन किया तो वे अपना भरोसा उन पर से हटा लेंगे। उन्होंने मुझे जिंदा या मृत छुटकारा पाने का षड्यंत्र रचा।" यह उसे जहर दिए जाने की असली कहानी है।

बहारिस्तान और तोह्फतु–अल–अहबाब का सावधानीपूर्वक अध्ययन हमें यह नहीं बताता कि सैय्यद अली हमदानी शिया धर्म का अनुयायी था और उसने सुन्नी मत का पालन करने वाले उलेमाओं की बातों का विरोध किया था। ऊपर दिए गए दो उदाहरणों में हमें यह संकेत मिलते हैं कि उनका विवाद प्रकृति में तथ्यात्मक विवाद था।

हालांकि कश्मीरी इतिहासकारों ने अपने पाठकों को यह भरोसा दिलाने के लिए बहुत ही जी–तोड़ मेहनत की है कि सैय्यद एक पक्का सुन्नी संत, सूफी और विद्वान् था जिसने कश्मीर में सुन्नी इस्लाम के पैर जमाने में बहुत सेवा की।[44] परन्तु हमारे पास इस विषय के पर्याप्त प्रमाण हैं कि उसका झुकाव नुरबखशियान–हमदनियाँ परम्परा की तरफ था।

मीर सैय्यद हमदानी ने हिन्दू मंदिरों के विध्वंस और हिन्दुओं के जबरन मतांतरण में जो कुछ अधूरा छोड़ दिया था, वह सब उसके बेटे मीर मुहम्मद हमदानी ने पूरा किया। ■

*संपर्क - 9469650591*
*knp627@gmail.com*

**संदर्भ संकेत**

1. सिकंदर को हिंदू मंदिरों और मूर्ति के घरों के विनाश और हिंदू सभ्यता के निशानों को खत्म करने के लिए मूर्तिभंजक बताते हुए आजम देदामरी वक्त–अल–कश्मीर में लिखते हैंः सुलतान सिकंदर के आदेश के द्वारा वितलन मार्ग (डल झील) पर एक स्तम्भ बनवाया गया था। पूर्व के राजाओं और हिंदुओं की किताबों को एक बड़े ढेर के रूप में रखा गया था और उन्हें मिट्टी से ढका गया था, जिससे यह खम्भा बना था. वकायत–ए कश्मीर, आजम देदामरी, अनुवाद शमसुद्दीन अहमद, जम्मू–कश्मीर इस्लामिक रिसर्च सेंटर, 2001,पृ 73
2. बहारिस्तान–ए–शाही, अनुवाद, काशीनाथ पंडित, निर्दिष्ट कृति, पृ 95. फुटनोट 2
3. मध्ययुगीन कश्मीर इतिहासः के.एन.पंडित, इस्लामी शोध केंद्र, 21 अगस्त, 2008
4. बहारिसन–ए–शाही, अनुवाद के.एन. पंडित, यथास्थान निर्दिष्ट पृ.19, फुटनोट 21–22
5. राजतरंगनी के अभियंतर कोट्टा, खंड 4,श्लोक 506–11 फुटनोट। बहलर की रिपोर्ट पृष्ठ 13 भी देखें
6. तारीख–ए–हसन खुइहमी लिखते हैं कि कश्मीरियों ने उन्हें खाशाओं के आक्रमणों के बचाने के लिए रिन्चिन को धन्यवाद दिया। तारीख–ए–हसन, खंड 2, पृ. 164। खाशाओं के लिए राजतरंगिनी खंड 2, पृ. 430 देखें। जोनाराजा ने उन्हें अभिसार के रूप में वर्णित किया है जो वितस्ता और चंद्रभागा के बीच क्षेत्र में स्थित थे। जोनराजा की राजतरंगिनी पद 163। राजतरंगिणी खंड एक, फुटनोट 180।
7. यथास्थान निर्दिष्ट, पृ. 20
8. तारीख–ए–कश्मीर, पीर गुलाम हसन खुइहमी, खंड 2, पृ. 16
9. वही, पृ. 22
10. चदोआ की तारीख–ए–मलिक हैदर। एमएस. एफ. 31बी
11. वक्त–ए–कश्मीर। आजम देदामरी, अनु. शमसुद्दीन अहमद, जम्मू–कश्मीर इस्लामिक रिसर्च सेंटर, श्रीनगर, अप्रैल 2001, पृ. 55, कृपया ध्यान दें कि देदामरी संस्कृत डिदा–मठ का कश्मीरी रूप है जिसका अर्थ है कश्मीर की रानी दीदा द्वारा निर्मित मठ, इस कथन में स्पष्ट विरोधाभास है। मुसलिम विद्वान मानते हैं कि चमत्कारों के प्रदर्शन की दिव्यता पैगंबर यानी देवदूत की विशिष्टता है। जीसस ने चमत्कार किए और मोहम्मद ने भी।
12. वही, पृ.22
13 आईना–ए–अकबरी, अबुल फजल, अनुवाद जैरेट, कोलकाता 1948–49 खंड2,पृ. 386
14. जोनाराज की राजतरंगिनी, अनु. जे.सी. दत्त, नई दिल्ली 1986, पृष्ठ 71
15. वकत–ए–कश्मीर, यथास्थान निर्दिष्ट पृ. 53
16. तारीख–ए–फिरिश, उर्दू में अनुवाद अब्दुल हैय ख्वाजा, मकतबा मिलत, देवबंद,खंड 2 पृ. 936
17. वकत–ए–कश्मीर, देदमारी यथा स्थान निर्दिष्ट, पृ. 643

18. तारीख–ए–बुडशाही, मुंशी मोहम्मद दीन फौक, लाहौर साथ ही देखें याद–ए–अय्याम या गुजरात का इतिहास, हकीम सईद अब्दुल हय, पृ. 58–59
19. अधिक जानकारी के लिए राजतरंगिणी खंड एक, पृ. 370एन देखें। स्टीन लिखते हैं कि राजतरंगिणी के कई हिस्सों में, हम पाते हैं राजपुरी, आधुनिक राजौरी के शासकों को खाशाओं के स्वामी के रूप में वर्णित किया गया है। राज. खंड 2, 979 और अन्य। पंज कबबर के लिए देखें राज., खंड 1, पृ. 47, फुटनोट 317।
20. खाशाओं के स्थान के भूगोल को जानने के लिए देखें राज. खंड 1, पृ. 47, फुटनोट 317
3ए कांप्रिहेंसिव हिस्टी ऑफ इंडिया, ओरियंट लांगमांस, शर्मा आर.एस. 1992, पृ. 628, आईएसबीएन 978–81–7007–121–1
21. स्टीन ने वीरानका की पहचान करने के लिए बहुत मेहनत की है और मुजफ्फराबाद और उरी के बीच वितस्ता के दाईं ओर बुलीसा के सीमावर्ती इलाके में वीरान गांव पाया है। घाटी के लिए द्वार या प्रवेश द्वार होने के नाते द्वारपाती या द्वार के स्वामी के अधीन एक मजबूत सैन्य शक्ति तैयार की गई ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि राजपुरी से कोई घुसपैठ घाटी में नहीं हो सके। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजपुरी (राजौरी) क्षेत्र में अपने प्रतिद्वंद्वियों द्वारा पराजित होने के बाद शाह मीर ने द्वारबिदी के द्वारपती के साथ शरण मांगी जिन्होंने उन्हें आश्रय दिया। कश्मीरी इतिहासकारों द्वारा यह कहा गया कि सह देव ने उनके स्वागत के लिए अपने सैनिकों के एक दल को भेजा। द्वारबिदी के रक्षकों में खाशा भी शामिल थे जिन्हें बाद में फारसी इतिहासकारों द्वारा खाहयान कहा गया था। वितस्ता के आस–पाास खाशा लोगों की बस्तियों का विवरण जानने के लिए राजतरंगिनी, खंड पांच के श्लोक नंबर 214 के फुटनोट में मिलेगा।
22. वास्तव में बाहरी लोग राजा (सहदेव) द्वारा संरक्षित दया के आधार पर नियुक्त, शरणार्थी और यात्री थे। जोनाराज, पृ, 62
23. बहारिस्तान, यथा स्थान निर्दिष्ट, पृष्ठ 28
24. जोनाराजा कहते हैं कि एक्साला के द्वारा किए गए आक्रमण के दौरान शाहमीर में लोगों को एक रक्षक मिला। राजतरंगिनी जोनराजा, अनु. जे.सी. दत्त, पद 245
25. कहा जाता है कि पौराणिक गुफा जिसमें अभिनवगुप्त ने अपने अनुयायियों के साथ प्रवेश किया था उसी बीरू में स्थित है। नीलमत पुराण और अन्य संस्कृत ग्रंथों ने इस इलाके में कई तीर्थों का उल्लेख किया है जिसमें गांव सुनेपाह शामिल है जिसमें हम राजा ललितदित्य द्वारा निर्मित एक अग्रहर सुवर्णपर्षव को पहचान सकते हैं। राज., खंड 4, श्लोक 673 देखें
26. देखें बहरिस्तान, यथास्थान निर्दिष्ट, पृष्ठ 51, फुटनोट 7। जोनाराजा पद 252–55
27. तारीख–ए–मलिक हैदर चडोरा, एमएस, जम्मू–कश्मीर राज्य अनुसंधान पुस्तकालय, एफ. 33 ए
28. जोनराजा, पद 274–75
29. जोनराजा की राजतरंगिनी, यथास्थान निर्दिष्ट, जे, सी, दत्त, पृ–29
30. संस्कृत अभ्यंतर कोट्टा वास्तव में राजा जयपिडा (सन 1128–1149ई.) द्वारा स्थापित जयपुरा है। अंडरकोट द्वीप पर कई मंदिरों के खंडहर हैं, जो राजा जयपीडा की विशेषता ही दिखाते हैं। इसे श्रीवाड़ा (4, 540) के समय में जयपिदापुरा भी कहा जाता था और बाद में यह शाही निवास भी बना (जोनाराजा, पद 300–357)। प्रोफेसर बुहलर के शोधों के मुताबिक वहां विहार जैसे भवन मौजूद थे, जयदेवी, ब्राह्मण और केशव और जयदत्ता के लोकदेव को समर्पित मंदिर। ... इस तरह के संरचनाओं से संबंधित खंडहर अंडरकोट के द्वीप पठार पर फारा ग्रीटर संख्या में पाया जा सकता है। स्टीन ने 1896 में उस जगह का दौरा किया जो स्पष्ट रूप से सईद हबी बुल्लाह के बर्बाद जियारत की प्राचीन संरचना से लिया गया था और एक पुरानी इमारत की नींव में काजी हमम के नाम से जाना जाता है। पूर्ण विवरण के लिए स्टीन की राजतरंगिनी, खंड 4, फुटनोट 506–511 देखें।
31. वकत–ए–कश्मीर, पृ 657
32. तारीख–ए–कश्मीर ,हसन खुईहमी द्वारा, खंड दो, पृ. 169
33. तारीख–ए–कश्मीर, चाडोरा के मलिक हैदर। एमएस, स्टेट रिसर्च लाइब्रेरी एफ.34
34. तारीख–ए–कश्मीर, हसन खुमैनी पृ. 169
35. जोनाराजा, पद 305–306
36. वकत–ए–कश्मीर, यथा निर्दिष्ट पृ. 70
37. मध्ययुगीन कश्मीर में एक मुस्लिम मिशनरी, फारसी तोह्फतु–अल–अहबाब का काशीनाथ पंडित द्वारा अनुवाद, वॉयस ऑफ इंडिया, प्रथम नई दिल्ली, 2009 पृ. 171
38. मुस्लिम इतिहासकारों और लेखकों ने पूर्व इस्लामी (सन 216) ईरानी पैगंबर और मनीचियन धर्म के संस्थापक मनी के अनुयायियों को विभिन्न अपमानजनक बाते कहीं हैं। जांदीक जोरोस्टर की पुस्तक जांद से लिया गया है। रूढ़िवादी इस्लामवादियों ने मनी के अनुयाइयों को विभिन्न अपमानजनक शब्दों के साथ बुलाया है, इनमें जांडीक के अलावा मुलिद और बेडिन आदि शब्दों के द्वारा भी। उन्हें ऐसे व्यक्ति के रूप में स्थापित किया गया है जिनका भरोसा कयामत के बाद की जिन्दगी और भगवान में नहीं है। मुहम्मद मोइन संपादित बुरहान–ए–क्वेट देखें। दबिस्तानु–अल–मजाहिब में कश्मीर में अग्नि–पूजकों के बारे में बताया गया है। देखें तोह्फतु–अल–अहबाब, पृष्ठ 113, फुटनोट
39. बहारिस्तान, पृ. 34
40. तोह्फतु–अल–अहबाब, परिचय, पृ. 34
41. वही
42. जोनाराजा पृ.92
43. तोह्फतु–अल–अहबाब अनुवाद काशीनाथ पंडित दिल्ली, 2009, पृ. 114
44. 16वीं शताब्दी में शिया–सुन्नी कट्टरता पर आगे के अध्ययन के लिए देखें तोह्फतु–अल–अहबाब पृ. 114

# SECURING THE DIGNITY OF WOMEN
# HARYANA'S PRIORITY

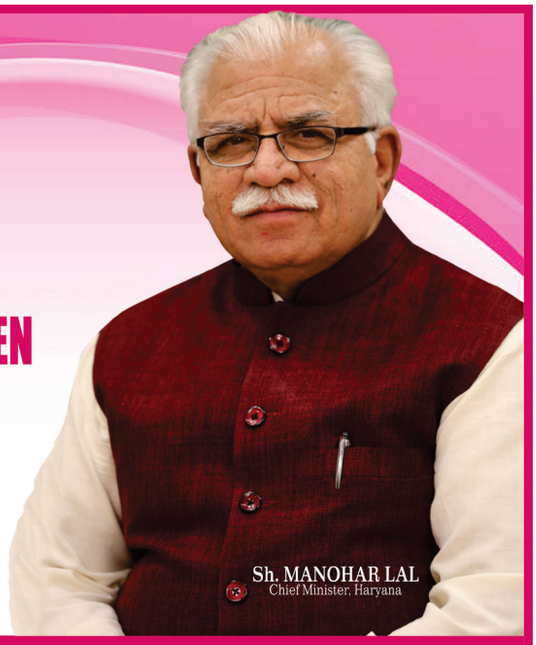

Khattar govt names Manushi brand ambassador for anaemia-free state

Kalpana Chawla

Mamta Sauda

Rani Rampal

Geeta Phogat

## EMPOWERED WOMEN EMPOWERED NATION

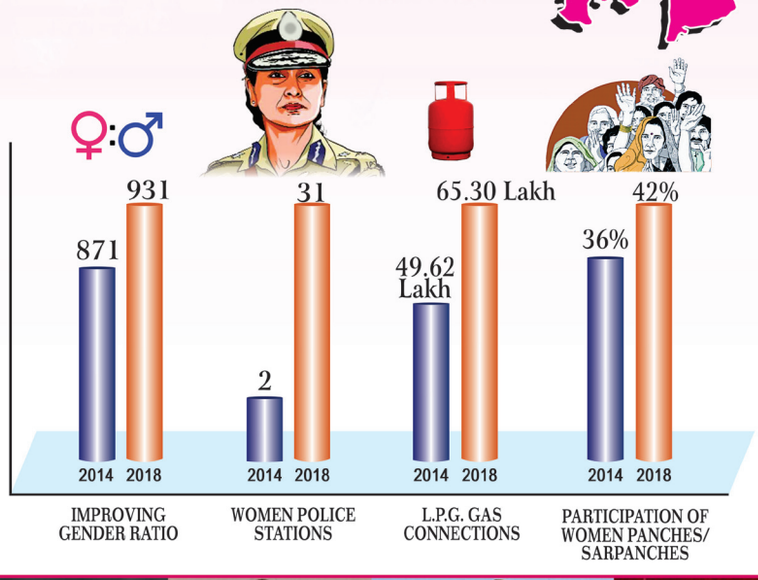

Sakshi Malik

Sandhya Chauhan

WOMEN POLICE

Manu Bhakar

INFORMATION, PUBLIC RELATIONS AND LANGUAGES, HARYANA

# Jagdambey Hydro Projects LLP
## Kuwarsi-II Shep 5.00 Mw in Chamba District of H.P Developing Clean Energy for Nation

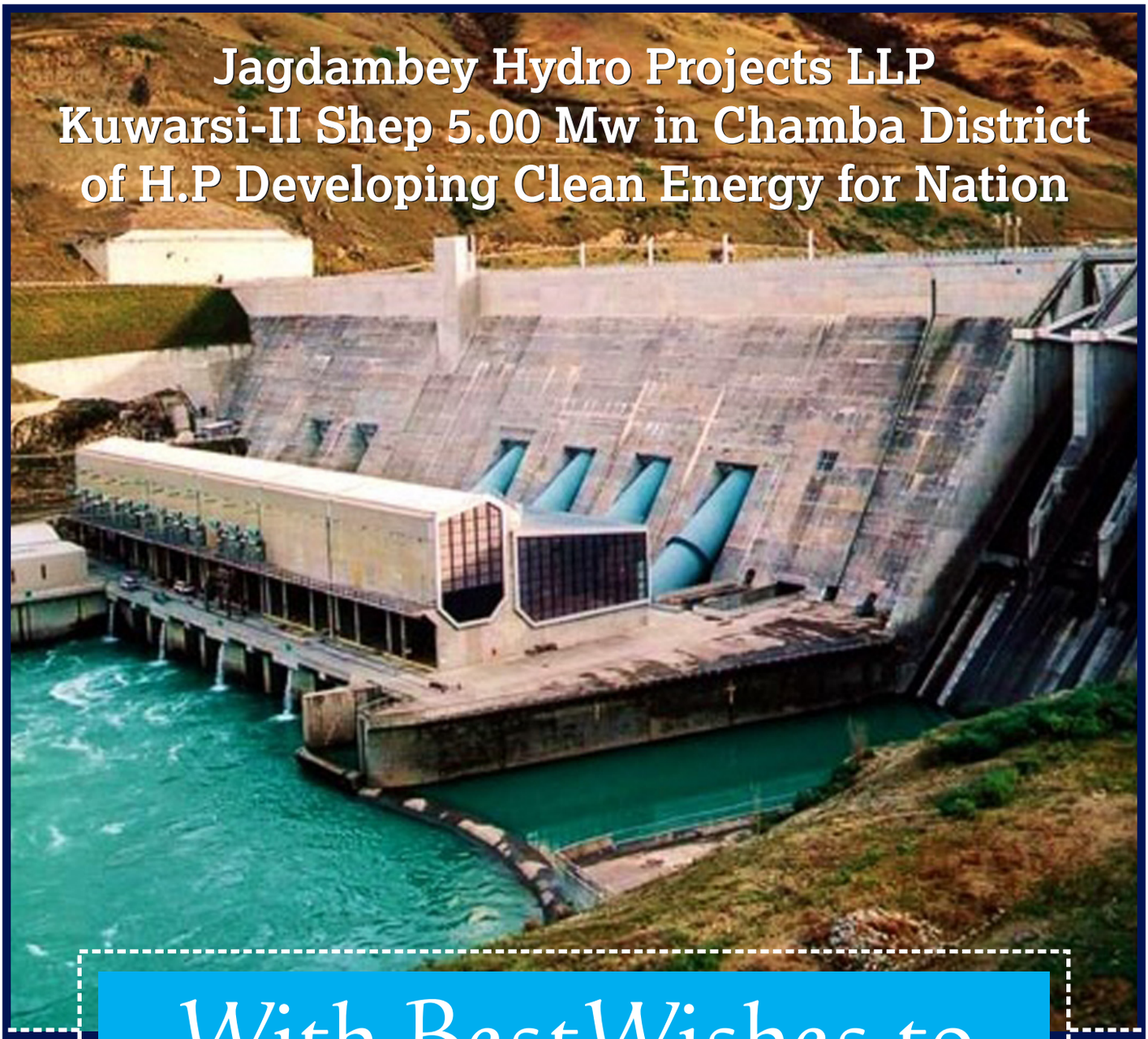

With BestWishes to
'MANTHAN'

**Jagdambey Hydro Projects LLP**

Village-Gugahn P.O Sach, Tehsil and District Chamba H.P

E-mail ID- jagdambeyhydroprojects@gmail.com

अश्वनी कुमार श्रुंगू

# कश्मीरियों का नृवंशीय जन-संहार

सन् 1341 में अंतिम हिंदू शासक कोटा रानी के पतन के पश्चात् प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति का दुर्ग कश्मीर सुल्तानों, मुगलों व पठानों के दासत्व तले लडखड़ाता रहा।[1] लूटमार, मंदिरों व सांस्कृतिक स्थानों का विनष्टीकरण, हिंदुओं का नरसंहार, धर्मांतरण और कश्मीर से इसके निवासियों का निष्कासन, यह सब विदेशी मुसलमान शासकों के 500 वर्ष लंबे शासनकाल का परिणाम था। इस बीच पंड़ित सिरया भट्ट तथा पंड़ित कृपा राम दत्ता के प्रयासों के कारण सामान्यतया लोगों को कुछ राहत प्राप्त हुई।

पंड़ित सिरया भट्ट (जिन्हें श्री भट्ट भी कहा जाता है) सुल्तान सिकंदर बुतशिकन व मूर्तिभंजक के पुत्र जैनुलाब्दीन को किसी प्रकार कश्मीरी पंड़ितों को कश्मीर में दोबारा पुनर्वासित करने के महत्व को समझाने में सफल हो गए जिन्हें उसके पिता के अत्याचारों के कारण कश्मीर से बलपूर्वक निष्कासित कर दिया गया था। जैनुलाब्दीन सहमत हो गया तथा इस प्रकार इस भूमि के मूल निवासियों को कुछ काल के लिए राहत प्राप्त हुई।[2] लोगों ने उसे 'बदशाह' (अच्छा राजा) कह कर पुकारा। कश्मीर घाटी में मुगलों ने भी वही किया जो उनके पूर्ववर्तियों ने किया था। औरंगज़ेब के शासन के दौरान कश्मीरी पंड़ितों के एक प्रतिनिधि दल, जिसका नेतृत्व पंड़ित कृपा राम दत्त कर रहे थे, ने तत्कालीन चक नानकी, आनंदपुर साहिब में श्री गुरु तेग बहादुर जी महाराज से भेंट की। उन्होंने अपना दुखड़ा सुनाया तथा उनके हस्तक्षेप की मांग की। इसके बाद जो कुछ हुआ वह इतिहास है जिसे चांदनी चौक, दिल्ली में गुरु जी महाराज व उनके शिष्यों के सर्वोच्च बलिदान द्वारा लिखा गया। इसके बाद एक बार फिर कश्मीर घाटी, कश्मीरी ब्राह्मणों तथा पूरे उत्तर भारतीय क्षेत्र को संक्षिप्त अवधि के लिए मुक्ति प्राप्त हुई।[3]

अंतिम रूप से यह पंडित बीरबल धर थे जिन्होंने 1819 ईसवी में पठानों के निरंकुश राज्यकाल के दौरान लाहौर राज्य से संपर्क किया तथा इतिहास की घटनाओं को एक महत्वपूर्ण मोड़ दिया। उन्होंने महाराजा रंजीत सिंह से प्रार्थना की तथा उन्हें तीव्र राजनैतिक–सैनिक कार्रवाई द्वारा जब्बार खान के शासन को समाप्त करने के लिए मना लिया। बीरबल धर ने कश्मीर के शासक जब्बार खान के विरुद्ध सिख सेनाओं का नेतृत्व किया तथा इसका परिणाम दक्षिण कश्मीर के शोपियां में जब्बार खान व उसकी सेनाओं की पराजय के रूप में हुई। इस प्रकार कश्मीर में सिख राज्य स्थापित हो गया, जिसके बाद जम्मू व कश्मीर राज्य में डोगरा राजाओं का 90 वर्ष लंबा शासन हुआ।[4]

महाराजा गुलाब सिंह, जो लाहौर राज्य के मुख्य सेनापतियों में से एक थे, ने 1846 में लाहौर राज्य के पतन के पश्चात् अंग्रेज़ों से एक संधि की। इसे "अमृतसर की संधि" कहा जाता है तथा इसके पहले अंग्रेज़ों तथा लाहौर राज्य के मध्य "लाहौर की संधि" हुई। "अमृतसर की संधि" के द्वारा जम्मू व कश्मीर राज्य के क्षेत्र डोगरा राजा महाराजा गुलाब सिंह के प्रत्यक्ष शासन के अधीन हो गए।[5] सिख तथा डोगरा शासन ने क्षेत्र में, विशेषरूप से कश्मीर घाटी में, शांति तथा सुरक्षा का वातावरण रचित किया जो मुस्लिम आक्रांताओं व आततायियों के 500 वर्ष लंबे उथल–पुथल भरे शासन के बाद अस्तित्व में आया। जनरल (सेनापति) ज़ोरावर सिंह की सक्रिय सहायता, सामरिक नीति व वीरता के कारण महाराजा गुलाब सिंह ने जम्मू व कश्मीर राज्य का गठन तथा विस्तार किया। महाराजा गुलाब सिंह के बाद महाराजा रणबीर सिंह तथा महाराजा प्रताप सिंह ने राज किया। लेकिन 1925 में राज्य की बागडोर संभालने के बाद यह महाराजा हरि सिंह के शासनकाल के दौरान ही

लूटमार, मंदिरों व सांस्कृतिक स्थानों का विनष्टीकरण, हिंदुओं का नरसंहार, धर्मांतरण और कश्मीर से इसके निवासियों का निष्कासन, यह सब विदेशी मुसलमान शासकों के 500 वर्ष लंबे शासनकाल का परिणाम था

था कि जम्मू व कश्मीर राज्य को आधुनिक रूप दिया गया तथा इस प्रकार रियासत ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में मुख्य भागीदार बनने की विशिष्टता प्राप्त की।

1930 में होने वाली गोल मेज़ सभा में महाराजा हरि सिंह ने भारत की स्वशासित रियासतों की संस्था का प्रतिनिधित्व किया जिसमें उन्होंने अंग्रेज़ों से स्वतंत्रता की मांग की।[6] इसके साथ ही डोगरा महाराजा के विरुद्ध अंग्रेज़ों ने षड्यंत्र रचा तथा इसके बाद उन्होंने राज्य के जाने–माने मुस्लिमों का प्रयोग डोगरा महाराजा तथा डोगरा शासन के विरुद्ध किया। जिन मुस्लिम छात्रों को महाराजा द्वारा अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी में राजकीय सहायता पर उच्च शिक्षा हेतु भेजा गया था, वे ही कश्मीर घाटी में महाराजा के विरुद्ध भावनाएं भड़काने में अग्रदूत बन गए। शेख मुहम्मद अब्दुल्ला उन मुख्य लोगों में से एक था जिन्होंने डोगरा शासन के विरुद्ध विद्रोह का झंड़ा बुलंद किया तथा आंदोलन संगठित किया। उसने श्रीनगर स्टड़ी सर्किल (श्रीनगर अध्ययन समूह) का गठन किया जिसने बाद में मुस्लिम कांफ्रेंस का रूप ले लिया। यह वही मुस्लिम कांफ्रेंस थी जिसने 1931 में महाराजा के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व किया तथा कश्मीर में हिंदू अल्पसंख्यकों के विरुद्ध घृणा पैदा की। इसके साथ ही कश्मीर घाटी में मुस्लिम मज़हबी कट्टरता तथा मुस्लिम अधिसंख्यकवाद के विचारों की नींव रखी गई जिसने बाद में सन् 1931 में कश्मीर घाटी में हिंदू अल्पसंख्यकों के विरुद्ध हुए नरसंहार के माध्यम से राजनैतिक रूप ले लिया। यहां यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि 1931 के उथल–पुथल वाले दौर का संक्षेप में वर्णन किया जाए जिसने उस सामाजिक–राजनैतिक परिदृश्य की नींव डाली जिसे हम आज सभी देख सकते हैं।[7]

कश्मीरी पंड़ित प्रत्येक वर्ष 13 जुलाई को 'काला दिवस' के रूप में मनाते आ रहे हैं। यह दिन ही था जब अल्पसंख्यक हिंदू समुदाय को कश्मीर में बीसवीं सदी के प्रथम नरसंहार के प्रथम प्रयास का शिकार बनना पड़ा था।[8] इस हिंसा में सम्मिलित होने वाले अनेक लोग थे जिनमें से कुछ चेतन रूप से, कुछ अवचेतन रूप से तथा कुछ बिना किसी चेतना के ही इसमें भाग ले रहे थे। इन सभी लोगों ने एक साथ काम तो नहीं किया लेकिन उन सभी की काईवाई एक ही दिशा में संचालित थी।

**लंदन में गोल मेज़ सभा के बाद अंग्रेज़ सरकार ने कश्मीर के महाराजा हरि सिंह की स्थिति को कमज़ोर करने का निश्चय किया। स्वशासित रियासतों के संगठन के प्रतिनिधि के रूप में गोल मेज़ सभा में महाराजा भारत में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध मज़बूती से खड़े हुए थे**

लंदन में गोल मेज़ सभा के बाद अंग्रेज़ सरकार ने कश्मीर के महाराजा हरि सिंह की स्थिति को कमज़ोर करने का निश्चय किया। स्वशासित रियासतों के संगठन के प्रतिनिधि के रूप में गोल मेज़ सभा में महाराजा भारत में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध मज़बूती से खड़े हुए थे। अंग्रेज़ों ने (पहले से ही अपने संपर्क में शामिल) अब्दुल कदीर नामक एक व्यक्ति को काम पर लगाया तथा उसे महाराजा के विरुद्ध मुस्लिम जनसंख्या को उकसाने का घृणित कार्य सौंपा। यह व्यक्ति राज्य का नागरिक नहीं था, वह पेशावर का रहने वाला था। इस व्यक्ति ने अनेक प्रकार से अपने कार्य को दुर्भावनापूर्ण रूप से अंजाम दिया।[9]

दूसरी ओर, मुस्लिम कांफ्रेंस, जो अब नेशनल कांफ्रेंस है, ने महाराजा के विरुद्ध अभियान चलाया तथा इस संबंध में वह अनेक प्रकार के षड्यंत्रों में शामिल हो गई। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य था कि महाराजा, जो एक हिंदू राजा था तथा जम्मू का रहने वाला था, इसलिए उसे कश्मीर छोड़ देना चाहिए।

इस समय घाटी में अन्य सांप्रदायिक ताकतें भी सक्रिय थीं जिन्होंने आरंभ से ही यह प्रचार किया था कि कश्मीरी पंड़ितों के कारण ही राज्य मुस्लिम शासन से वंचित हुआ था तथा इसलिए कभी न कभी उन्हें इसका परिणाम भुगतना ही होगा। क्योंकि कश्मीरी पंड़ित समुदाय हिंदू समाज से संबंधित था तथा महाराजा भी एक हिंदू था, इसलिए यह मान लिया गया कि कश्मीर में महाराजा के शासन की निरंतरता के लिए हिंदू समुदाय को उत्तरदायी ठहराया जाए।

आषाढ़ चतुर्दशी (माता श्री ज्वाला देवी जी का जन्मदिन) के दिन के लिए एक षड्यंत्र रचा गया जिसमें श्रीनगर में स्थित हिंदू घरों तथा संपत्तियों को जलाया जाना था। यह दिन 29 जुलाई, 1931 का था। इस दिन श्रीनगर के निवासी बड़ी संख्या में श्री ज्वाला जी के पवित्र मंदिर में जाते थे जो ख्रिव (अब पुलवामा ज़िला) में स्थित है। षड्यंत्रकारियों ने कश्मीरी पंड़ितों की अनुपस्थिति का लाभ उठाने का निश्चय किया तथा हार–चौदह (आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी) के दिन, जो उनकी इष्ट देवी का दिन था, उनकी संपत्ति जलाने का निश्चय

किया। इस दिन के आगमन से पहले ही यह षड्यंत्र खुल गया, लेकिन इस प्रकार निर्मित योजना षड्यंत्रकारियों तथा उनके समर्थकों के मस्तिष्क में स्थान बनाए रही।[10]

लगभग इसी समय, 12–13 जुलाई, 1931 को हारीपरबत, श्रीनगर में स्थित केंद्रीय कारागार में एक विद्रोह का निर्माण किया गया जिसे अब्दुल कदीर ने जेल के भीतर तथा बाहर समर्थन दिया तथा इसे उकसाया। मुस्लिम कांफ्रेंस के हज़ारों कार्यकर्ताओं तथा अन्य अनुयायियों ने जेल तोड़ दी। यह भीड़ मानो आपराधिक अराजकता के लिए पागल हो उठी।[11]

पहले से निर्मित योजना के अनुसार, इस उपद्रवी भीड़ ने सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक कार्यकर्ताओं के दिशानिर्देश व नेतृत्व में हिंदू संपत्तियों तथा घरों में लूटपाट की जो विचारनाग, महाराज गंज (व्यापारिक केंद्र), अमीराकदल, हरि सिंह हाई स्ट्रीट तथा बोहरीकदल आदि स्थानों में स्थित थे। कनिकूट गांव (अब बड़गाम ज़िला) में हिंदुओं को निर्दयतापूर्वक पीटा गया, उनकी संपत्तियों को लूट लिया गया तथा एक परिवार के सदस्यों को तीन–मंज़िला घर की खिड़कियों से बाहर फेंक दिया गया तथा बर्बरतापूर्वक मार दिया गया। घाटी में सभी वर्गों के हिंदू शंकित हो उठे, इस हिंसा ने उनका विश्वास डगमगा दिया क्योंकि यह तथ्य था कि वे किसी दंगे का शिकार नहीं हुए थे बल्कि यह एक–पक्षीय आक्रमण था जिसमें उनकी कोई गलती नहीं थी।

प्रोफेसर राम नाथ कौल, जो एक शिक्षाविद् तथा राजकीय डिग्री महाविद्यालय, बेमीना, श्रीनगर के सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य हैं, ने शेख मुहम्मद अब्दुल्ला पर अपनी पुस्तक में 13 जुलाई, 1931 की घटनाओं का वर्णन किया है। प्रोफेसर कौल ने नेशनल कांफ्रेंस तथा शेख अब्दुल्ला से नज़दीकी विकसित कर ली थी। उनकी पुस्तक जिसका शीर्षक 'शेख मुहम्मद अब्दुल्ला–ए पॉलिटिकल फीनिक्स' था, का प्रकाशन 1985 में हुआ तथा यह विश्वास किया जाता है कि इसकी पांडुलिपि को शेख द्वारा देखा गया था। इस घटना का वर्णन करते हुए वह कहते हैं कि जब कैदियों ने कारागार को भेदकर हिंसक भीड़ के साथ मिलकर हिंदू संपत्तियों को लूटा तथा जलाया तो उपस्थित पुलिस

बल (हालांकि संख्या में कम था) ने गोली चलाई। इससे भीड़ में कुछ लोग घायल हो गए थे। अपने घायल साथियों के साथ वे मुजाहिद–मंज़िल पहुंचे, जो मुस्लिम कांफ्रेंस का मुख्यालय था। उनका स्वागत शेख अब्दुल्ला ने किया था। उनमें से एक गंभीर रूप से घायल शेख की गोद में जा गिरा तथा बोला, 'शेख साहब, आपने हमें जैसा कहा था, हमने वैसा कर दिया है।' तथा इसके साथ ही वह शेख की गोद में मृत्यु को प्राप्त हो गया।[12]

समय व्यतीत होने के साथ, इन मृत दंगाइयों को कश्मीर के मुस्लिम राजनैतिक संगठनों द्वारा 'शहीद' का दर्जा दिया गया। इस दुर्भाग्यपूर्ण दिवस को कश्मीरी पंड़ित 'बटलूट' कहा करते थे। कुछ लोग शहीदी दिवस आयोजन को 'लूटस–वोरुस' कहते थे। एक इस प्रकार का नारा भी बनाया गया – 'हार चौदाह–बटन सीत दगाह'। ऐतिहासिक रूप से इस दिन को कश्मीरी हिंदुओं द्वारा शीतलनाथ–श्रीनगर में 'काला दिवस' के रूप में मनाया जाने लगा। पिछले 28 वर्षों से निर्वासन झेल रहे कश्मीरी पंड़ित इस दिवस को प्रत्येक वर्ष मनाते हैं तथा इस तथाकथित शहीद दिवस सिद्धांत को नकारते हैं तथा साथ ही इतिहास के तथ्यों के बारे में सत्य बोलने के लिए अपनी अगली पीढ़ी को अपनी विरासत हस्तांतरित भी करते हैं।

13 जुलाई को 'काला दिवस' का आयोजन कश्मीर तथा कश्मीरी पंड़ितों के बारे में अर्धसत्यों तथा निरे झूठों पर से पर्दा उठाने के लिए किया जाता है। यह इस तथ्य को भी सामने लाता है कि कश्मीर में हिंदुओं को जातीय रूप से समाप्त करने का ऐतिहासिक उद्देश्य हमेशा से रहा है क्योंकि वर्ष 1931 में न तो पाकिस्तान ही अस्तित्व में था, न ही उस समय कोई सुल्तान था, न ही कोई मुगल ही कश्मीर घाटी पर शासन कर रहा था। वास्तव में, यह दिन जम्मू व कश्मीर राज्य के सभी राष्ट्रवादी तथा धर्मनिरपेक्ष तत्वों के लिए काला दिन है। लद्दाख तथा जम्मू क्षेत्रों का शहीदी दिवस सिद्धांत से कुछ लेना–देना नहीं है। यह विचार उनसे अछूता है और आगे भी रहेगा।

सन् 1947 में जब भारत को आजादी प्राप्त हुई, राजाओं द्वारा शासित रियासतें भारतीय संघ में शामिल हो गईं। जम्मू व कश्मीर रियासत ने ऐसा करने से पहले अपना समय लिया जिसके पीछे अनेकों कारण थे, तथा इसके बजाय रियासत ने भारतीय संघ तथा पाकिस्तान राज्य के साथ 'स्टैंडस्टिल एग्रीमेंट' (यथास्थिति समझौता) लागू किया। लेकिन जम्मू व कश्मीर रियासत 26 अक्तूबर, 1947 को भारतीय संघ में शामिल हो गई जिसका कारण नवनिर्मित पाकिस्तान राज्य द्वारा सशस्त्र आक्रमण था। जम्मू व कश्मीर पर कब्ज़ा करने के उद्देश्य से पाकिस्तान ने पाकिस्तानी कबाइलियों के साथ जम्मू व कश्मीर पर आधिकारिक रूप से आक्रमण कर दिया जिसका सामना जम्मू व कश्मीर के शासकीय बलों ने किया। जम्मू व कश्मीर के महाराजा ने भारतीय संघ से मदद की गुहार लगाई, जिसने 26 अक्तूबर को विलय संधि पर हस्ताक्षर होने के बाद ऐसा किया। सशस्त्र टकराव कुछ महीनों तक चला तथा पाकिस्तानी बलों तथा कबाइली तत्वों को उनके द्वारा काबिज़ क्षेत्र के बड़े भाग से खदेड़ दिया गया, तथा 1 जनवरी, 1948 को भारत सरकार ने एकपक्षीय युद्ध विराम की आधिकारिक रूप से घोषणा कर दी तथा इसके साथ ही पाकिस्तानी आक्रमण के मामले को संयुक्त राष्ट्र में ले गया।[13]

**उनका स्वागत शेख अब्दुल्ला ने किया था। उनमें से एक गंभीर रूप से घायल शेख की गोद में जा गिरा तथा बोला, 'शेख साहब, आपने हमें जैसा कहा था, हमने वैसा कर दिया है'**

# सात पलायन

आज कश्मीर की मौजूदा जनसांख्यिकीय को देख कर यह विश्वास करना मुश्किल है कि कश्मीर की 100 प्रतिशत हिन्दू आबादी को लगभग 100 प्रतिशत मुसलमानों की आबादी में परिवर्तित होने में सिर्फ सत्तर साल लगे। जबकि सिंध से उत्तर–पश्चिम भारत तक इस्लाम आठवीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी के मध्य तक फैल गया था, यह कश्मीर को ज्यादा से ज्यादा 14 वीं शताब्दी के मध्य तक ही अपनी गिरफ्त में ला सकता था। यह तब की बात है जब स्वदेशी राजाओं की ताकत क्षीण हो रही थी और विदेशी मुस्लिम हमलावरों ने तलवार के बल पर धर्म परिवर्तन किया था।

पहला पलायन; सुल्तान सिकंदर (1389–1413 सीई): जो सिकंदर बुतशिकन के रूप में भी जाना जाता है, ने हिन्दुओं पर जो हमले किए उसे 17 वीं शताब्दी के फारसी इतिहास ''तारिक–ई–कश्मीर'' में सबसे बेहतरीन ढंग से लिखा गया है, उसमें कहा गया है कि ''सिकंदर लगातार हिन्दुओं का विनाश करने में व्यस्त था और उनके अधिकांश मंदिरों को नष्ट कर दिया ...''

दूसरा पलायन; सुल्तान अली शाह (1413–1420 सीई ): इस अवधि के दौरान हिंदुओं ने जिस दूभर जीवन को जिया उससे उन के खात्मे का दूसरा अध्याय शुरू होता , उसे अनेक इतिहासकारों ने लिखा है, इन इतिहासकारों में हसन, फौक और निजाम उद्दीन जैसे कुछ मुस्लिम इतिहासकार भी हैं।

तीसरा पलायन; मीर शमस उद्दीन अराकी (1477–1517 सीई ): ''बहारिस्तान–ए–शाही'' के अनुसार, ''हिन्दू देवी देवताओं की सभी मूर्तियों और मंदिरों को नष्ट कर के उनकी जगह पर मस्जिदें बना दी गईं और इस्लामी प्रतीकों द्वारा बदल दिया गया। कश्मीर के हिन्दुओं और पवित्र धागा यज्ञोपवीत पहनने वालों का धर्म परिवर्तन करवा कर मुसलमान बना दिया गया।''

चौथा पलायन; औरंगजेब की ओर से नियुक्त गवर्नर (1658–1707 सीई): पंडितों को इस्लाम में परिवर्तित करने के लिए विशिष्ट निर्देशों के साथ औरंगजेब ने चार गवर्नर्स ( दूत ) नियुक्त किए थे। इन गवर्नर्स ने अपने मिशन को पूरा करने के लिए कश्मीरी पंडितों के साथ क्रूरता पूर्ण व्यवहार किया, अगर गुरु तेग बहादुर हस्तक्षेप नहीं करते तो कोई कश्मीरी पंडित नहीं बचता।

पांचवां पलायन; मुल्ला अब्दुल नबी, उर्फ, मुहट खान (1720 सीई): ने एक मस्जिद में अपनी पद स्थापना के बाद अपने अनुयायियों को सैकड़ों पंडितों को अंग–भंग करने और हत्याएं करने के लिए उकसाया। नबी की ओर से खुले छोड़ दिए गए उनके निष्ठुतर अनुयाइयों ने कश्मीरी पंडितों की सम्पत्ति को लूट लिया और उन्हें अपमानित कर के उनके सम्मान को ठेस पहुंचाई।

छठवां पलायन; अफगान शासन (1753–1819 सीई ): 67 साल तक रहे अफगानी कब्जे के दौरान अफगानी बादशाह के आठ गवर्नरों ( दूतों ) ने कश्मीर पर शासन किया। अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि यह कश्मीर के इतिहास में सबसे काला अध्याय था। कश्मीरी समाज के कई वर्गों को इस काले अध्याय का सामना करना पड़ा और उन्होंने सबसे क्रूर परिस्थितियों को झेला।

सातवां हमला; (1989–90 सीई): पाकिस्तान प्रायोजित मुसलमानों ने 4,00,000 से अधिक कश्मीरी पंडितों को घाटी से पलायन करने को मजबूर किया। जिन्होंने कश्मीर में जिहाद के लिए गैर मुसलमानों को घाटी से चले जाने या मौत का सामना करने का फरमान जारी कर पलायन को मजबूर किया। सबसे विडंबना (वास्तव में, चौंकाने वाली) यह है कि यह घटना लोकतांत्रिक भारत में हुई, जिसका संविधान खुद को एक पंथनिरपेक्ष देश बताता है। ■

**–क. तिक्कू**

इसने संयुक्त राष्ट्र द्वारा पाकिस्तान को यह सलाह देने को कहा कि जिन क्षेत्रों पर पाकिस्तान ने सशस्त्र आक्रमण द्वारा अवैधरूप से कब्ज़ा कर लिया था, उन्हें वह खाली करे। पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र की सलाह को अनसुना कर दिया तथा इसके द्वारा काबिज़ क्षेत्र अभी भी इसके अधिकार में अवैधरूप से बने हुए हैं।[14]

मूलरूप से जम्मू व कश्मीर राज्य के 6 भौगोलिक क्षेत्र थे, जो इस प्रकार से हैं–जम्मू, कश्मीर, लद्दाख, बाल्टिस्तान, गिलगत, मुज़्ज़फराबाद, पुंछ, व मीरपुर का पंजाबी भाषाई क्षेत्र। वर्तमान में जम्मू व कश्मीर राज्य में लद्दाख, कश्मीर व जम्मू क्षेत्रों के अतिरिक्त पुंछ, मुज़्ज़फराबाद व गिलगत के कुछ भाग शामिल हैं। सांख्यिकी रूप से, राज्य का 38 प्रतिशत भाग पाकिस्तान के अवैध कब्ज़े में हैं, जबकि राज्य का 18 प्रतिशत भाग 1962 युद्ध के समय से चीन के अवैध अधिकार में है। चीन अधिकृत क्षेत्र में कराकुरम (कराकोरम) पर्वत क्षेत्र के वे क्षेत्र भी सम्मिलित हैं जो पाकिस्तान ने चीन को हस्तांतरित कर दिए हैं।

सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम में, 1949 में भारत की संविधान परिषद् में पंड़ित जवाहरलाल नेहरू ने जम्मू व कश्मीर राज्य को विशेष दर्जा देने का ज़ोर डाला, जो बाद में अनुच्छेद 370 बना जिसका शीर्षक 'अस्थायी प्रावधान' है। सन् 1954 में, अनुच्छेद 35 में एक भाग 35ए जोड़ा गया था (जो संसद की अनुमति के बगैर ही हुआ था) जिसमें जम्मू व कश्मीर राज्य को अलग राज्य नागरिक कानून दिया गया, जिसके कारण जम्मू व कश्मीर के नागरिकों के अतिरिक्त किसी अन्य भारतीय नागरिक को राज्य में कोई संपत्ति खरीदने का अधिकार नहीं है। कानून के कुछ अन्य प्रावधान भी मूल अधिकारों तथा मानव अधिकारों की भावना के अनुकूल नहीं हैं जिन्हें भारतीय

संविधान द्वारा प्रदत्त किया गया है।[15]

जम्मू व कश्मीर राज्य को फिर से गंभीर राजनैतिक उथल–पुथल का सामना पहली बार 1947 में करना पड़ा जब राज्य की बागडोर महाराजा हरि सिंह से शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को हस्तांतरित हुई। शेख अब्दुल्ला के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से अच्छे संबंध थे तथा उसने सुनिश्चित किया कि जम्मू व कश्मीर राज्य में डोगरा शासन के अंतिम बचे हुए चिह्न भी पूरी तरह से मिट जाएं, तथा वह इस योजना में सफल हुआ। पंड़ित प्रेम नाथ डोगरा के नेतृत्व में प्रजा परिषद् ने (1951–53) एक विशाल आंदोलन चलाया जिसमें 'एक निशान, एक विधान, एक प्रधान' की मांग की गई थी।[16] सन् 1953 में, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, जो उस समय के विरोधी दल के प्रमुख नेता तथा अखिल भारतीय जनसंघ के संस्थापक थे, ने आंदोलन को समर्थन दिया तथा राज्य में प्रवेश करते समय लखनपुर में राज्य के परमिट कानून को भंग किया। उन्हें राज्य पुलिस द्वारा बंदी बना लिया गया तथा कश्मीर में हाउस अरेस्ट रखा गया जहां रहस्यमयी परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गई। इसके उपरान्त शेख को कानूनी कार्यवाही का सामना करना पड़ा, तथा उसकी कुछ विदेशी ताकतों से संपर्क होने के कारण उस पर 'कश्मीर षड्यंत्र केस' चलाया गया तथा उसे मुख्यमंत्रित्व से वंचित कर बंदी बना लिया गया। उसकी राजनैतिक अति उच्च आकांक्षा तथा राष्ट्र–विरोधी स्थिति के कारण उसे 1953 में कारागार में डाल दिया गया तथा राज्य की बागड़ोर बक्शी गुलाम मुहम्मद के पास चली गई जो राज्य प्रमुख बने।

शेख अब्दुल्ला ने 1931 से ही मुस्लिम अलगाववाद के बीज कश्मीर की राजनीति में बोए थे जो मुस्लिम बहुलता की विस्तृत योजना का अंग था। जब सन् 1975 में वह दोबारा सत्ता में आया, तो उसने उसी नीति का अनुसरण किया तथा मुस्लिम अधिसंख्यकवाद को आधिकारिक समर्थन दिया। हिंदू अल्पसंख्यकों को लताड़ा गया तथा उन्हें सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक संकुचन व राजनैतिक गौणता का शिकार बनाया गया। उसके सत्ता में रहते समय इस्लामिक कट्टरपंथी ताकतों ने कश्मीर घाटी में नियंत्रण प्राप्त कर लिया तथा जम्मू व लद्दाख क्षेत्रों को पक्षपात की नीति का सामना करना पड़ा। कश्मीरी पंड़ित समुदाय राज्य की इस नीति का सर्वाधिक शिकार बना, तथा घावों में नमक डालने के समान, राजकीय प्रशासन में कट्टरवादी तत्वों ने अपनी जड़ें फैलाईं। शेख की मृत्यु के बाद, उसके पुत्र फारूख अब्दुल्ला ने सरकार की बागड़ोर अपने हाथों में ली तथा उसने अपने पिता की नीतियों का पूरी ताकत से पालन किया।[17]

**स्वतंत्र तथा आज़ाद भारत में, इस भाग्यहीन शांतिप्रिय समुदाय को बंदूकधारी आतंकवादियों तथा कट्टरवादियों के गठजोड़ ने अपने ऐतिहासिक निवास से सड़कों पर ला दिया। आज भी वे अपने ही देश में शरणार्थियों के रूप में रह रहे हैं।**

1965 तथा 1971 के युद्धों में भारत से बुरी तरह परास्त होने वाले पाकिस्तान ने इस पराजय का बदला लेने का निश्चय किया तथा पंजाब व कश्मीर में आतंकवाद को प्रोत्साहन देने का कार्य किया। पंजाब में सरकार की स्पष्ट नीति के कारण आतंकवाद का सफाया हो गया, लेकिन जम्मू व कश्मीर राज्य में, आधिकारिक कार्रवाई तथा नीतियां अधिकांशतया मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति पर आधारित रहीं। फरवरी 1986 में मुस्लिम कट्टरवादी ताकतों ने कश्मीर के मंदिरों पर बड़े स्तर पर हमला किया तथा कम से कम एक सौ मंदिरों को जला डाला गया, तोड़ डाला गया या बर्बाद कर दिया गया, तथा यह कार्य पूरी कश्मीर घाटी में हुआ जिसका मुख्य केंद्र अनंतनाग रहा जो दक्षिण कश्मीर में स्थित है।

जेकेएलएफ, हिज़बुल्ला, हिज़बुल मुजाहिदीन जैसे आतंकवादी संगठनों ने कश्मीर में कश्मीरी पंड़ित समुदाय को निशाना बनाया तथा उनके घरों तथा मंदिरों को नष्ट कर दिया। उन्होंने इस छोटे अल्पसंख्यक समुदाय के सामुदायिक नेताओं तथा मुख्य कार्यकर्ताओं की विशेष रूप से हत्या की तथा इस प्रकार उन्होंने गुपचुप ढंग से जातीय सफाई का अभियान चलाया। जातीय नरसंहार का प्रयोग उन्हें कश्मीर से निष्कासित करने के लिए किया गया तथा इसके कारण इस समुदाय के सदस्य अपने ही देश में सन् 1989–90 से शरणार्थियों के रूप में रहने के लिए मजबूर हुए। उनमें से सैंकड़ों की हत्या कर दी गई, उनके हज़ारों मकानों को जला डाला गया, उनके सैंकड़ों पूजा स्थलों को नष्ट कर दिया गया तथा उनकी संपत्तियों को इस्लामिक कट्टरवादियों,आतंकवादियोंवअलगाववादियों के गठजोड़ द्वारा लूट लिया गया। कश्मीरी पंड़ितों के समुदाय ने पहले भी मृत्यु तथा विनाश लीला का अनुभव किया था, लेकिन वह सुल्तानों, मुगलों व पठानों के शासनकाल के दौरान हुआ था। स्वतंत्र तथा आज़ाद भारत में, इस भाग्यहीन शांतिप्रिय समुदाय को बंदूकधारी आतंकवादियों तथा कट्टरवादियों के गठजोड़ ने अपने ऐतिहासिक निवास से सड़कों पर ला दिया। आज भी वे अपने ही देश में शरणार्थियों के रूप में रह रहे हैं।

इस्लामिक कट्टरवादी–राजनैतिक–आतंकवादी गठजोड़ ने 'आज़ादी' के लिए आवाज़ उठाई जिसे वे कश्मीर में निज़ाम–मुस्तफा की स्थापना कहकर वर्णित कर रहे हैं। वास्तव में, 'आज़ादी' हमेशा से एक बाहरी आवरण रहा है तथा मृत्यु, विनाश तथा नरसंहार के पीछे वास्तविक उद्देश्य कश्मीर को एक मज़हबी इस्लामिक राज्य घोषित करना रहा है। कश्मीरी पंड़ितों, जो इस घाटी के मूल निवासी हैं, को निजाम–मुस्तफा और आज़ादी को प्राप्त करने में मुख्य रोड़ा माना गया था। हमेशा की तरह उन्हें तीन विकल्प दिए गए थे –रलिव या धर्मांतरण करो, गलिव या मारे जाओ और च़लिव या चले जाओ।[18] कश्मीरी पंड़ितों को वहां से चले जाने का मार्ग एक पूर्व–प्रायोजित षड्यंत्र के तहत मुस्लिम बहुसंख्यक समुदाय द्वारा सुझाया गया था। इस योजना को मूर्त रूप आतंकवादियों तथा उनके समर्थकों द्वारा विशिष्टरूप से दिया गया।

पंड़ितों के बारे में भारत के राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने घोषणा की है कि 'उनके विरुद्ध नरसंहार के समकक्ष कार्यों को अंजाम दिया गया है तथा उनके विरुद्ध जातीय संहार प्रकार की योजना अस्तित्व में हो सकती है, तथा उन्हें सही प्रकार की समझ तथा राहत प्रदान नहीं की गई है।'[19]

यहां यह कहना महत्वपूर्ण है कि पिछली शताब्दी के अंतिम दशक के आरंभ में आतंकवादी समूहों ने जम्मू क्षेत्र में भी अपने पैर पसारे थे। आतंकवाद तथा कट्टरवाद से संबंधित इन गतिविधियों का केंद्र डोडा, राजौरी व पुंछ के मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्र रहे हैं। ऊधमपुर के मुस्लिम–प्रधान क्षेत्रों में प्रतिशोध की भावना से हमले किए गए हैं। राज्य के इन क्षेत्रों में हिंदू जनसंख्या को लक्ष्य बनाकर हत्याएं की गई हैं। लेकिन, इन क्षेत्रों में सुरक्षा बलों द्वारा बेहतर सामरिक योजना द्वारा स्थिति को नियंत्रण में लाया गया है जिसके लिए भारत सरकार ने उपयुक्त इच्छा–शक्ति का प्रदर्शन किया है।

राज्य सरकार की कश्मीर–केंद्रित नीतियों का खामियाज़ा जम्मू व लद्दाख क्षेत्रों को बुरी तरह से उठाना पड़ा है तथा जम्मू व कश्मीर में कश्मीरी मुस्लिम नेतृत्व के विरुद्ध विशाल अविश्वास का माहौल है। कश्मीरी पंड़ितों का समुदाय, लद्दाख के लोग तथा जम्मू के लोग तथा कश्मीर घाटी में एक वर्ग इस तीन दशकों से चले आ रहे मौत तथा विनाश के तांड़व से तंग आ चुके हैं। वे कश्मीर–केंद्रित राजनैतिक दलों के अधिनायकवादी राजनैतिक नियंत्रण के पक्ष में नहीं हैं तथा वे इस तंत्र में बराबरी के भागीदार बनने के इच्छुक हैं। भारत सरकार को संसद में सर्वसम्मति से पारित जम्मू व कश्मीर पर प्रस्ताव का विशाल समर्थन प्राप्त है जिसे 1994 में पारित किया गया था जिसके अंतर्गत पाकिस्तान द्वारा अवैध रूप से अधिकृत क्षेत्रों को स्वतंत्र कराने की सहमति है। साथ ही, इसके पास आतंकवाद को समाप्त करने के लिए प्रभावी कदम उठाने का समर्थन भी राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय प्रस्तावों तथा उत्तरदायित्वों से प्राप्त है। सरकार का यह कर्तव्य है कि यह आतंकवादी तत्वों का खात्मा कर राज्य में शांति को बहाल करे तथा राज्य की निर्वासित जनसंख्या को पुनर्वास प्रदान करे, जिनमें मुख्यरूप से कश्मीरी पंड़ित हैं जिन्हें उनकी भौगोलिक–राजनैतिक आकांक्षाओं के अनुसार कश्मीर घाटी में बसाया जाए।

पंडित समुदाय की भौगोलिक–राजनैतिक आकांक्षा का सर्वोच्च महत्व है क्योंकि कश्मीर की भूमि पर वह प्रथम तथा मूल भागीदार हैं।[20] उन्हें उनकी परिस्थिति के अनुसार पुनर्वासित करना एक विशालतम चुनौती है, जिसके साथ आतंकवाद को समाप्त करना तथा लद्दाख व जम्मू क्षेत्रों की कठिनाइयों के निवारण हेतु मूर्त योजना बनाना शामिल है। जहां तक कश्मीरी पंडित समुदाय के बलपूर्वक निर्वासन का संबंध है, निम्नलिखित चार महत्वपूर्ण बिंदुओं को सामने लाने की आवश्यकता है :

कश्मीरी पंड़ित समुदाय प्रत्येक वर्ष 19 जनवरी को 'निष्कासन दिवस' या 'होलोकास्ट डे' के रूप में मनाता है। इस दिवस का महत्व सन् 1991 से बढ़ गया है जब इस निष्कासित समुदाय ने इस दिन का आयोजन करने का निश्चय किया ताकि विश्व को 19 जनवरी 1990 में हुई घटनाओं के बारे में याद दिलाया जा सके जिसमें कट्टरवादी–आतंकवादी गठजोड़ ने कश्मीर से अल्पसंख्यक हिंदुओं को कश्मीर छोड़ने या मौत का सामना करने का निर्देश दिया था। विस्थापित समुदाय द्वारा इस दिवस को अपनी पीढ़ियों को यह संदेश देने के लिए भी मनाया जाता है ताकि वे कश्मीर में उस समय दोबारा पुनर्वासित हो पाएं जब उनकी भौगोलिक–राजनैतिक आकांक्षाएं पूरी हों। इस वर्ष इस दिवस को देश–विदेश में विभिन्न स्थानों पर इस समुदाय द्वारा गंभीरतापूर्वक तथा उत्साह से मनाया गया तथा समुदाय ने उद्देश्य–केंद्रित रहने तथा अपने वांछित स्वप्न को पूरा करने का वचन लिया।[21]

दूसरा, 19 जनवरी, 2017, निष्कासन दिवस पर, जम्मू व कश्मीर विधान सभा ने एक प्रस्ताव पारित किया है जिसमें कश्मीर से पंडित समुदाय के विस्थापन के प्रति चिंता व्यक्त की गई है तथा इस समुदाय को कश्मीर में पुनः बसाने का संकल्प भी व्यक्त किया गया है।[22]

तीसरा, 19 जनवरी, 2018 (निष्कासन दिवस) को जामिया मस्जिद में कश्मीर के मीरवाइज़ ने अपने शुक्रवार प्रार्थना भाषण में कश्मीरी पंडितों के निर्वासन का विस्तारपूर्वक संदर्भ दिया है। उन्होंने अपने अनुयायियों को कहा कि वह पंड़ितों से प्रार्थना करेंगे कि वे वापस आएं तथा घाटी में पहले की तरह रहें। यह एक स्पष्ट स्वीकृति है (हालांकि यह मुस्लिम समुदाय पर थोपी गई है) कि कश्मीर की परिस्थितियों में कश्मीरी पंड़ित एक महत्वपूर्ण कारक हैं तथा उन्हें केवल इसलिए नहीं भुलाया जा सकता है क्योंकि वे इस समय निष्कासित हैं और निर्वासन का जीवन जी रहे हैं।[23]

अंत में, कश्मीर घाटी के वरिष्ठतम पत्रकार व श्रीनगर टाइम्स अखबार व कश्मीर विश्लेषक, गुलाम मुहम्मद सोफी ने इस वर्ष 'निष्कासन दिवस' के अवसर पर एक साक्षात्कार में सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया है कि पंड़ितों का नरसंहार एक पूर्व–नियोजित षड्यंत्र के तहत किया गया था। उन्होंने ज़ोर डालकर इस सिद्धांत को नकार दिया कि जगमोहन का इस बड़ी संख्या में हुए निष्कासन में कोई हाथ था।[24]

ये सभी चार बिंदु वास्तव में लाक्षणिक हैं लेकिन वे इस बात को अव्यक्त रूप से स्वीकार करते हैं कि जम्मू व कश्मीर राज्य के भौगोलिक–सामाजिक–राजनैतिक परिदृश्य में कश्मीरी पंडितों का मामला एक महत्वपूर्ण कारक है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी कश्मीर एक महत्वपूर्ण मुद्दा बना हुआ है, इसलिए कश्मीरी पंडितों, जो कश्मीर के मूल निवासी हैं, के निर्वासन तथा पुनर्वास के मुद्दे भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। इस संदर्भ में भी ये मुद्दे महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व तथा संधियों

**पंडित समुदाय की भौगोलिक-राजनैतिक आकांक्षा का सर्वोच्च महत्व है क्योंकि कश्मीर की भूमि पर वह प्रथम तथा मूल भागीदार हैं। उन्हें उनकी परिस्थिति के अनुसार पुनर्वासित करना एक विशालतम चुनौती है**

के अनुसार, आतंकवाद के खतरे से पीड़ित सभी क्षेत्रों को मुक्त करवाने के प्रयास हों जिससे इन पीड़ित क्षेत्रों से आंतरिक रूप से विस्थापित लोगों का पुनर्वास हो सके। वांछित योजना को कार्यान्वित करते समय 'रिफाउलमेंट के सिद्धांत' को भी उपयुक्त प्रकार से देखना आवश्यक है।[25]

कश्मीर प्राचीन सभ्यता तथा समृद्ध सांस्कृतिक प्रथाओं का वाहक है। इसे राष्ट्र के ध्यान की आवश्यकता है। नवीन वर्णन तथा अभिव्यक्ति में सकारात्मकता निहित है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि इसने कश्मीर पर पुरानी तथा सड़ी हुई सोच का स्थानापन्न कर दिया है। हम आशा करते हैं कि राज्य व सरकार पर बेहतर विचार अपना प्रभुत्व बनाएंगे ताकि तुरंत व सुधारात्मक कदम उठाए जाएं तथा सुरक्षा बलों को मुक्त हस्त से कानून–व्यवस्था बनाने रखने की शक्ति प्रदान की जाए जिसके द्वारा जम्मू व कश्मीर राज्य में वास्तविक अंशधारकों के साथ अर्थपूर्ण वार्ता की प्रक्रिया चालू हो सके। किसी भी प्रकार से, राष्ट्र अर्थात भारत की एकता, अखंड़ता, सार्वभौमिकता तथा बहुतत्ववाद से संबंधित किसी भी मामले पर भारत सरकार समझौता करने के लिए अधिकृत नहीं है।

पिछले हज़ारों वर्षों से जम्मू व कश्मीर राज्य भारत का अंग है तथा भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा। इतिहास हमें पिछली भूलों से सीखना सिखाता है तथा जीवंत राष्ट्र के रूप में इन भूलों को दोहराने की अपेक्षा नहीं की जाती है। कश्मीर में भारतमाता की पुनर्स्थापना तब ही संभव हो पाएगी जब कश्मीरी पंड़ितों का अल्पसंख्यक समुदाय (जो कश्मीर के मूल निवासी हैं और जिन्होंने हर सूरत में धर्मान्तरण का विरोध ही नहीं किया परन्तु उसके लिए कई प्रकार के कष्ट सहे) अपने गृह राज्य कश्मीर में अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप पुनर्वासित हो जाए। सच्चे अर्थों में बिना कश्मीरी पंड़ितों के कश्मीर अपूर्ण ही है तथा कश्मीर में भारत को गंभीर खतरे का सामना करना पड़ेगा यदि हम इससे बिना चिंतित हुए रहते हैं। आतंकवाद तथा उग्रवाद जनतंत्र, सामाजिक समरसता, वर्तमान पीढ़ियों के भविष्य तथा राष्ट्र की एकता तथा अखंड़ता के प्रति सर्वाधिक बड़े खतरे हैं। आंतकवाद को समूल नष्ट करना ही केवल एक ऐसा उचित माध्यम है जिसके द्वारा पूरे क्षेत्र में शांति व सामान्य स्थिति स्थापित हो सकती है जिससे राष्ट्र को ऐसा कश्मीर प्राप्त होगा जिसमें कश्मीरी पंड़ित राष्ट्र के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्थापित होंगे और जिसका सुख भविष्य की पीढ़ियां भोगेंगी।...■

*संपर्क - 9419141214*
*ashwanikc2012@gmail.com*

**संदर्भ संकेत**

1. दि कश्मीरी पण्ड़ित – प० आनन्द कौल–1924
2. राजतंरगिणी (2) – जोनराजः
3. गूरु खालसा तवारीख – भाई ज्ञान सिंह ज्ञानी और सूरज प्रकाश –भाई संतोष सिंह ज्ञानी
4. दि हिस्ट्री आफ कश्मीरी पण्ड़ित – न्यायविद जियालाल किलम
5. ट्रीटी आफ लाहौर–1846ः इसमें लाहौर राज्य द्वारा अंग्रेज़ों को 'तावाने–जंग' की राशि (क्षतिपूर्ति) का खुलासा हुआ है।
6. माई फ्रोज़न टरबुलन्स इन कश्मीर –जगमोहन
7. कश्मीर डाक्यूमेन्टेशनः पण्ड़ितस इन एक्ज़ाईल
8. दि ए.एस.के.पी.सी. डाक्यूमेन्टस–मार्तण्ड़ साप्ताहिक में प्रकाशित
9. मीड़िया सेन्टर – पनुन कश्मीर वेबसाईट
10. मीड़िया सेन्टर – पनुन कश्मीर वेबसाईट
11. शेख मोहम्मद अब्दुल्लाः ए पोलिटिकल फिनिक्स – प्रो० आर. एन. कौल
12. शेख मोहम्मद अब्दुल्लाः ए पोलिटिकल फिनिक्स – प्रो० आर. एन. कौल
13. माई फ्रोज़न टरबुलन्स इन कश्मीर –जगमोहन
14. कश्मीर पर संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव–1948
15. उच्चतम न्यायालय में धारा 35। की समाप्ति के विषय में वाद
16. प्रजा परिषद् के विषय में भाजपा राज्य (श्र–ज्ञ) कार्यालय में संग्रहीत दस्तावेज़।
17. पनुन कश्मीर द्वारा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग को प्रस्तुत दस्तावेज़ः रिर्पोट आन बैनिशमेंट आफ कश्मीरी पण्ड़ितस
18. राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग को कश्मीरी पण्ड़ित समुदाय द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट (कश्मीर में मानवधिकार उल्लंघन) 1994
19. राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग का 1999 का निर्णय जो कि कश्मीरी पण्ड़ित समुदाय के मानवाधिकार उल्लंघन के केस के विषय में दिया गया है। इस केस को राजनीति तथा कानून–विधि के पाठ्यक्रम में 'जीनोसाईड़ कन्वेन्शन' के संदर्भ में जोड़ दिया गया है।
20. मार्गदर्शन कन्वेन्शन 1991 में पारित प्रस्ताव
21. ड़ेली ऐक्सेलसियर 20 जनवरी 2018
22. जम्मू कश्मीर विधानसभा द्वारा पारित प्रस्तावः विधानसभा दस्तावेज़
23. 19–20 जनवरी 2018 (शुक्रवार) नमाज़ के बाद का भाषणः जिसे मीड़िया ने लोगों के सामने रखा।
24. जम्मू–कश्मीर में विभिन्न वेब–साईटस पर प्रकाशित साक्षात्कार।
25. 'प्रिन्सिपल आफ रिफाउलमेन्ट' संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद् का वह दस्तावेज़ है जिसके अर्न्तगत निष्कासित लोग फिर उसी स्थान पर नहीं भेजे जा सकते हैं जहां पर वह कारण अभी भी मौजूद हों जिनकी वजह से निष्कासन हुआ था।

# कश्मीर का इस्लाम पर प्रभाव

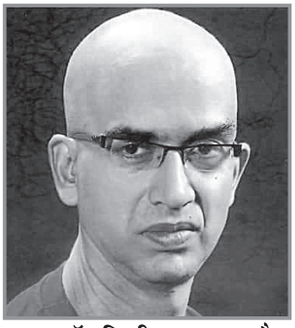

डॉ. दिलीप कुमार कौल

कट्टरतावादी आतंकवाद के इतने बरसों बाद भी आज भी कश्मीरी मुसलमान विस्थापित कश्मीरी पंडित आध्यात्मिक गुरुओं के पास सपरिवार आते हैं। मैंने ऐसे कई परिवारों को कश्मीरी पंडित आध्यात्मिक गुरुओं के पास रहकर उनकी सेवा करते और पैर पकड़कर रोते देखा है। किताबों में लिखे और मौलानाओं के बताए इस्लाम से विचलन कश्मीर में आरंभ से से ही मिलता रहा है।

कोई भी समाज अपने आप में एक व्यवस्था होता है जिसके भीतर कई व्यवस्थाएं कार्य करती हैं। ये सारी व्यवस्थाएं एक दूसरे के साथ लोगों की अंतःक्रिया के आधार पर चलती हैं। इसी अंतःक्रिया के आधार पर मनुष्य वर्तमान या भविष्य में किसी स्थान में निवास करने की संभावनाओं का आकलन करता है। परन्तु जब स्थान के बाहर से आकर किसी अन्य स्थान का निवासी समुदाय आक्रमण करता है तो उसे भी विजित स्थान के निवासियों के साथ अंतःक्रिया करनी ही पड़ती है। इस अंतःक्रिया से हर स्तर पर परिवर्तन होता है, चाहे वह भाषा हो, धर्म हो, खान–पान हो या विचार धारा हो। इस्लाम भी इन स्थितियों से मुक्त नहीं रहा है। विशेषकर कश्मीर में उसे कई ऐसे बदलाव देखने पड़े हैं जिससे किताबों में बताया गया उसका स्वरूप तो बदल ही गया, उसके नये और पुराने अनुयायियों ने मुसलमान होने के नये आयाम संसार के सामने रखे जिनमें असीम सहिष्णुता का आयाम प्रमुख था। यद्यपि समय– समय पर अनेक मुस्लिम शासकों ने इस्लाम को परंपरागत किताबी सांचे में ढालने की कोशिश की और सफल भी रहे। परंतु कुल मिलाकर यह घटनाक्रम इस सत्य को सामने रखता है कि कोई भी विचार अपने स्रोत स्थान से अन्य स्थानों में फैले तो उसे परिवर्तन देखने ही पड़ते हैं। धार्मिक विचार के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो धर्म की सनातनता एक ऐसा सत्य है जिसमें स्थान की निरपेक्षता बनी रहती है और मनुष्य संसार में कहीं भी हो धर्म की सनातनता को नकार कर शांति से नहीं जी सकता।

कश्मीर के मुसलमान सुल्तान भी स्थानीय परंपराओं और विश्वासों के प्रभाव से अछूते नहीं रहे। कहा जाता है कि योगी बड़े चमत्कारी होते हैं और ऐसी शक्तियां रखते हैं कि उनसे कुछ भी संभव हो सकता है। यह एक सामान्य हिन्दू विश्वास है और कश्मीर ही नहीं देश के अन्य स्थानों पर भी मुसलमानों का ऐसा विश्वास है। कश्मीर के संदर्भ में यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि कट्टरतावादी आतंकवाद के इतने बरसों बाद भी आज भी कश्मीरी मुसलमान विस्थापित कश्मीरी पंडित आध्यात्मिक गुरुओं के पास सपरिवार आते हैं। मैंने ऐसे कई परिवारों को कश्मीरी पंडित आध्यात्मिक गुरुओं के पास रहकर उनकी सेवा करते और पैर पकड़कर रोते देखा है। किताबों में लिखे और मौलानाओं के बताए इस्लाम से विचलन कश्मीर में आरंभ से से ही मिलता रहा है। चौदहवीं शताब्दी के सुल्तान कुतुबुद्दीन को पूरा विश्वास था कि उसका पुत्र सिकन्दर योगी ब्रह्मनाथ की कृपा से हुआ है। जोनराज अपनी राजतरंगिणी में लिखते हैं:

योगिनो ब्रह्मनाथस्यकश्मीरानागतस्यसः।
प्रसादेन महीपालः सन्ततिं प्राप्तवांश्चिरात।।531

अर्थात कश्मीर आये हुये योगी ब्रह्मनाथ के प्रसाद से महीपाल ने चिरात् सन्तति को प्राप्त किया। किसी मनुष्य के अनुग्रह से कुछ मिलना इस्लामी विचारधारा के बिलकुल विपरीत है। जो कुछ देता है अल्लाह ही देता है। लेकिन सुल्तान कुतुबुद्दीन मुसलमान होने के बावजूद स्थानीय हिन्दुओं की तरह योगियों की शक्ति पर विश्वास प्रकट करता है।

सत्रहवीं शताब्दी में कश्मीर में बादशाह शाहजहां के कुर्द गवर्नर को तो सपने में भगवान शिव के दर्शन हुये थे जिसके विषय में लिखी उसकी प्रसिद्ध कविता स्पष्ट रूप से इस्लाम के सार तत्त्व के

# बेटियों की शान
# हरियाणा की पहचान

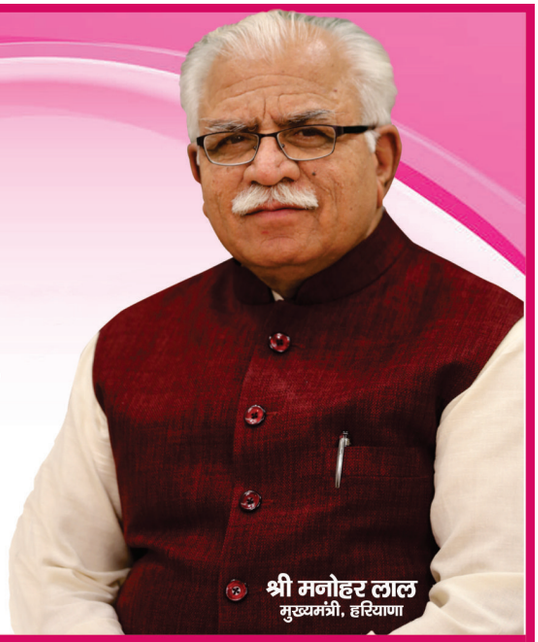

## सशक्त नारी
## सशक्त समाज

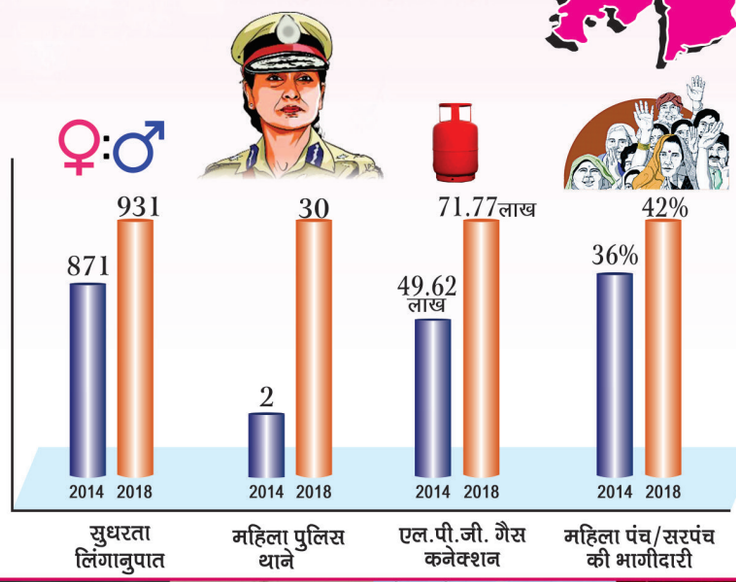

सूचना, जन सम्पर्क एवं भाषा विभाग, हरियाणा

''पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विषय में जानकारियाँ बहुत ही सीमित हैं। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने इस विषय पर गवेषणात्मक अध्ययन किया है। इस शोध-ग्रंथ का प्रकाशन न केवल जनसंघ की राजनीति व विचारधारा के प्रति लोगों को लाभदायक जानकारियाँ देगा वरन् राजनीति शास्त्र की वैचारिक बहस को भी आगे बढ़ाएगा। दीनदयाल उपाध्याय व भारतीय जनसंघ को समझने के लिए यह शोध-ग्रंथ प्रामाणिक आधारभूमि प्रदान करता है।''

**—डॉ. इकबाल नारायण**

पूर्व कुलपति-राजस्थान विश्वविद्यालय,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा नॉर्थ-ईस्ट हिल्ज यूनिवर्सिटी,
पूर्व सदस्य-सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्

''यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।''

**—डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी**

## पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तकें

**प्रभात प्रकाशन**
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com

ISBN 978-93-5186-262-8
₹ 500/-

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार
डॉ. महेशचंद्र शर्मा

# पं. दीनदयाल उपाध्याय
## कर्तृत्व एवं विचार

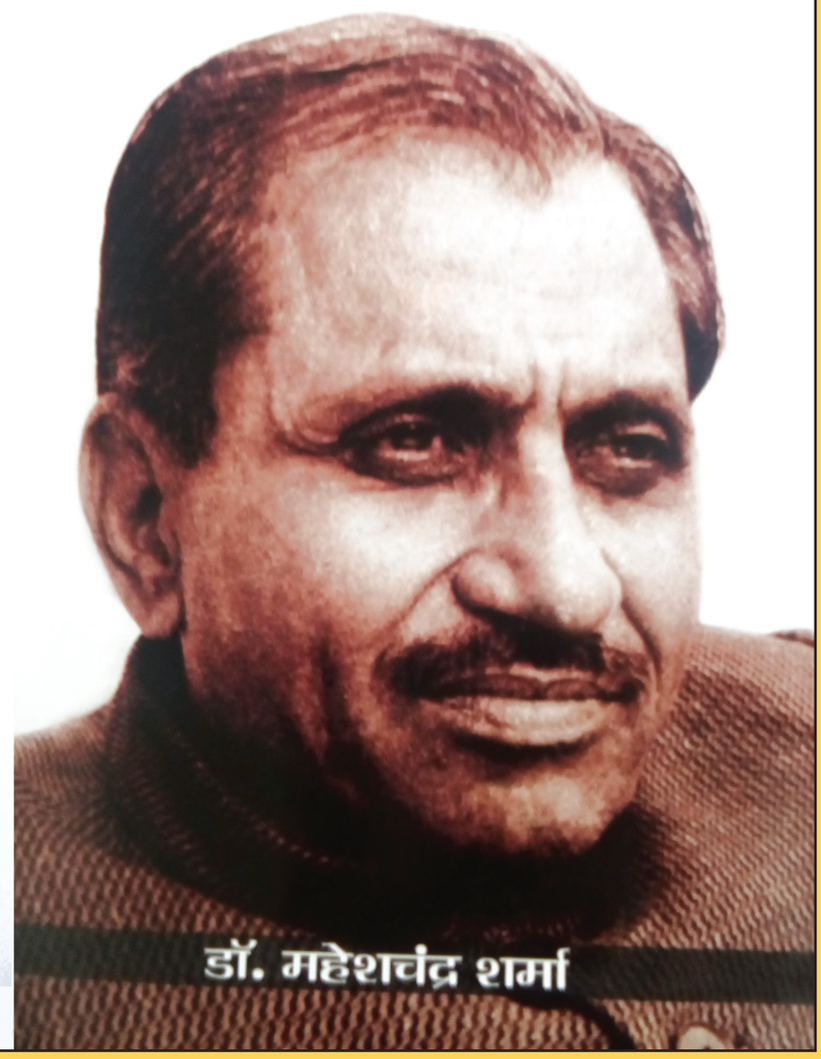

डॉ. महेशचंद्र शर्मा

विरुद्ध है। अल्लाह का कोई साथी नहीं है, कोई उसके समान नहीं हो सकता परंतु अली मर्दान खान तो शिवशंकर को एक अलग ही धरातल पर स्थित करते हैं:

*निगाहे बर मने मिस्कीन*
*नमूद अज चश्मे ताबां तर*
*मकानश लामकां तर बूद*
*शब शाहे कि मन दीदम।*

अर्थ यह कि उसने अपनी चमकती आंखों से मेरे अन्दर तक झांक कर देख लिया। मैंने उसके घर को उस असीम अनंत में स्थित देखा जहां कोई और नहीं रह सकता। यह तो उस परम तत्त्व के समान बना दिया जिसे इस्लाम में अल्लाह कहते हैं। इस्लाम में इससे बड़ा गुनाह नहीं हो सकता जिसे शिर्क[1] कहते हैं क्योंकि अल्लाह के सिवा कोई परमतत्त्व उस असीम में स्थित हो ही नहीं सकता। लेकिन अली मर्दान खां मुसलमान ही रहा, सबने उसे मुसलमान ही माना और उन कश्मीरी मुसलमान गायकों को भी मुसलमान मानने से इन्कार नहीं किया गया जो अली मर्दान खां की इस नज़्म को अभी भी गाते हैं। एक अत्यंत रोचक बात यह है कि आजकल भी कश्मीर की मस्जिदों में जो दरूद–ख्वानी अल्लाह और रसूल की प्रतिष्ठा में की जाती है, उसके गायन की शैली बिल्कुल ही परंपरागत कश्मीरी हिन्दू प्रार्थनाओं जैसी है जो लगभग छह शताब्दियों बाद भी नहीं बदली है। यहां यह कहना उचित रहेगा कि कट्टरपंथियों ने दरूद ख्वानी को रोकने की बहुत कोशिश की पर जातीय कश्मीरी मानस की शक्ति के सामने उनकी एक नहीं चली है।

**ऐसी परंपराओं से बने मुसलमान राजा अर्थात सुल्तान ऐसे भी हुये हैं जिन्होंने कट्टरतावादी इस्लामी विधवंस से ऊपर उठकर उदारता के अद्वितीय मानदण्ड स्थापित किए**

कश्मीर की भूमि पर जो परंपराएं अनंतकाल से फली–फूलीं, इस्लाम के प्रादुर्भाव के बावजूद उनका निर्वाह मुसलमान शासकों द्वारा होता रहा है। एक समय था जब कश्मीर के मुसलमान शासकों का राज्याभिषेक मुस्लिम और हिन्दू दोनों ही प्रथाओं के अनुसार होता रहा है। अपनी जैनराजतरंगिणी की तीसरी तरंग के नौवें श्लोक में श्रीवर पंद्रहवीं शती के सुल्तान हसनशाह के राज्याभिषेक का विवरण देते हैं। राज्याभिषेक में तिलक करने का काम भी मुसलमान ही करते थे:

*मल्लेकोत्थाह्मदायुक्तो विधाय तिलकं स्वयम्।*
*सौवर्ण कुसुमैः पूजामकरोमन्नवभूपतेः।।*

मल्लेक तथा आयुक्त अहमद ने तिलक करके स्वयं स्वर्ण कुसुमों से नये राजा की पूजा की।

ऐसी परंपराओं से बने मुसलमान राजा अर्थात सुल्तान ऐसे भी हुये हैं जिन्होंने कट्टरतावादी इस्लामी विध्वंस से ऊपर उठकर उदारता के अद्वितीय मानदण्ड स्थापित किये। इस दृष्टि से पंद्रहवीं शताब्दी में वर्तमान कश्मीर के आठवें सुलतान जैनुलाबदीन बड़शाह का कोई सानी नहीं है। जोनराज अपनी राजतरंगिणी के 898वें श्लोक में लिखते हैं–स ददद्योगिनां भोगे योगं तेभ्योऽग्रहीन्नृपः। योगियों के लिये भोग अर्थात लंगर, भोजन इत्यादि की व्यवस्था करके उसने उनसे योग ग्रहण किया। श्रीनगर के वर्तमान जोगी लंकर स्थान (रैणावारी) में यह लंगर स्थापित किया गया था।[2] जैनुलाब्दीन योगियों का आदर करता था। वह स्वयं योगी था और नियमित योगवशिष्ठ सुनता था। योगी अक्सर कपाल, खप्पर या नारियल बर्तन के रूप में रखते हैं। उनके स्थान पर सुल्तान जैनुलाब्दीन ने उन्हें सोने के पात्र दिये। वे कानों में शंख आदि, पहनते थे लेकिन सुलतान ने उन्हें धारण करने के लिये कुण्डल दिये।[3]

सुलतान जैनुलाब्दीन से पहले अनेक शासक हुये जिन्होंने हिन्दुओं पर अत्याचार किए और उनका जीना दूभर कर दिया। परंतु सुलतान कश्मीर से भागे हुये हिन्दुओं तक को वापस लाया और इस तरह से हिन्दुओं का रक्षक होने के नाते जोनराज ने उसे नारायण का अवतार तक कह दिया:

*अद्भुतानां पदार्थानां तद्राज्ये सङ्ग्रहोऽभवत।*
*नारायणावतारोऽयं जायेत कथमन्यथा।।*[4]

यहां उस काल की समृद्धि का वर्णन करते हुये कहा गया है कि जैनुलाब्दीन के राज्य में अद्भुत पदार्थों का संग्रह हुआ था, नहीं तो यह नारायण का अवतार कैसे माना जाता। श्रीवर ने भी इस सुल्तान को महादेव का अवतार माना है। हिन्दुओं के लिये इतना कुछ करने के बाद भी वह मुसलमान ही रहा और उसके मुसलमान होने में कोई कमी नहीं आई।

लोक चेतना का स्वरूप ही ऐसा होता है कि धर्म परिवर्तन के बावजूद अपनी परंपरा से विछिन्न नहीं हो पाता। अपनी आत्मकथा 'जहांगीरनामा' में मुगल बादशाह जहांगीर ने अपनी जम्मू–कश्मीर यात्रा के संदर्भ में ऐसा एक विवरण दिया है। जहांगीर राजौर,

वर्तमान में जिसे जम्मू व कश्मीर में राजौरी कहते हैं, के मुसलमानों के बारे में बताता है जो कभी हिन्दू रहे थे। वे मुसलमान होने के बावजूद स्वयं को राजा कहते थे और काफिर परंपराओं का पालन करते थे। जिस तरह से हिन्दू स्त्रियां पति के मरने पर सती हो जाती थीं, ये लोग भी पति के मरने पर पत्नियों को उनके साथ दफन कर देते थे। वे हिन्दुओं के साथ विवाह संबंध भी बनाते थे। जहांगीर ने इस्लामी कानून को ध्यान में रखते हुये हिन्दुओं की लड़कियां विवाह में लेने को तो सही माना परंतु अपनी लड़की देने को धर्म विरुद्ध घोषित किया। जहांगीर ने वहीं इन परंपराओं के निषेध की घोषणा कर दी और उल्लंघन के लिये मृत्युदंड का प्रावधान रखा।[5] सती जैसी परंपरा के लिये यह उचित भी था परंतु जैसा कि जहांगीर की बातों से ही स्पष्ट है निषेध के आधार मानवीय नहीं मजहबी थे। इससे स्पष्ट होता है कि कट्टरता को हावी करके सहज लोकाचार को बाधित करना राजकीय दबाव से संभव हो पाया।

परंतु फिर भी ये परंपराएं चलती ही गईं और माता सती की अवतार कश्मीर की भूमि ने हर विचार की तरह इस्लाम को उसके कठोर एकेश्वरवादी दर्शन को बदलने के लिये नहीं तो उससे विद्रोह करके व्यक्ति के विवेक को प्रोत्साहित करके उससे विचलन अर्थात कट्टरतावाद से विचलन का मार्ग प्रशस्त किया। आधुनिक काल में अहद जरगर और वाज महमुद जैसे कवियों ने ऐसा काव्य लिखा जो इस्लामी परंपरा से स्पष्ट विचलन था, उसमें कठोर एकेश्वरवाद और कठिन मजहबी कानून का प्रतिरोध था।

**आधुनिक काल में अहद जरगर और वाज महमुद जैसे कवियों ने ऐसा काव्य लिखा जो इस्लामी परंपरा से स्पष्ट विचलन था, उसमें कठोर एकेश्वरवाद और कठिन मजहबी कानून का प्रतिरोध था**

वाज महमुद ने तो साफ लिखाः

*मन्सूर जैसा हाल हुआ है मेरे इस तन का*
*सर पर लटक रही है शरह[6] की तलवार।*

अहद जरगर ने तो कुफ्र और इस्लाम दोनों की जात को ही एक बतायाः

गुरु मुझे ले गया रूहानी यात्रा पर कुफ्र और
इस्लाम से रहित मेरा मन पवित्र हो गया

अहद जरगर ने तो दोनों की एक ही जात देखी।

कुफ्र और इस्लाम दोनों को ही द्वैत को प्रोत्साहित करने वाली अपवित्र विचारधारायें मानना विरल अद्वैत है और खतरनाक हद तक गैरइस्लामी है। लेकिन सच्ची विचारधारा वाले ये कवि, जो आध्यात्मिक पुरुष भी थे, रुढ़ियों को तोड़ने के लिये प्रतिबद्ध थे और इस्लामी कट्टरतावाद से उन्होंने खुला प्रतिरोध किया। इसके लिये उन पर फतवे भी जारी किये गये लेकिन ये लोग अप्रभावित रहे। कश्मीर का सार तत्त्व तो अब्दुल अहद आजाद जैसे महान कवि ने यों अभिव्यक्त किया हैः

पूरे होशोहवास में कह रहा हूं कि
स्वर्ग की दूध की नदियां कहां बहती हैं
जानता है मेरा मन और भुला नहीं पाया है
देखो सिन्धु नदी और उसके स्रोत वाला झरना
देखो व्यथ यानी वितस्ता और उसका स्रोत
वेरीनाग
गंगा और जमुना की नदियां देखो।

इन मुसलमान कवियों ने कश्मीर को भारत की सांस्कृतिक स्रोतस्विनी का अभिन्न अंग माना है। कश्मीर के इस्लाम का सार तत्त्व ही यही है।

*बरिङ्गरङ्गशैलूषं कोटराजमथाग्रहीत।*
*शह्मोरस्तनयारत्नगुहरोन्मालकेन सः।। 257*

जोनराज ने स्पष्ट लिखा है कि कश्मीर के प्रथम सुलतान शाहमीर ने अपनी कन्या गौहर का विवाह कोटराज से किया जो हिन्दू था। श्लोक का अर्थ यों निकलता है कि जिस प्रकार रंगमंचीय नाटक में नायक को रत्नों की माला से पकड़ने का दृश्य दिखाया जाता है और माला के टूट जाने और रत्नों के बिखर जाने की आशंका के चलते वह पकड़ा जाता है उसी तरह शाहमीर ने कोटराज को पकड़ लिया था। मुस्लिम कन्या का विवाह हिन्दू से करना मजहब के खिलाफ है। परंतु यहां शाहमीर ही मजहब के खिलाफ चला गया है। जोनराज स्पष्ट करते हैं कि ऐसा कोटराज को वश में करने के लिये किया गया। विरोधी को वश में करने के लिये धार्मिक निर्देशों को ताक में रखकर अपनी बेटी की शादी काफिर से करने का यह एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। ■

*संपर्क - 9910047612*
*dikukaul@gmail.com*

**संदर्भ संकेत**

1. शिर्क अरबी शब्द है जिसका अर्थ है शरीक होने की स्थिति, सहभागी होने की स्थिति। इस्लाम में अल्लाह का कोई शरीक नहीं हो सकता है, कोई उसका साथी या सहभागी नहीं हो सकता। वह एकमात्र है, न उसके आगे कोई है, न पीछे, न ही उसके साथ कोई है। अली मर्दान खान कविता में जो शिव को सबसे ऊंचे आसमान पर लामकां अर्थात उस असीम में स्थित माना गया है तो अल्लाह जैसा ही माना गया है। अल्लाह शिव की तरह बाघचर्म नहीं ओढ़ सकता। यहां यही शिर्क की स्थिति बनती है। एकमात्र अल्लाह के साथ या उसकी तरह किसी की भी पूजा नहीं की सकती है। इसलिए शिर्क के अंतर्गत मूर्तिपूजा या अनेक देवों की पूजा को रखा जाता है। मुशरिफ उसे कहते है जो शिर्क करे अर्थात अल्लाह के साथ अन्य देवों की पूजा भी करे। शिव का स्तुतिगान करके अली मर्दान खान मुशरिक ही हो जाते हैं।
2. जोनराज राजतरंगिणी, डॉ. रघुनाथ सिंह, पृ. 499
3. वही, श्लोक 899
4. वही, श्लोक 973
5. जहांगीर नामा, अनु. व्हीलर एम. थैक्सटम, 1999, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, पृ. 349–350
6. इस्लामी कानून

रामिश सिद्दिकी

# कश्मीर: वैचारिक भटकाव का मुद्दा

कश्मीर–जिसे कभी चौथे मुगल बादशाह जहांगीर ने धरती पर स्वर्ग कहा था, आज वह पूरी दुनिया में हिंसा और आतंक का पर्याय बन गया है। पूरे विश्व में इस समय इस प्रश्न का उत्तर सभी ढूँढ़ रहे हैं कि क्या कश्मीर कभी वापस उस स्वर्ग वाली स्थिति को पुनः प्राप्त कर पाएगा?

मेरे नाना मौलाना वहीदुद्दीन खान वर्ष 1968 से ही कश्मीर के समस्या के विषय में सक्रिय रूप से लिखते आ रहे हैं। इस समस्या के आरम्भ से ही उनका यह दृढ विश्वास था कि अतार्किक और वास्तविकता से कोसों दूर राजनीति ने कश्मीर को नष्ट कर दिया है, क्या हम कश्मीर को एक बार पुनः प्रगति और विकास के पथ पर ले जा सकते हैं? उनका यह विश्वास था कि कश्मीरी नेताओं की आत्म–केन्द्रित राजनीति ने कश्मीर की जनता को आज एकदम भ्रमित कर दिया है। वे एक अविश्वास के वातावरण में रह रहे हैं। इस लेख का उद्देश्य उन्हें इस भ्रम की स्थिति से उबरने में सहायता करना और नए आत्मविश्वास के साथ जीवन की नयी शुरुआत करना है।

मौलाना के अनुसार कश्मीरियों के लिए किसी भी दिए गए समय पर एक नई जिन्दगी शुरू करना संभव है, परंतु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, दो बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। पहला उन्हें स्वयं को इस अप्रिय स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराना होगा, जिनका सामना उन्हें आज करना पड़ रहा है। जब तक वे दूसरों को आज की स्थिति के लिए उत्तरदायी ठहराते रहेंगे उनके लिए एक नई शुरुआत करना लगभग असंभव हो जाएगा।

दूसरी ओर सबसे महत्वपूर्ण बात है कि उन्हें अपने सपनों की दुनिया से बाहर आना होगा और व्यावहारिक सच्चाई की दुनिया में रहना सीखना होगा। उन्हें उस सोच को त्यागना होगा जो उनके अक्षम नेताओं ने उनके दिमाग में भरी है। अपने जीवन में प्रगति लाने के लिए उन्हें वर्तमान स्थिति में नई योजना बनाने की आवश्यकता है।

वर्तमान सच्चाई को स्वीकार करते हुए, कश्मीरी मुस्लिमों को एक निर्णय पर पहुंचना होगा। यह निर्णय उनका स्वयं का हो, न कि किसी बाध्यता में लिया गया हो। उनके पास नियति के निर्णय को मन से स्वीकारने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है।

यह कोई बुरी बात नहीं है। यह निश्चित ही हर दृष्टि से उनके लिए बहुत अच्छा है। भारत एक बहुत बड़ा देश है। इसमें आजादी और लोकतंत्र हैं। इसमें उनके मजहब के बीस करोड़ से अधिक लोग रहते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के सभी बड़े इस्लामिक संस्थानों के केंद्र यहाँ पर हैं। भारत में मुस्लिमों के हजारों सालों का इतिहास हर जगह दिखाई देता है, जो उन्हें प्रेरणा देने वाला होना चाहिए।

अगर कश्मीर के मुस्लिम पूरे दिल से भारत का हिस्सा हो जाएंगे तो हर प्रकार के अवसरों के मौके उनके सामने खुल जाएंगे। आज भारत में शिक्षा, अर्थव्यवस्था और अन्य क्षेत्रों में वृद्धि के जो अवसर हैं वैसे कहीं और देखने को नहीं मिलते।

मौलाना ने एक बार कहा था कि मैं कश्मीर की समस्या के बारे में इसकी शुरुआत से ही सोच रहा हूँ और ईश्वर की कृपा से मेरे आरंभिक विचार आज भी एकदम सही प्रतीत होते हैं। मुझे कभी भी उन्हें बदलने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ, मैं कश्मीर के विषय में वर्ष 1968 से लिखता चला आ रहा हूँ, मेरा पहला लेख जमियत उलेमा–ए–हिन्द, के आधिकारिक उर्दू साप्ताहिक अल–जमियत में प्रकाशित हुआ

मौलाना वहीदुद्दीन खान का यह मानना है कि कश्मीरी नेताओं की आत्म-केन्द्रित राजनीति ने कश्मीर की जनता को आज एकदम भ्रमित कर दिया है। वे एक अविश्वास के वातावरण में रह रहे हैं

था। मैं अल–जमियत से कुछ अंश उद्घृत कर रहा हूँ:

"व्यक्ति के अपने अधिकारों को हासिल करना हमेशा ही उसके अपने हाथों में होता है। परंतु हमारे नेताओं को इसका अनुभव तब हुआ जब उनका मामला एक नैतिक मामला बन गया। मैंने कश्मीरी नेता, शेख अब्दुल्ला के भाषणों को सुना है और उन्होंने जो बलिदान किया है उसके कारण ही उन्हें शेर–ए–कश्मीर की उपाधि दी गयी है। मगर वर्तमान परिस्थितियों में इस अभियान का हकीकत से कुछ भी लेना देना नहीं है।

"1947 में वह एक स्थिति में थे, और वे अपनी इच्छा के अनुसार कश्मीर की समस्या के विषय में कोई फैसला लेने के लिए एक वास्तविक नीति को अपना सकते थे, परंतु अपने अवास्तविक सपनों के कारण उन्होंने निर्णय के उस क्षण को गुजर जाने दिया। अब जब उनके हाथों से निर्णय लेने का समय फिसल चुका है, तब वे शोर मचा रहे हैं। मगर उनका प्रलाप, नैतिकता की भूमि पर न्याय के लिए उनकी गुहार आज की दुनिया में कोई मूल्य नहीं रखती।"

"एक बार एक युवक ने एक दुकान खोली। उससे वह जीवन के संघर्ष में पहली बार उतरा था। उसके पास ऐसे काम को करने के लिए जरूरी सुरक्षा के उपायों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। तो उसने अपनी दुकान में एक साधारण सा ताला लगा दिया। एक दिन जब वह दुकान से लौटा तो वह बहुत ही हताश और निराश लग रहा था। एक बुजुर्ग ने उससे पूछा कि आखिर वह इतना उदास और निराश क्यों दिख रहा है? उस युवक ने जबाव दिया "चोरों ने मेरी दुकान तोड़ दी। जो ताला मैंने लगाया था वह बहुत ही मामूली ताला था और किसी ने रात में उस ताले को तोडा और जो भी था, उसे चुरा कर चला गया।" उस बुजुर्ग ने उस युवक को उसकी गलती

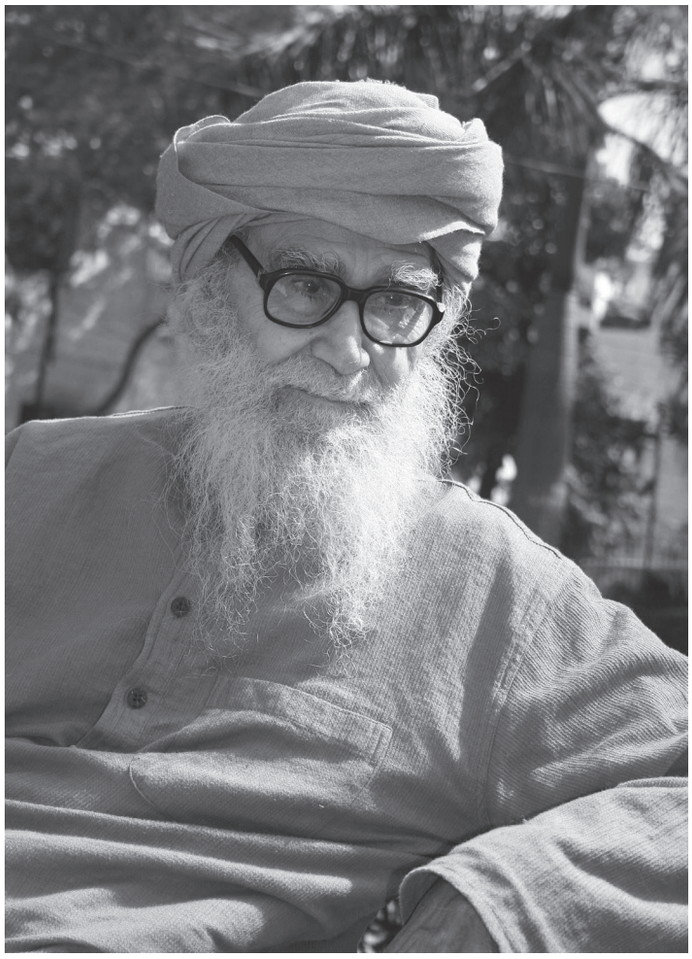

*मौलाना वहीदुद्दीन खान*

के बारे में बताया। उस युवक ने कहा "हां, अब इस अनुभव से मैंने सीख लिया है कि मुझे अपने दुकान पर ज्यादा मजबूत ताला लगाना चाहिए था।" इस पर उस बुजुर्ग ने उससे पूछा "क्या यह कुछ ऐसा था जिसे ऐसा अनुभव पाने के बाद ही सीखा जाए? जब तुमने एक दुकानदार के रूप में काम करना शुरू किया, तभी तुम्हें यह पता होना चाहिए था कि एक मजबूत ताले का इस्तेमाल किया जाना चाहिए था।"

"जहां तक दुकान में चोरी या कोई और ऐसी की निजी मामले की बात है तो यह एक संभावना है कि कोई भी ऐसे अनुभव के बाद कुछ न कुछ बदलाव कर सकता है, मगर राष्ट्रीय फैसले के मामले एकदम अलग होते हैं। व्यक्तिगत मामलों में क्षति होने के बाद भी और प्रयासों के बाद सफल होने की संभावना होती है, मगर राष्ट्रीय मामले में, जब निर्णय लेने का समय हाथों से निकल गया हो, तो समस्या और भी जटिल हो जाती है और जिसका सुलझना नामुमकिन हो जाता है।"

"राष्ट्रीय नेतृत्व मात्र उनके लिए है, जो वर्तमान में भविष्य को देख सकते हैं। वे जो, केवल वर्तमान और अतीत देखते हैं, वे देश का नेतृत्व नहीं कर सकते हैं।"

हालांकि उनके इस प्रकार के अपरिपक्व निर्णयों से, वे मामलों को जटिल अवश्य कर सकते हैं।"[1]

अगर मुझे मौलाना के द्वारा पिछले चालीस वर्षों में लिखे गए लेखों को एकत्र करने के लिए कहा जाए तो यह यकीनन एक बहुत मोटी किताब बन जाएगी।

जब कश्मीरियों को यह भरोसा हो गया कि एक अलग राज्य के लिए उनका संघर्ष उनके लिए कोई परिणाम नहीं लाएगा, तो बाहरी ताकतों की सहायता से उन्होंने हिंसा का सहारा लिया। काश उन्हें पता होता कि ईश्वर किसी रूप में हिंसा का समर्थन नहीं करता है। एक मान्यता के अनुसार पैगम्बर मुहम्मद साहब ने कहा था "खुदा रिफा (विनम्रता) प्रदान करता है, वह उनफ (हिंसा) प्रदान नहीं करता।[2]

शब्द 'रिफा' जो इस्लाम के पैगम्बर के उपर्युक्त कथन में इस्तेमाल किया गया है, वह 'उन्फ' का विलोम है। ये शब्द एकदम वही अर्थ देते हैं जिसे हम आज के समय में हिंसा और अहिंसा के रूप में कह सकते हैं।

**राष्ट्रीय नेतृत्व मात्र उनके लिए है, जो वर्तमान में भविष्य को देख सकते हैं। वे जो, केवल वर्तमान और अतीत देखते हैं, वे देश का नेतृत्व नहीं कर सकते हैं।**

यह स्पष्ट रूप से हिंसा पर अहिंसक पद्धतियो की प्रधानता को बताता है।

ईश्वर हिंसा का नहीं बल्कि अहिंसा का समर्थन करता है। इसके बहुत ही गहरे और वृहद प्रभाव होते हैं, जो प्रकृति का नियम बताते हैं। प्रकृति का यह नियम इस बात को स्पष्ट करता है कि सभी बुरी चीजें हिंसा के साथ जुडी हुई हैं, जबकि सभी अच्छी चीजें अहिंसा से जुड़ी हुई हैं।

आज, इतने वर्षों के खूनी संघर्ष और कश्मीर में हजारों लोगों की जान जाने के बाद भी कश्मीर आज वहीं खड़ा है जहां पर हिंसा और आतंकवाद शुरू होने से पहले खड़ा था और आज पैगम्बर मुहम्मद साहब की उपर्युक्त दी गयी शिक्षा का सबसे बड़ा उदाहरण बन गया है।

कश्मीर के इस आन्दोलन के इस दिशा में मुड़ने से कुछ ही महीने पहले मौलाना वहीदुद्दीन खान श्रीनगर गए थे, जहां पर उन्होंने टैगोर हॉल में 29 जून 1989 को एक भाषण दिया था, वहाँ पर उन्होंनें पैगम्बर मुहम्मद साहब के जीवन का एक उदाहरण दिया था, उन्होंने कहा था की "एक बार मुहम्मद साहब मदीना में मस्जिद–ए–नबवि में बैठे हुए थे, तभी एक बद्दूँ (मूल अरब) वहां आया, और उसने मस्जिद में मूत्र विसर्जन कर दिया। इस काम को देखकर मुहम्मद साहब के साथी उस बद्दूँ पर चीखने लगे, मगर मुहम्मद साहब ने अपने साथियों को रोका और कहा "उसके पेशाब करने पर रोक नहीं लगाओ, बल्कि उसे छोड़ दो।" यह सुनकर उनके साथियों ने उस बद्दूँ को अकेला छोड़ दिया, जब तक उसने पेशाब करना बंद नहीं कर दिया।

जब वह यह कर चुका था तब मुहम्मद साहब ने उससे कहा "किसी भी तरह का मल और मूत्र विसर्जन मस्जिद के लिए उचित नहीं है क्योंकि यह केवल खुदा की इबादत करने की जगह हैं" फिर पैगम्बर साहब ने अपने शिष्यों में से एक आदमी से एक बाल्टी पानी मंगवाया और प्रभावित क्षेत्र पर डाल दिया। मुहम्मद साहब की जिन्दगी से इस घटना का उदाहरण देते हुए मौलाना ने कहा था "यह मुहम्मद साहब के काम कराने का तरीका था कि जहां पैगम्बर साहब ने अपने उद्देश्य को केवल पानी डालकर हासिल कर लिया वहीं आप लोग अपने उद्देश्यों को खून खराबा करके हासिल करना चाहते हैं तो जान लें की कोई भी व्यक्ति खुदा की बनाई इस दुनिया में खून–खराबा करके सफल नहीं हो सकता।'

**कुरान की इस आयत के संदर्भ में जिहाद शांतिपूर्ण संघर्ष का नाम है न कि हिंसक गतिविधियों का। वहीं युद्ध के लिए 'किताल' शब्द का इस्तेमाल किया गया है, जिहाद शब्द पूरी तरह से अहिंसक गतिविधियों का ही नाम है**

आज मौलाना के वे शब्द समय के साथ खरे उतरे हैं, कश्मीरियों की हिंसात्मक गतिविधियों का सबसे अधिक नुकसान अगर किसी को पहुँचा है तो वह स्वयं कश्मीरियों को ही पहुँचा है।

कश्मीरी नेताओं के द्वारा कुरान और हदीस की गलत व्याख्या के कई उदाहरण हैं, जिनमें से एक है अपनी हिंसक गतिविधियों को जिहाद का नाम देना। कुरान और हदीस दोनों ने ही जिहाद को सबसे महत्वपूर्ण माना है। जिहाद का शाब्दिक अर्थ है 'संघर्ष' अर्थात सबसे महान संभावित प्रयास करना। इस शब्द को कुरान और हदीस दोनों में ही 'अहिंसक संघर्ष' के रूप में बताया गया है, उस हिंसक संघर्ष के रूप में नहीं जो आज इन नेताओं ने दिखाया है। कुरान (25:52) में आता है "जिहाद करो इसके साथ (अर्थात कुरान के शब्दों के साथ)।

कुरान कोई बंदूक या तलवार नहीं है। यह विचारधारा की एक किताब है। कुरान के साथ जिहाद का अर्थ है लोगों में इस्लाम का शांतिपूर्ण सन्देश देने के लिए एक वैचारिक कोशिश करना।

कुरान की इस आयत के संदर्भ में जिहाद शांतिपूर्ण संघर्ष का नाम है न कि हिंसक गतिविधियों का। वहीं युद्ध के लिए 'किताल' शब्द का इस्तेमाल किया गया है, जिहाद शब्द पूरी तरह से अहिंसक गतिविधियों का ही नाम है।

मौलाना ने एक बार लिखा था कि 1947 में भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन के बाद से ही जम्मू और कश्मीर एक समस्या वाला राज्य बन गया है। एंसाइकलोपीडिया ब्रिटैनिका (1984) इसे इतिहास की एक दुर्घटना बताता है।[3] मगर सच्चाई यह है कि भारतीय राज्य में जम्मू और कश्मीर का जो विलय हुआ वह कोई दुर्घटना नहीं थी बल्कि यह ईश्वर का निर्णय था। आज पूरी दुनिया में लोग इस्लाम को ऐसे मजहब के रूप में जानने लगे हैं, जो हिंसा का समर्थन करता है, फिर वह कश्मीर हो या दुनिया का कोई भी हिस्सा हो।

आज जब कश्मीर का संवाद पूरे विश्व के साथ होने लगा है, परमात्मा ने कश्मीर के नागरिकों को यह अवसर दिया है कि वे पूरी दुनिया को आज यह बता सकें कि इस्लाम हिंसा का मजहब नहीं है बल्कि शांति का मजहब है, और इसके लिए उन्हें तत्काल ही नकारात्मक सोच से बाहर आना होगा।

इतिहास दिखाता है कि मानव जीवन में समस्याएं हमेशा ही एक सकारात्मक भूमिका निभाती हैं। समस्याओं के बिना, मानव

जीवन उथलपुथल का शिकार बन जाता है। समस्याएं लोगों को रचनात्मक बनाती हैं। वे नई सोच को प्रोत्साहित करती हैं, और हमेशा ही एक बेहतर भविष्य को बुलाती हैं। यकीनन ही समस्याएं मानव के लिए वरदान हैं। कश्मीर के नागरिकों की एक और बहुत बड़ी गलती यह रही कि उन्होंने उन नेताओं का समर्थन किया जिन्होंने पाकिस्तान का समर्थन किया था या फिर जिन्हें पाकिस्तान समर्थन कर रहा था।

6 फरवरी 2012 को पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री, यूसुफ रजा गिलानी ने इस्लामाबाद में एक वक्तव्य दिया था कि 'हम अब कश्मीर के मामले में भारत के साथ युद्ध तो बहुत कर चुके हैं (1948, 1965, 1971, 1999) मगर इसका कोई लाभ नहीं हुआ और अब कश्मीर की समस्या का हल केवल बातचीत के माध्यम से ही निकलेगा।'

मौलाना साहब ने प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दोनों में ही प्रसारित वक्तव्य पर कहा कि 'वे एक के बाद दूसरी गलती कर रहे हैं।' मौलाना ने कहा कि पाकिस्तान की सबसे बड़ी और पहली गलती थी युद्ध करना और दूसरी गलती थी दो देशों के बीच आपसी विश्वास को तोड़ने के बाद बातचीत करना। युद्ध एक साधारण घटना नहीं है। युद्ध चरम नकारात्मकता का वह चरण है जिसका परिणाम केवल नफरत और दोनों तरफ के बीच दूरी में वृद्धि होता है। और इसके बाद एक क्षेत्र जो पूरी तरह से भौगोलिक एवं सामरिक महत्व का हो, अब वह नाक की लड़ाई बन गया है। और जब युद्ध का परिणाम हार में होता है तो यह केवल विजयी पक्ष के विश्वास को और मजबूती प्रदान करता है। युद्ध सामान्य माहौल की हर संभावना को समाप्त करता है, जो किसी भी वार्ता के लिए सबसे अधिक आवश्यक होती है।

सच्चाई यह है कि पाकिस्तान के द्वारा अपनाई गयी गैरबुद्धिमत्तापरक नीतियों को अपनाने के कारण अब वार्ता कोई विकल्प नहीं रह गयी है। पाकिस्तान को अब यह करना है कि कश्मीर के मुद्दे को अपनी याददाश्त से मिटाना है। उन्हें कश्मीर के बिना पाकिस्तान के निर्माण की योजना बनानी चाहिए। उन्हें 'जो है' उसको लेकर सोचना होगा, न कि जो उनके पास नहीं है। पाकिस्तान को अगर अपना भविष्य बेहतर करना है तो यही एकमात्र रास्ता है।

**अब कश्मीरियों के पास समय है कि वे अपने नेताओं से ऊपर उठें और पूरे मामले को एक नए नजरिये से देखें, न कि अपने नेताओं की दृष्टि से। ऐसा करने से वे अपनी जिन्दगी को दोबारा शुरू कर पाएंगे। उनके सफल होने के लिए और कोई तरीका नहीं है**

यही कदम कश्मीर के नागरिकों को भी उठाने होंगे। नेता जनता का दर्पण होते हैं। कोई भी नेता अपने भड़काऊ भाषणों के साथ तब तक सफल नहीं हो सकता है, जब तक जनता उसे सुनने के लिए तैयार न हो। इसलिए पूरी तरह से आरोप नेताओं पर ही नहीं लगाए जा सकते हैं, नेता और उसके अनुयायी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कश्मीर के नागरिकों की आज की आवश्यकता है कि वे अपने नकारात्मक नेतृत्व से छुटकारा पाएं।

आज के कश्मीरी मुस्लिम पूरे भारत में फैले हैं, वे काम कर रहे हैं, पढ़ रहे हैं, व्यापारिक गतिविधियाँ कर रहे हैं। भारत ने उनके लिए अवसरों के दरवाजे कभी बंद नहीं किये हैं क्योंकि भारत उन्हें इस देश का नागरिक मानता है। मगर कोई भी रिश्ता एक तरफा नहीं चल सकता, हर रिश्ता एक आपसदारी व समझदारी पर निर्भर करता है।

एक आन्दोलन का अर्थ होता है 'जनता का आन्दोलन', लेकिन हकीकत में यह केवल उन नेताओं का आंदोलन होता है जो अपनी भड़काऊ भाषणों और लेखों से आग में घी डालने का कार्य करते हैं।

फिर जनता के नाम पर वे नेतृत्व से जो चाहें वह मांगते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें चाहिए कि वे सही तरीके से अपनी उस जनता के भविष्य को लेकर सोचें जिनके नाम पर वे राजनीति करते हैं। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ आधी–अधूरी तैयारियों के साथ प्रवेश नहीं किया जा सकता अन्यथा ऐसे लोग ईश्वर के यहाँ बहुत बुरे माने गए हैं, फिर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे अपनी जनता के बीच कितने भी लोकप्रिय क्यों न हों!

अब कश्मीरियों के पास समय है कि वे अपने नेताओं से ऊपर उठें और पूरे मामले को एक नए नजरिये से देखें, न कि अपने नेताओं की दृष्टि से। ऐसा करने से वे अपनी जिन्दगी को दोबारा शुरू कर पाएंगे। उनके सफल होने के लिए और कोई तरीका नहीं है।

खुदा का एहसान है कि, मैं यह कह सकता हूँ कि मेरे नाना के लेखों ने अनेकों कश्मीरियों को लाभ पहुँचाया है, जिसके परिणामस्वरूप कई कश्मीरी नागरिकों ने शिक्षा और प्रगति का पथ अपना लिया है और आतंक और नकरात्मकता के मार्ग को छोड़ दिया है।

मौलाना ने एक बार कहा था कि कश्मीर एक गलत व्याख्या वाली विचारधारा का मामला बन गया है तो इसका हल हथियारों या नफरत में नहीं है, बल्कि इसका हल केवल उन्हें एक सही विचारधारा देने में है, जो है शान्ति की विचारधारा। व्यक्ति प्रेम और शांति की अवस्था में हमेशा के लिए प्राकृतिक रूप से रह सकता है, परन्तु वह नफरत और युद्ध के वातावरण में हमेशा नहीं रह सकता है।

अंत में, मैं यहाँ पर संयुक्त राज्य शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन के संविधान से एक वक्तव्य दोहराना चाहूंगा जो कहता है कि चूंकि युद्ध पहले व्यक्तियों के दिमाग में शुरू होता है, इसी कारण शांति का निर्माण भी व्यक्ति के दिमाग से ही होना चाहिए।" ■

*संपर्क - 8800544955*
*raamish.s@gmail.com*

**संदर्भ संकेत**

1. अल–जमीयत वीकली, नई दिल्ली, जून 14, 1968, पृ. 4
2. अबू डाउड, सुनन, 4/255
3. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिया (9:32)

# वीर सैनिक औरंगजेब और ईमानदार पत्रकार शुजात बुखारी की हत्या

राइफलमैन औरंगज़ेब और वरिष्ठ पत्रकार शुजात बुख़ारी की नृशंस हत्याओं ने स्पष्ट कर दिया है कि मुस्लिम कट्टरपंथी अपने ही उन लोगों को भी नहीं छोड़ते यदि वे अपने देश से प्यार करते हों और कश्मीर मुद्दे को सुलझाने की दिशा में काम करते हों। दूसरे शब्दों में ये पाकिस्तान–प्रायोजित आतंकवादी केवल देशभक्तों को मारते हैं, वे हिन्दू हों या मुसलमान।

एक आतंकवादी ने औरंगज़ेब का अपहरण शोपियां ज़िले के कलामपुरा से तब किया जब वे ईद की छुट्टी पर घर जा रहे थे। 14 जून 2018 को उनका मृत शरीर पुलवामा के गुस्सू इलाके में मिला। वे 4 जम्मू एण्ड कश्मीर लाइट इन्फेंट्री के जवान थे और शोपियां में शादीमर्ग के 44 राष्ट्रीय राइफल्स शिविर में तैनात थे। औरंगज़ेब को इसलिये शिकार बनाया गया कि इस वर्ष अप्रैल में हिज़्बुल मुजाहिदीन के प्रमुख समीर टाइगर को मारने वाले मेजर रोहित शुक्ला से उनके निकट संबंध थे। उनके हत्यारों ने उनकी जो वीडियो क्लिप जारी की थी, उससे सपष्ट है कि आंखों के सामने नाच रही मौत को देखकर भी वे कितने निडर और अविचलित थे। अपहर्ताओं के प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने गर्व से कहा, "हां मैं भारतीय सेना का सिपाही हूं...हां मैंने आतंकवादी मारे..."यद्यपि उनके पास सेना की अनेक संवेदनशील जानकारियां थीं फिर भी उन्होंने कुछ नहीं बताया और हंसते–हंसते अपना बलिदान दे दिया। इस अप्रतिम वीर को समूचा देश नमन करता है।

उसी दिन प्रेस एन्कलेव, श्रीनगर में अपने अख़बार 'राइज़िंग कश्मीर' के दफ़्तर के सामने संपादक शुजात बुख़ारी आतंकवादियों की गोलियों के शिकार हुये। वे एक इफ़्तार कार्यक्रम के लिये निकल रहे थे। वे बहुत ही प्रतिबद्ध और ईमानदार पत्रकार के रूप में जाने जाते थे। कश्मीर मुद्दे को लेकर उनका दृष्टिकोण हमेशा से ही मौलिक और स्वतंत्र रहा। वे शांति के पक्षधर, मध्यमार्ग को समस्या का हल मानने वाले निष्पक्ष व्यक्ति थे।

बुख़ारी पाकिस्तान और पाकिस्तान समर्थित आतंकवादियों को कश्मीर की स्थिति के लिये ज़िम्मेदार मानते थे। परंतु इसके साथ ही वे भारत की सरकार और इसके राजनेताओं को उनके पाखण्ड के लिये बख़्शते नहीं थे क्योंकि किसी ने भी उलझन को सुलझाने की कोशिश नहीं की। भारत और पाकिस्तान के बीच गुप्त माध्यमों से की गई ट्रैक–2 कूटनीति के साथ–साथ वे कश्मीर के भीतर विभिन्न पक्षों के बीच होने वाले संवाद में भी लंबे समय तक योगदान देते रहे। इसी शांति प्रक्रिया को आतंकवादी पटरी से उतार कर भारत सरकार को बदनाम करना चाहते थे।

हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि ये नृशंस हत्याएं ईद के मौक़े पर हुईं। सद्भावना का प्रदर्शन करने के लिये रमज़ान के मौके पर सरकार ने सेना की आतंक रोधी कार्रवाइयों को स्थगित कर दिया था। इससे स्पष्ट होता है कि आतंकवादी मानव जीवन को कुछ नहीं समझते, शांति का उनके लिये कोई अर्थ नहीं है, और अपने धर्म, जिसके लिये वे लड़ रहे हैं, के मूलभूत सिद्धांतों के लिये भी उनके मन में कोई सम्मान नहीं है। वे केवल "पाकिस्तान शासित धर्मतांत्रिक इस्लामी कश्मीर चाहते हैं और इसे प्राप्त करने के लिये वे कुछ भी कर सकते हैं।

पिछले वर्ष मई में एक निहत्थे युवा भारतीय सैनिक अधिकारी उमर फैय्याज़ का अपहरण तब किया गया जब वे एक विवाह समारोह में गये हुये थे। अगले ही दिन उनकी गोलियों से छलनी लाश मिली। 22 वर्ष के फैय्याज़ राजपूताना राइफल्स में लेफ़्टिनेंट थे और केवल पांच माह पहले सेना में भर्ती हुये थे। ■

**–एस.के.एन.**

# पाठकों की राय

# विश्व के नेताओं को कश्मीर के बारे में और जानने की जरूरत है

सामाजिक और अकादमिक शोध पत्रिका को मेरे पास भेजने के लिए आपका धन्यवाद।

मंथन के अप्रैल–जून 2018 अंक में कश्मीर के बारे में, उसके इतिहास और राज्य की संस्कृति के बारे में बहुत ही ज्ञान और तथ्यपरक तरीके से लेख दिए गए हैं। यह कहानी ऐसी है जिसे न केवल देश बल्कि विश्व के सामने लाना आवश्यक है।

इस संबंध में, क्या मैं श्रीनगर में बादामी बाग़ कैंट क्षेत्र में अशोक के युग की पुरातात्विक खोज का सुझाव दे सकता हूँ, कि उसकी और खुदाई और खोज होनी चाहिए। ये हमारे प्राचीन इतिहास के लगभग भूले हिस्से को बताता है और इस भूले हिस्से को प्रकाश में आना चाहिए।

**लेफ्टिनेंट जनरल निर्भय शर्मा**
मिज़ोरम के राज्यपाल

मैंने मंथन के अपैल–जून 2018 अंक में उत्पल कौल द्वारा लिखे गए एक लेख 'राजतरंगिनी के आठ अंक' के हर शब्द को पढ़ा। वे हमें कई राजाओं के बारे में बताते हैं। कुछ ही महीने पहले इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर ऑफ आर्ट्स के निदेशक ने राजतरंगिणी पर दो दिवसीय सेमिनार का आयोजन किया था।

मैं इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर आर्ट्स गया था और मैं रामबहादुर राय जी से मिलना चाहता था, मगर मैं मिल नहीं सका। मैंने राजतरंगिणी पर और सूचना के लिए उनके सहायक से बात की। उन्होंने लाइब्रेरी से संपर्क किया परन्तु मुझे सूचना नहीं मिल सकी।

दूसरे दिन, मैं थॉमस पिकेटि के द्वारा इनइक्विलिटी पढ़ रहा था तो मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा कि इस किताब की एक साल में बीस लाख कॉपी बिक चुकी हैं।

यह किताब यूरोप की हर भाषा में अनूदित हो चुकी है. पीकेटी ने यूरोप और के हर विश्वविद्यालय का दौरा किया है और किताब के बारे में परिचित कराया है।

पिछले ही सप्ताह मैं चीनी पुस्तक ज़िम्पिग पढ़ रहा था. इसे पहले ही आठ भाषाओं में अनूदित किया जा चुका है। मूल किताब कुछ ही हफ्तों पहले आई थी।

मुझे कभी–कभी आश्चर्य होता है कि हम इसी तरह राजतरंगिणी के साथ कुछ नहीं कर सकते?

कश्मीर में शंकराचार्य के शास्त्रार्थ ने न केवल हिन्दुओं बल्कि मुस्लिमों को भी प्रेरित किया था. यह भारत का दुर्भाग्य है कि स्वतंत्रता के 70 वर्षों के बाद भी हम पिछले ढाई हजार सालों की समस्या को हल करने में सफल नहीं हो पाए हैं। जर्मनी का एकीकरण एक उम्मीद दिखाती है। राजतरंगिणी पर एक फिल्म बनाने से कश्मीरी मुस्लिम कल्हण पर गर्व करेंगे।

कितने लोग राजतरंगिणी या कल्हण के बारे में जानते हैं! एक अच्छी फिल्म वही प्रभाव पैदा कर सकती है, जो रामायण और महाभारत धारावाहिकों ने कुछ साल पहले किया।

**लक्ष्मी निवास झुंझुनूवाला**
जाने–माने उद्योगपति

# मंथन

**सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम**

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

## सदस्यता विवरण

नामः .....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....

| | भारत में | विदेश में |
|---|---|---|
| एक प्रति शुल्क | ₹ 100 | US$ 9 |
| वार्षिक | ₹ 400 | US$ 36 |
| त्रिवार्षिक | ₹ 1000 | US$ 100 |
| आजीवन | ₹ 25,000 | |


प्रंबध संपादक

**'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका**

28, मीना बाग, मौलाना आजाद रोड., नई दिल्ली–110 011

दूरभाषः 9868550000, 011–23062611

ई–मेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com

*With Best Compliments from*

**Thakur Stone Crusher**

**VPO Kandla, Teh. & Distt. Chamba (H.P.)**

**Contact No.: +91-88944-90009**